श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा का 61वाँ पुष्प

डॉ. साध्वी रत्नत्रयी

पुस्तक

मंजिल की ओर

सांस्कृतिक-मूल्य परक
प्रवचन-संग्रह

प्रवचनकार

साध्वीरत्नत्रयी डॉ. ज्ञानलताजी म.सा.
साध्वीरत्नत्रयी डॉ. दर्शनलताजी म.सा.
साध्वीरत्नत्रयी डॉ. चारित्रलताजी म.सा.

सम्पादक

श्री चांदमल बाबेल, एम ए, बी एड
श्री शशिकर 'खटका राजस्थानी' एम ए, पी एचडी

प्रकाशक

श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ,
गुलाबपुरा - 311021 (राज.
© 01483 - 23592 (कार्या)
23475 (निवास)

सौजन्य

श्रीमती सुशीलादेवी जी सांखला
ध.प. श्रीमान् कंवरलालजी सा. सांखला, मुम्बई

प्रथमावृत्ति
जनवरी, 2001
2000 प्रतियां

मूल्य - लागत मात्र 30 00

मुद्रक
निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर
© 0145-422291

अनुक्रमणिका

आत्म-मन्थन

आज वैज्ञानिक चकाचौंध के वातावरण में मनुष्य को अनेक जटिलताओं ने घेर लिया है । विसंगतियो की तीव्र धारा में पड़कर प्रत्येक व्यक्ति शान्ति का पुलिन पाने को छटपटा रहा है । वह दुश्चिन्ताओं के पर्वत खड़े करके उनकी तलहटी में निश्चिन्त होकर बैठना चाहता है । उसके जीवन की डोंगी भवसागर में खड़ी है मगर हाथो से पतवार छिटककर लहरो में कहीं खो गई है । जीवन का ध्रुवतारा वादलो की ओट में छुप चुका है । परिस्थितियों को निर्मित करने वाला मनुष्य ही है, लेकिन उसके भँवर जाल से निकलने की छटपटाहट भी उसमें कम नहीं है । वह अशान्ति के वीज बोकर शान्ति की फसल काटना चाहता है । अविवेक के घट से विवेक का रसपान करने को आतुर है । आपाधापी के दहकते अँगारों में चन्दन की शीतलता ढूँढता है, लेकिन न्तर में असन्तोप जगाकर सन्तोप का आलोक पाना मुश्किल है ।

जिसे जीवन मे शान्ति और सुख की तलाश है, उसे चाहिए कि समय रहते स्वयं को पहचाने, चिन्ताओं का त्याग कर चिन्तन की मनोभूमि पर आगे वढ़े । यहाँ समय के महत्त्व को जिसने नही पहचाना उसने अपने जीवन मे विपत्तियो को ही ामंत्रण दिया है । यह जीवन तो बहती धारा है । यहाँ न तो धारा ठहरती है, न ही समय ठहरता है । जन्म से मृत्यु तक के समय का मनुष्य अपने विवेकानुसार ही उपयोग करता है । वे धन्य है जिन्होंने प्रज्ञा और पुरुपार्थ के संयोग से जीवन को उपादेय बनाया है । आज भी इस संसार में उन लोगो की कमी नहीं है जो जीते तो हैं मगर जिन्हें जीने का ढग नहीं आता है । वे सिर्फ अपने झुके हुए कन्धों पर जीवन का बोझ ढोते हुए केवल उम्र की गाड़ी को घसीट रहे हैं । उनमे ऊर्जा तो है मगर उसमें चेतना का अभाव होने से वह ऊर्जा सर्जनात्मक नही बन पा रही है । जीवन का सही दृष्टिकोण तभी प्राप्त हो सकता है जब मनुष्य धर्म को जीवन में उतारकर उसके दर्पण मे अपना प्रतिबिम्ब देखे ।
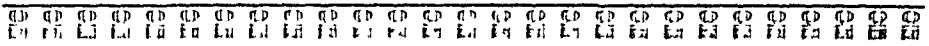
धर्म को जानने के लिए सन्त-सतियों के पावन सान्निध्य के साथ सुकृतियों का स्वाध्याय आवश्यक है । महापुरुषों की पवित्र वाणी प्रत्येक युग मे मानव-मन की मूर्च्छा तोड़कर उसे जागरण का सन्देश देती रही है । यह वही समीर है जो जीवन मे नये प्राणो का संचार करती है । अध्यात्म से अनुप्राणित ज्ञान की स्वर-लहरी आहत मन के आंगन मे नई स्फूर्ति पैदा कर देती है । महासती डॉ रत्नत्रयी जी स्थानकवासी जैन-परम्परा में ऐसी ही दिव्य किरण है जो पाँव-पॉव चलकर ज्ञान की पावन रश्मियॉ बॉट रही है । आप ऊर्जा-सम्पन्न हैं । मर्यादा एवं परम्पराओ का निर्वाह करते हुए जीवन-जागृति की आप प्रवल पक्षधर हैं । आप का चिन्तन जितना उदात्त है दृष्टिकोण भी उतना ही उदार है ।

आपका अध्ययन और चिन्तन आपकी वाणी में सदैव झलकता है। आपके सकारात्मक चिन्तन ने हजारो लोगों के जीवन को अनवरत उन्नति की ओर अग्रसर किया है । जीवन मे उच्च चिन्तन ही जड़-स्थिति से उबारने की क्षमता रखता है । स्वदृष्टि से चिन्तन, चिन्तन से चेतन की जाग्रति, ज़ागृति से शुभकर्म के भावों की ऊर्मियो का उठना ही ज्ञान, क्रिया और विश्वास की अनुगूंज है । जीवन-निर्माण की प्रक्रिया मे ये कार्य-व्यापार मानव को अभीष्ट उजाले की ओर अग्रसर करने में सक्षम है । मनुष्य जो कि इस सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी है, आज वही अपने क्रिया व्यापारो द्वारा अपनी सुन्दरता को क्षरित कर रहा है । भौतिक आकांक्षाओ ने उसे अध्यात्म से दूर कर बहिर्मुखी बना दिया है । अन्तःप्रज्ञा और अन्तर्चक्षु के उन्मेष के अभाव में भोग-लिप्सा के छद्म-सुख मे विकल वह अपने जीवन को रीतने देने के लिए अनचाहे अभिशप्त है ।

महासती डॉ रत्नत्रयी जी म.सा के धर्म-दर्शन एवं जीवन-व्यवहार से ओतप्रोत प्रवचन-प्रसाद को पाने का मुझे अनेक बार सौभाग्य मिला है । आपके प्रवचनो में सदैव अध्यात्म के सतरंगी इन्द्रधनुष तनते हैं जो सुधी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किये बिना नहीं रहते । आपके मुखारविन्द से ज्ञान का जो निर्झर फूटता है वह सुधी श्रावकों के मन-मस्तिष्क को आप्लावित
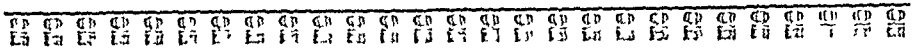
करके उसे निर्मल बना देता है । प्रवचन के मध्य में कहीं गीतों का सुन्दर मधुवन होता है तो कहीं मुक्तक की मृदुल कलियाँ प्रस्फुटित होती दिखाई देती है । अध्यात्म एवं दर्शन के जटिल तत्त्वों को समझाने के लिए सूक्तियों के साथ लघु कथाओ की झांकी गंभीर विषय को भी सरसता प्रदान कर देती है । आपके सुमधुर प्रवचनो से जीवन का वह वातायन खुल जाता है जिसके बारे में कभी सोचा भी नहीं जा सकता ।

महासती जी द्वारा संबोधित धर्मसभा मे बाल, वृद्ध, युवा, महिलाएँ एवं विद्वज्जन सभी होते हं । सभी के मनोऽनुकूल बात कहकर धर्म के प्रति जिज्ञासा जाग्रत करना आपका उद्देश्य रहता है । आपकी प्रवचन शैली की यही सबसे बडी विशेषता रहती है कि श्रोताओं को पता ही नहीं चल पाता कि कब एक घण्टा पूरा हो गया । एक बार जो इस वाणी में अवगाहन कर लेता है वह जाति, धर्म, सम्प्रदाय की प्राचीरो को तोड़कर जिनवाणी का प्रसाद पाने समय पर धर्म-सभा में पुनः उपस्थित हो ही जाता है । आपकी पूर्व प्रकाशित प्रवचन कृति 'त्रिवेणी की पावन-धारा' की सहृदय पाठको द्वारा भूरि-भूरि प्रशसा हुई, उसी क्रम में समय-समय पर दिये प्रवचनो को इस कृति में स्थान दिया गया है । इन्हे पढ़कर यदि पाठक अपने भीतर झॉक सके तो यही कृति की सार्थकता होगी । सभी प्रवचन मन की चंचलता, चित्त एवं चेतना के अश्वो पर वल्गा की भांति है । सुधी पाठक कृति का एक प्रवचन भी पढ़कर, उसके अनुरूप निज जीवन को आधार देता है तो वह क्षण उसके वर्तमान को ही नहीं बल्कि भविष्य को भी सवारने का महत्त्वपूर्ण कदम है ।

कृति मे समाहित सभी प्रवचन पुरुषार्थ के साथ-साथ परमार्थ की पवित्र पगडंडियाँ है । महासतीजी ने भटकन भरी राहों मे जीवन के सुगमतर रास्तो को खोजने मे जीवन के स्वर्णिम पल लगाये हैं । सुन्दर, रोचक प्रसंगों द्वारा अध्यात्म का मार्मिक विवेचन प्रत्येक प्रवचन की विशेषता है। ये प्रवचन मानव को भुक्ति से मुक्ति की ओर अग्रसर करने में सक्षम हैं । इन प्रवचनो की जितनी प्रशंसा की जाये वह कम है । प्रवचनो को
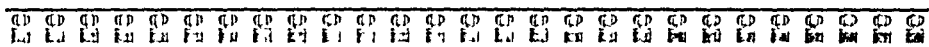
कृति रूप में सजोने के लिए मैं महासती डॉ श्री रत्नत्रयी जी को साधुवाद देते हुए नतमस्तक हूँ कि उन्होने अपने व्यस्त समय मे से सुदूर बैठे पाठकों तक अपनी वाणी को पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया । मैं श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे भूमिका लिखने की कहकर आत्म-मन्थन का मौका दिया । शब्दो की यह यात्रा आत्मा का विकास करके जीवन को कल्याणमय बनाये यही मेरी भावना है ।

महासतीजी ज्ञान के अथाह रत्नाकर हैं उसमें से कुछ रत्न ही निकालकर हमें प्रदान किये । मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि समय-समय पर अनेक दिव्य रत्नो से युक्त पिटारियाँ हमे प्राप्त होती रहेंगी । भौतिकता के कारण पल्लवित विकृतियों से मानव को अधःपतन के गर्त मे जाने से रोकने हेतु ये प्रवचन-रत्न ही नया दृष्टिकोण दे सकते हैं । महापुरुषो, सन्त एवं सतियो की प्रवचन-गगा में यह कृति एक अनुपम दिव्य रत्न बनकर अपनी ज्ञान रश्मियाँ चतुर्दिक फैलायेगी इसका मुझे पूर्ण विश्वास है ।

पुनश्च शब्दो द्वारा श्रद्धावनत होते हुए वन्दन, अभिनन्दन ।

बिजयनगर
नववर्ष
1 जनवरी, 2001

सम्पतराज ढाबरिया
प्राचार्य
श्री प्राज्ञ महाविद्यालय, बिजयनगर

सम्पादकीय

कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम् ।
महानत्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः ॥

अर्थात् ठीक समय पर किया गया थोडा-सा कार्य भी वहुत उपकारी होता है और समय वीतने पर किया हुआ महान् उपकार भी व्यर्थ हो जाता है । इस संसार मे वे ही मनुष्य इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो मे अपना नाम सुनहरे अक्षरों मे अंकित कर गये जिन्होंने समय को पहचाना है । समय को सार्थक करने वाले ही महानता के सर्वोच्च शिखर को छूने की क्षमता रखते हैं ।

एक श्रेष्ठी ने अत्यल्प समय मे ही अपने व्यापार-व्यवसाय में वहुत बड़ी सफलता अर्जित कर ली । धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में लोग उनकी राय लेते थे । एक पत्रकार ने उनसे इस सफलता का राज पूछा तो श्रेष्ठी ने कहा - उचित समय पर निर्णय लेने से मुझे सफलता मिली है । मैं सही समय पर सही निर्णय लेता रहा हूँ । यही मेरे जीवन की सफलता का मूल-मंत्र है ।

जैन धर्म की स्थानकवासी परम्परा में नानक वंश को पल्लवित एव पुष्पित करने में पूज्य प्रवर्तक, प्रज्ञा के धनी, गुरुदेव श्री पन्नालाल जी म सा ने विशेप भूमिका का निर्वाह किया । उस वृक्ष को स्वाध्याय शिरोमणि आचार्यश्री सोहनलाल जी म.सा. ने अपने निर्मल भावो से सिंचित कर उसे सदैव सघन बनाने का प्रयास किया । अपनी नेश्रायस्थ सभी सन्तों एवं सतियो को लोक-व्यवहार के शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्रदान की । जीवन के ऊँचे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बाह्य चक्षुओं का नहीं बल्कि अन्तर्चक्षुओं का खुलना आवश्यक होता है । परम विदुषी महासती जी डॉ रत्नत्रयी जी म सा ने योग्य गुरु से प्राप्त ज्ञान की पावन सलिला को अन्तर से उतारकर जन-मन के मध्य प्रवाहित किया है ।
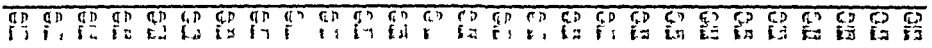
आपने सदैव प्रसन्न मन रहते हुए सहजता एवं ऋजुता को बनाये रखा । आपकी वाणी मे आत्मीयता की झलक के साथ गहन चिन्तन की अनुभूति प्रकट होती है । जैन-साहित्य के प्रसार की - उसे वहु-भोग्य बनाने की आपके हृदय मे अद्‌भुत तड़प है । गुरुदेव के आदेश की अनुपालना हेतु सामायिक एव स्वाध्याय की ज्योति को जलाये रखने में आपका अनुपम योगदान है ।

आपका विक्रमाब्द 2054 का जालिया ग्राम का चातुर्मास एक स्मरणीय-ऐतिहासिक चातुर्मास था । श्रद्धालु जैन एव जैनेतर प्रतिदिन के प्रवचन मे उपस्थित होते । प्रवचनो की सर्वग्राह्यता ऐसी थी कि प्राय: किसी ने भी किसी भी दिन का प्रवचन नहीं छोड़ा । उस पावस-काल के प्रवचनो का एक संग्रह 'त्रिवेणी की पावन-धारा' के नाम से प्रकाशित हुआ । धर्मप्रेमी, श्रद्धालु पाठकों ने उस कृति को उत्साह से स्वीकार कर अपने प्रवचनों का दूसरा संग्रह प्रदान करने की प्रार्थना की । विपय की गंभीरता को सरल-सुबोध शैली में प्रकट करना आपके प्रवचनों की विशेषता है । संस्कृत के श्लोकों एव सूक्तियो का उपयोग, प्राकृत की गाथाओं व हिन्दी के मुक्तकों-वाक्यांशों का प्रयोग करने से तथा प्रेरणाप्रद कथाओं के समावेश के कारण प्रत्येक प्रवचन अत्यन्त रोचकता को लिए हुए होता है । 'त्रिवेणी की पावन धारा' कृति की भाँति ही इस कृति के सम्पादन का भार आपने मेरे कमजोर हाथों मे सौंपकर अपनी सहृदयता का ही परिचय दिया है।

महासती जी श्री डॉ ज्ञानलताजी म.सा, डॉ श्री दर्शनलताजी म.सा, डॉ श्री चारित्रलताजी म सा ने धर्मप्रेमी जन-समुदाय के मध्य जो प्रवचन दिये उन्हें अक्षरश: कागज पर अंकित कर लिया गया । महासती म.सा ज्ञान के अथाह भण्डार है । भाषा पर आपका पूरा अधिकार है । ऐसे सुन्दर प्रवचनों को एक बार पढकर आवश्यक संशोधन एवं सम्पादन का मुझे अधिकार देना आप श्री की सहृदयता का सूचक है । विक्रम संवत् 2057 के बिजयनगर-चातुर्मास में प्रतिदिन कुछ पल आपके सन्निकट बैठकर ज्ञानाराधना में व्यतीत किये वे अविस्मरणीय है । आपके वैदुष्यपूर्ण सान्निध्य

से मुझे बहुत कुछ सीखने का सौभाग्य मिला । इस कृति के सभी प्रवचन आप श्री की प्रतिभा ने साकार प्रतिबिम्ब है । इनमें एक ओर जहाँ धर्म की दैदीप्यमान ज्योति है वहाँ युग-धर्म का पूरा-पूरा निर्वाह भी किया गया है । प्रत्येक प्रवचन जीवन के गूढ़ तत्त्वों को प्रकट करता हैं वहीं प्रवचनकार के व्यक्तित्व को दर्शाने में सक्षम है ।

प्रत्येक प्रवचन जीवन के खण्ड-खण्ड की अपेक्षा समग्र जीवन को नवीन दृष्टिकोण से देखने का सन्देश देता है, श्रद्धा के भावों को बढ़ाता है तो धर्म की धारा से जुड़ने का सन्देश भी प्रदान करता है । आज का मानव चिन्तन को छोड़ चिन्ता मे जल रहा है, ऐसे व्यक्ति के अन्तर्चक्षुओ को खोलकर ये प्रवचन विवेक के पथ का मार्गदर्शन करते है । धर्म का मर्म समझाते हुए सत्य के संसार का परिचय देने मे सक्षम हैं वहीं स्वार्थ को हटाकर परमार्थ के लिए पुरुषार्थ जगाते हुए आत्मोन्नति का द्वार खोलने में भी समर्थ है । इनमें कविता एवं मुक्तक की मधुर स्वर लहरी है, वही कदम-कदम पर सूक्तियो की अद्‌भुत छटा है । इन्हें बार-बार पढ़ने का भाव जाग्रत होता है । अपने विचारों की गंभीरता को स्थान-स्थान पर लघु कथाओं के माध्यम से रोचकता प्रदान की गई है । यह कृति एक ऐसा गुलदस्ता है जिसमें प्रवचनों के माध्यम से विभिन्न रग बिरंगे सुमनों को एक जगह एकत्रित कर दिया गया है । प्रत्येक सुमन अपने आप मे पूर्ण सौरभमय है । ये प्रवचन-पुष्प आपके गुण, ज्ञान, विद्वत्ता एवं वाणी की मधुरिमा प्रकट करते हैं । यह कृति आध्यात्मिक प्रकाश-पुञ्ज को अपने में समेटे हुए प्रत्येक पाठक को सत्य से साक्षात्कार कराने में सक्षम है । इनमे वर्तमान युग की दैहिक, दैविक एव भौतिक समस्याओ का समाधान है । यदि पाठक इनको अपने जीवन में आचरित कर ले तो उसके जीवन में रूपान्तरण घटित हो सकता है ।

वे धर्मप्रेमी सज्जन सौभाग्यशाली हैं जिन्होंने महासतीजी के मुखारविन्द से धर्म-वाणी को श्रवण करते हुए इन प्रवचनों के पीयूष का पान किया है । आज महासतीजी की यशः सौरभ भारत के सुदूर प्रान्तो तक फैल

रही है । जिन-शासन इन देदीप्यमान मणियों से धन्य हो गया है । जो धर्म प्रेमी श्रावक महासती जी के प्रवचन सुनकर लाभ नहीं उठा पाये वे इनका पठन करके अपने जीवन को धन्य वना पायेंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है ।

मै श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी संघ, गुलावपुरा का भी आभारी हूँ कि जिन्होंने प्रवचन की इस पावन कृति को प्रकाशन से पूर्व ही मुझे पढने का सौभाग्य प्रदान किया है । श्रद्धेया डॉ रत्नत्रयी जी म.सा. को मेरा अन्तर्मन बार-बार साधुवाद देते हुए हर्ष-विभोर हैं कि उन्होंने जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु इन प्रवचनो को प्रकाशन के सोपान पर चढ़ाने की स्वीकृति प्रदान की है । आपके सद्प्रयासों से इस प्रकार के सुमनों से सजी कृतियॉ श्री स्वाध्यायी संघ की डाल पर खिलती रहेंगी ।

अन्त में उन क्षणो को मेरा नमन जिन क्षणो में वाणी में प्रस्फुटित ये प्रवचन लिपिबद्ध हो सके । अपने सम्पादकीय उत्तरदायित्व मे जो कुछ अच्छा है वह महासतीजी का है । पुनः उनके चरणों में प्रणाम् करता हूँ और जो कुछ कमी है उसे अपनी मानकर स्वीकार करते हुए क्षमा चाहता हूँ ।

1 जनवरी, 2001 — डॉ. शशिकर 'खटका राजस्थानी'
कवि कुटीर — एम.ए, पी एच डी.
राणा प्रताप मार्ग, बिजयनगर
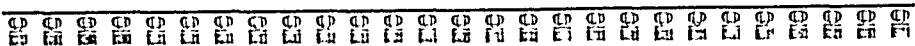
प्रकाशकीय

ज्ञान-राशि का वह संचित कोप, जिसमे सार्वजनीन हित सबंधी स्थायी विचार रक्षित रहते है, वह साहित्य कहलाता है । यह साहित्य भी दो प्रकार का होता है - प्रेयस्कर व श्रेयस्कर । प्रेयस्कर साहित्य मनोरंजन करने वाला होता है, हृदय को कुछ क्षणों के लिए गुदगुदाता है, भोगाकांक्षा को जागृत करता है अत: वह सार्वकालिक नहीं होता, उसका स्थायी मूल्य नही होता । कभी-कभी ऐसा साहित्य समता का भंग भी करता है । श्रेयस्कर साहित्य ही वह साहित्य है जो मनुष्य के अन्तर्चक्षुओ को उन्मीलित करता है, उसे सदाचार का पाठ पढ़ाता हैं, सह-अस्तित्व-सहयोग से आगे बढ़ना सिखाता है तथा उसकी गति को पूर्ण मानवता की ओर उत्प्रेरित करता है । इससे मन की चंचलता नियंत्रित होती है एवं विकृतियों का शमन भी होता है ।

किसी भी जाति, समाज या राष्ट्र के उत्थान-पतन को जानना हो, व्यक्ति के ह्रासोन्मुख या विकासोन्मुख विचारों की थाह लेना हो तो उस समाज के सर्जित साहित्य को पढ़ने से ज्ञात हो जायगा । जल-पूरित मेघ-खण्ड जैसे इधर-उधर फैलकर - बरसकर धरती को शस्य-श्यामला बनाते हैं वैसे ही श्रेयस् से परिपूर्ण साहित्य ही मानव को पूर्ण मानव बनाने में सक्षम है । सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की त्रिवेणी मे यदि निमज्जित होना हो तो ऐसे ही साहित्य का अध्ययन-चिन्तन-मनन करना चाहिए ।

जैन समाज में ज्ञान का विशेष महत्त्व है, इसलिए स्वाध्याय की परम्परा यहॉ सदैव रही है । साधु-साध्वियां तो आगमो का स्वाध्याय करते ही है, श्रावक श्राविकाएं भी जीवनोन्नति कारक, सत्शास्त्रों का पारायण करते रहे है । आज पाठक-समुदाय को ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो विषय-वासनाओं को उद्दीप्त न करे, विकारों का शमन करे एवं जो चित्त की स्थिरता का नियामक हो । अवश्य ही, इस प्रकार का साहित्य आज अति अल्पमात्रा में हैं । नैतिकता व मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापक साहित्य की आज महती आवश्यकता है ।

अनुभूति के स्तर पर जांचा-परखा ऐसा साहित्य प्रकाश में आए तो निश्चित रूपेण वह संपूर्ण मानव के लिए हितावह ही होगा । जैन संत-सतियां यथार्थ के कठिन धरातल का स्पर्श करते हैं वहीं जन-जीवन को अति निकटता से देखते हैं इसलिए उनके कथन मे पूर्ण सचाई एवं ईमानदारी होती हैं । ऐसा जीवन्त साहित्य देने में उनकी लेखनी समर्थ होती है ।

साधनारत श्रद्धेया महासतीजी श्री डॉ. ज्ञानलताजी म सा., डॉ. दर्शनलताजी म सा, डॉ चारित्रलताजी म.सा का साहित्य ऐसा ही साहित्य है जिसमे अतीत के सुनहरे चित्र भी है तो वर्तमान की विद्रूप स्थितियों का चित्रण भी, साथ ही सुखद अनागत के लिए दिशा-निर्देशन भी । श्रद्धेया डॉ साध्वीरत्नत्रयी जी गंभीर चिन्तिका हैं, तो आगमों की कुशल विवेचिका भी । ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एवं दैनदिन धर्म-क्रियाओं में संलग्न रहते हुए भी अध्यात्म, नीति व सदाचरण से संबंधित उन्होने प्रवचन दिए है । आपके प्रवचनों का एक सग्रह अभी दो-वर्षो पूर्व ही 'त्रिवेणी की पावनधारा' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसे श्रद्धालुजन-समुदाय ने हाथों हाथ लिया एवं एक और प्रवचन-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करने की मांग रख दी ।

श्रद्धेया महासतीजी डॉ साध्वीरत्नत्रयी जी का विक्रमाब्द 2055 का थांवला-चातुर्मास अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है । धर्माराधना-त्याग-तपस्या तो प्रचुर मात्रा में हुई ही, श्रद्धालु श्रोताओ-दर्शनार्थियों का आवागमन भी निर्बाध जारी रहा । उनके जीवन में रूपान्तरण घटित करने के लिए सचोट प्रवचन भी हुए । श्रद्धेया महासतीजी की प्रवचन शैली में सहज प्रवाह है, चिन्तन करने के लिए विवश करने की शक्ति है तो यत्र तत्र चुटीला व्यंग्य भी है । आपके प्रवचनों में न केवल जैन तत्वज्ञान का ही प्रतिपादन हुआ, अपितु उनसे जन-जन को व्यसन-रहित, सदाचार युक्त जीवन जीने की प्रेरणा भी मिली । समता, निरहकारिता, क्षमा, मृदुता, वाणी-विवेक, कषाय-विजय, समय का सदुपयोग, विरतिमय जीवन आदि अनेकानेक विषयों पर आपने अपने विचारो को अभिव्यक्ति दी । इन्हीं प्रवचनों का एक संग्रह **'मंजिल की ओर'** नाम से प्रकाशित कर पाठकों को समर्पित करते हुए हमें परम हर्ष है ।

इन प्रवचनो के सपादन में हमें श्रीमान् चांदमल जी सा. बावेल, भीलवाडा वालों का एवं कविहृदय डॉ शशिकर जा 'खटका राजस्थानी' का हार्दिक सहयोग मिला, जिन्होंने सभी प्रवचनों को आद्योपान्त पढ़कर अपने सुझावो से हमें लाभान्वित किया है अत: उनके प्रति हम हृदय से आभारी हैं । हमारी प्रार्थना को ध्यान मे रखकर श्री प्राज्ञ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजयनगर के प्राचार्य श्रीमान् सम्पतराज जी सा ढ़ाबरिया ने 'भूमिका' लिखकर प्रवचनों के मर्म को स्पष्ट किया है, अत: उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं ।

प्रस्तुत प्रवचन-सग्रह को प्रकाश मे लाकर सर्वजन-सुलभ बनाने के लिए मुम्बई निवासी श्रीमान् कंवरलाल जी सा सांखला की धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलादेवी जी सांखला ने अपना अमूल्य आर्थिक सहयोग प्रदान किया एवं अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया अत: वे भी धन्यवादार्ह है- उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

इसे अल्प समय में ही मुद्रित कर सुलभ बनाया, इसके लिए निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर के मालिक श्री जितेन्द्रकुमार जी पाटनी को भी साधुवाद देना नहीं भूल सकते । उन्होंने निरन्तर परिश्रम कर इसे प्रकाशित किया है ।

आशा है कि पाठक प्रस्तुत प्रवचन-सग्रह से लाभ प्राप्तकर नैतिक जागरण की दिशा में आगे बढेंगे - इसी विश्वास के साथ -

मंत्री
श्री श्वे स्था जैन स्वाध्यायी संघ,
गुलाबपुरा

गुलाबपुरा
दि 20 1 2001

अनुभूति के स्तर पर जाचा-परखा ऐसा साहित्य प्रकाश मे आए तो निश्चित रूपेण वह संपूर्ण मानव के लिए हितावह ही होगा । जैन संत-सतिया यथार्थ के कठिन धरातल का स्पर्श करते है वहीं जन-जीवन को अति निकटता से देखते हैं इसलिए उनके कथन मे पूर्ण सचाई एवं ईमानदारी होती है । ऐसा जीवन्त साहित्य देने में उनकी लेखनी समर्थ होती है ।

साधनारत श्रद्धेया महासतीजी श्री डॉ ज्ञानलताजी म सा , डॉ. दर्शनलताजी म सा , डॉ. चारित्रलताजी म सा का साहित्य ऐसा ही साहित्य है जिसमें अतीत के सुनहरे चित्र भी है तो वर्तमान की विद्रूप स्थितियों का चित्रण भी, साथ ही सुखद अनागत के लिए दिशा-निर्देशन भी । श्रद्धेया डॉ साध्वीरत्नत्रयी जी गभीर चिन्तिका हैं, तो आगमों की कुशल विवेचिका भी । ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एवं दैनंदिन धर्म-क्रियाओं में संलग्न रहते हुए भी अध्यात्म, नीति व सदाचरण से संबंधित उन्होने प्रवचन दिए हैं । आपके प्रवचनों का एक सग्रह अभी दो-वर्षो पूर्व ही 'त्रिवेणी की पावनधारा' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसे श्रद्धालुजन-समुदाय ने हाथो हाथ लिया एवं एक और प्रवचन-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करने की मांग रख दी ।

श्रद्धेया महासतीजी डॉ साध्वीरत्नत्रयी जी का विक्रमाब्द 2055 का थांवला-चातुर्मास अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है । धर्माराधना-त्याग-तपस्या तो प्रचुर मात्रा में हुई ही, श्रद्धालु श्रोताओ-दर्शनार्थियों का आवागमन भी निर्बाध जारी रहा । उनके जीवन में रूपान्तरण घटित करने के लिए सचोट प्रवचन भी हुए । श्रद्धेया महासतीजी की प्रवचन शैली में सहज प्रवाह है, चिन्तन करने के लिए विवश करने की शक्ति है तो यत्र तत्र चुटीला व्यंग्य भी है । आपके प्रवचनों में न केवल जैन तत्वज्ञान का ही प्रतिपादन हुआ, अपितु उनसे जन-जन को व्यसन-रहित, सदाचार युक्त जीवन जीने की प्रेरणा भी मिली । समता, निरहंकारिता, क्षमा, मृदुता, वाणी-विवेक, कषाय-विजय, समय का सदुपयोग, विरतिमय जीवन आदि अनेकानेक विषयों पर आपने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी । इन्हीं प्रवचनों का एक संग्रह **'मंजिल की ओर'** नाम से प्रकाशित कर पाठकों को समर्पित करते हुए हमें परम हर्ष है ।

इन प्रवचनों के सपादन में हमें श्रीमान् चांदमल जी सा बाबेल, भीलवाडा वालों का एवं कविहृदय डॉ शशिकर जी 'खटका राजस्थानी' का हार्दिक सहयोग मिला, जिन्होंने सभी प्रवचनो को आद्योपान्त पढ़कर अपने सुझावो से हमें लाभान्वित किया है अत: उनके प्रति हम हृदय से आभारी हैं । हमारी प्रार्थना को ध्यान में रखकर श्री प्राज्ञ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजयनगर के प्राचार्य श्रीमान् सम्पतराज जी सा ढ़ाबरिया ने 'भूमिका' लिखकर प्रवचनों के मर्म को स्पष्ट किया है, अत: उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं ।

प्रस्तुत प्रवचन-संग्रह को प्रकाश में लाकर सर्वजन-सुलभ बनाने के लिए मुम्बई निवासी श्रीमान् कवरलाल जी सा सांखला की धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलादेवी जी सांखला ने अपना अमूल्य आर्थिक सहयोग प्रदान किया एवं अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया अत: वे भी धन्यवादार्ह है- उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते है ।

इसे अल्प समय में ही मुद्रित कर सुलभ बनाया, इसके लिए निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर के मालिक श्री जितेन्द्रकुमार जी पाटनी को भी साधुवाद देना नहीं भूल सकते । उन्होंने निरन्तर परिश्रम कर इसे प्रकाशित किया है ।

आशा है कि पाठक प्रस्तुत प्रवचन-संग्रह से लाभ प्राप्तकर नैतिक जागरण की दिशा में आगे बढ़ेंगे - इसी विश्वास के साथ -

मंत्री

श्री श्वे. स्था जैन स्वाध्यायी संघ,

गुलाबपुरा

गुलाबपुरा

दि 20 1 2001

धर्मानुरागी - सांखला-परिवार
एक परिचय

"जीवन जागने के लिए है । सात्विकता के समान जीवन मे कोई आनन्द नही है । सपत्ति और वैभव मनुष्य को सुख देगे-यह भ्रम है। आन्तरिक सौन्दर्य और आनन्द मे ही सुख है । वास्तविक सौन्दर्य शान्त प्रकृति, पवित्र आचार और मधुर व्यवहार मे है । ये बाते जिस जीवन मे हे, वही वस्तुतः सुखों का भोक्ता हे ।"

नीतिकारो की इस उक्ति के प्रकाश मे जब हम शासननिष्ठ, सुदृढ़ आस्था-संपन्न श्रीमान् कवरलाल जी सा सांखला के जीवन का अवलोकन करते हैं तो वहॉ हमे सात्विक जीवन एवं उच्च विचार के दर्शन होते है। उनके जीवन मे कर्मठता है किन्तु अभिमान नहीं, वैभव-संपन्नता है किन्तु मिथ्याडम्बर नहीं, आध्यात्मिकता है किन्तु रूढिग्रस्तता नहीं । सर्वत्र एक सहज, सरल एवं निर्विकार जीवन-दृष्टि है उनकी । इसी कर्मण्यता के सहारे 50 वर्ष से अधिक आयु मे भी आप मुंवई महानगरी मे डायमंड एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट के व्यवसाय मे संलग्न हें ।

आपके पिता समादरणीय श्रीमान् माणकचद जी सा सांखला एवं माता श्रीमती भंवरकंवर बाई जी भी यशस्वी-वर्चस्वी जीवन के धनी हैं। आपका जीवन उत्तम चिन्तन, सर्वोत्कृष्ट भावनाओं व आस्थावान चारित्र से ओतप्रोत है ।

श्रीमान् कवरलालजी सा की धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलादेवी जी भी धर्मनिष्ठ, सेवा-परायण, उदार हृदयी महिला है । आपके पिता श्रीमान् कालूराम जी सा संचेती एवं माता श्रीमती उगमकवरबाई जी संचेती मूलतः लीडी (जिला-अजमेर) के निवासी है एवं वर्तमान मे बिजयनगर निवास कर रहे है । आपको अपने माता-पिता से मिले धार्मिक संस्कार पुष्पित पल्लवित हो रहे हैं । आपके समान आपके सुपुत्र श्रीमान् दीपककुमारजी सांखला व पुत्रवधू श्रीमती आशादेवीजी भी प्रतिभाशाली व सादाचारयुक्त जीवन की धनी हैं । कनिष्ठ पुत्र श्री राजीव जी सांखला व पुत्री सुश्री नमिता भी विद्यानुरागी है ।

श्रीमान् कवरलालजी सा के भ्राता श्रीमान् भंवरलाल जी सा, श्रीमान् शांतिलालजी सा व मदनलालजी सा भी प्रामाणिकतापूर्वक निजी व्यवसाय मे संलग्न रहकर समाज-सेवा में अग्रणी है । उनसे धर्म एवं समाज की सेवा की बहुत बड़ी आशा है ।

श्रीमान् कंवरलालजी सा मुम्बई मे संस्थापित अजमेर-भीलवाड़ा के जैन संगठन के सस्थापक सदस्य है एव उनके माध्यम से मुम्बई में प्रवास कर रहे स्वधर्मी बन्धुओं की सेवा-सहायता में अग्रणी रहते हैं । इस प्रकार आपका सम्पूर्ण परिवार आदर्श, श्रद्धाशील व संस्कार-संपन्न तथा धर्मनिष्ठ है । प्रस्तुत प्रकाशन मे आपका उदार सहयोग प्राप्त हुआ, अतः कोटिशः साधुवाद ।

नेकी कर : भव भार उतर

महानुभावो ।

धर्माचार्यो ने कहा है -

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियगं जिण सासणयं ॥

अर्थात् जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरो के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरो के लिए भी मत चाहो । यही जिनशासन है, तीर्थकरो का उपदेश है । बृहत्कल्प भाष्य का यह सूत्र मनुष्य को मनुष्यता का ही सन्देश प्रदान करता है । मनुष्य यह चाहता है कि मुझे इस जीवन मे सुख मिले, पद-प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो, सब लोग मेरा सम्मान करे, ऐसा विचार रखने वाले को चाहिए कि वह भी दूसरो को सुख एवं सम्मान दे । जीवन का प्रत्येक क्षण संसार की भलाई मे व्यतीत करें । बुराइयों से बचकर चले । कीचड़ में पांव रखने से कीचड का कुछ नहीं बिगड़ता, बल्कि जो कीचड़ मे पॉव रखेगा, वही उससे गन्दा होगा । जब तक मनुष्य की मूर्च्छा नही टूटती वह न तो अपना सही मूल्यांकन कर पाता है और न वह दूसरे का ही मूल्यांकन कर सकता है । इससे अच्छा तो यही है कि हम जितना बाहर की ओर देखने का प्रयत्न कर रहे हैं उतना ही भीतर की ओर भी देखने का प्रयत्न करे । जिसने अपने भीतर देख लिया, अपने आपको देख लिया, वह बाहर के दृश्यो से अपने आपको हटा लेगा । बाहर सब कुछ गड़बड़ है भीतर अद्भुत शान्ति का साम्राज्य है ।

शान्ति की प्राप्ति के लिए ही व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी प्रयत्नरत है । शान्ति बाहर मिल ही नही सकती । आप चाहे जंगल में चले जायँ, पहाड़ो की कन्दरा में बैठ जायँ, जब तक अपने भीतर शान्ति नहीं तब तक मन सदैव उखड़ा-उखड़ा ही रहेगा । मुझे हकीम लुकमान की शिक्षाओं का स्मरण आ रहा है । लुकमान अपने समय के बहुत सिद्ध हस्त चिकित्सक थे । उनका जीवन सादगी से ओतप्रोत था । उनके विचारो को जानकर लगता है वे मनोचिकित्सक थे । उन्होंने जीवन की सफलता के लिए तीन सूत्र बताये जो उस काल मे तो उपयोगी थे ही, वे आज और भी प्रासंगिक हो गए है । महापुरुषों के विचार तो सार्वकालिक होते ही हैं । यदि उनको जीवन में उतार ले तो सारी समस्याएँ ही हल हो जायें । वे सूत्र क्रमशः नेकी कर, बदी से बच एवं परहेज कर-हैं ।

उस महान् चिकित्सक के जीवन के प्रति अपनाये गये सात्विक दृष्टिकोण से हर युग लाभान्वित हुआ है । दवा का प्रभाव तो सिर्फ दवा लेने वाले पर ही पड़ता है मगर सदुपदेशों का प्रभाव तो जो भी सुन लेता है, सुनकर अन्तर्मन में उतार लेता है उन सभी पर दिखाई देने लगता है। ये सूत्र बड़े छोटे है मगर गहरे भावो से युक्त हैं । ये आरोग्य के बीज मंत्र है । बीज छोटा होता है मगर उसमें विशाल वृक्ष का रूप छिपा हुआ है । महापुरुषों की वाणी में शब्द कम भाव अधिक होते है । महाकवि बिहारी ने अपना सारा काव्य दोहा, छन्द में ही लिखा है । विद्वान् समालोचकों ने एक-एक दोहे के विभिन्न अर्थ लगाकर उनके काव्य 'बिहारी सतसई' पर कहा है -

सत सैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर ।
देखन में छोटे लगे, घाव करें गंभीर ॥

उनके छोटे-छोटे दोहे मन को मथ देने वाले भावों से युक्त हैं। भावो की गंभीरता के कारण ही बड़े-बड़े साहित्यकार उनकी काव्य-कला का लोहा मानते है । यही बात हकीम लुकमान के सूत्रों में छिपी है । आज विज्ञान ने चिकित्सा के क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति कर दी है । संसार में लोग बढ़ रहे हैं, तो रोग भी बढ़ रहे हैं । वर्तमान युग की शारीरिक अस्वस्थता का मूल कारण यदि देखा जाये तो वह हैं मानसिक तनाव,

अवसाद पूर्ण, चिन्तन, मन की राग-द्वेपात्मक परिणतियाँ । चिकित्सकों को इसीलिए अपने प्रशिक्षण काल में मनोविज्ञान का अध्ययन करना पड़ता है। वह रोगी के शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक करने के साथ-साथ उसकी मनोचिकित्सा भी करता है । वह रोगी मे विश्वास जगाता है कि चिन्ता छोड़ दो, सब ठीक हो जायेगा । ज्यों-ज्यो रोगी का विश्वास जाग्रत होता है, त्यों-त्यो यह विश्वास ही उसे स्वस्थ बनाता है । मन में जब तक शोक, चिन्ता, अवसाद, ईर्ष्या, तनाव, दुर्भाव की स्थिति है तब तक शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता । हकीम लुकमान ने यही किया था । उन्होंने जीवन के प्रति सकारात्मक सोच जाग्रत किया।

उन्होंने अपने प्रथम सूत्र में ही कहा है कि नेकी कर अर्थात् भलाई कर । चाहे तू कष्ट मे भी है, दुःख में भी है मगर नेकी का पथ मत छोड़ । आजकल कई लोग कहते है - महाराजश्री ! भलाई का तो जमाना ही नही है । हम अच्छा करते है तो भी उसका बुरा ही फल मिलता है । निःस्वार्थ भाव से सेवा करने पर भी लोग सोचते है - इनका कोई स्वार्थ होगा । मै तो कहती हूँ भाई ! आप लोगो के विषय में सोचते ही क्यों है, आप तो अपने काम मे लगे रहे । दुनियाँ की ओर ध्यान दोगे तो अपने जीवन को कल्याण के पथ पर बढ़ा नही पाओगे ! तुम तो अपने भीतर का स्वर सुनो और उसी के अनुसार कार्य करो ।

एक व्यक्ति अपने पुत्र के साथ मेले में गया । वहाँ पर उत्तम नस्ल के घोड़े भी विक्रय को आये थे । पुत्र ने पिता से एक घोड़ा क्रय करने की बात कही तो पिता ने घोड़ा खरीद लिया और उस पर चढ़कर घर की ओर चल दिये । रास्ते मे कुछ लोग मिले, उनमे से एक ने कहा- अरे, अरे ! देखो तो दया तो दुनियाँ से ही उठ गई है । बेचारे एक घोड़े पर दो-दो व्यक्ति बैठे हैं ! भगवान इन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा । पिता के मन में कुछ विचार आया और वह घोड़े से नीचे उतरकर पैदल चलने लगा । घोड़े पर उसका पुत्र बैठा रहा । कुछ दूरी पर फिर आदमी मिले । एक ने कहा - क्या जमाना आ गया है, बेचारा वृद्ध तो पैदल चल रहा है और जवान मुस्टण्डा घोड़े पर बैठा है । पुत्र ने सोचा- यह व्यक्ति ठीक ही तो कह रहा है, मुझे पैदल चलना चाहिए । वह नीचे उतर गया और पिता को बिठा दिया । आगे फिर लोग मिले उनमें से
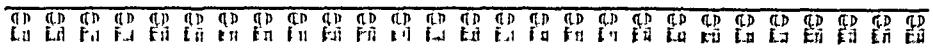
एक बोला - देखो-देखो । बेचारे बच्चे को तो पैदल चलाया जा रहा है और वह मूर्ख घोड़े पर बैठा हुआ है । वह व्यक्ति उसकी बात सुनकर नीचे उतर गया और पुत्र के साथ पैदल-पैदल चलने लगा । आगे अन्य लोग मिले उनमे से एक ने कहा - ताज्जुब है । इतना हट्टा कट्टा घोड़ा होते हुए भी ये दोनों पैदल चल रहे है । अरे ! पैदल ही चलना था तो फिर घोडा ही क्यो लिया ? पिता-पुत्र एक दूसरे का मुँह देखने लगे!

बन्धुओ । क्या उचित है और क्या अनुचित है ? इसका विवेक तो आपको स्वय ही करना होगा । दुनियाँ की बातो पर ध्यान देने वाले कभी आगे नहीं बढ सकते । भलाई तो भलाई होती है, इसमे क्या सोचना? स्वयं को कष्ट मे डालकर भी दूसरो को दुःख से बचा सकते हैं तो यह मानव का सबसे बड़ा धर्म है । एक गीत की पंक्तियाँ मुझे बडी श्रेयस्कर लगी, उसके शब्द थे -

दूसरों का दुःखड़ा दूर करने वाले,
तेरा दुःख दूर करेंगे राम ।

सत का यह पथ है धरम का यह मारग,
संभल-संभल तू चलना रे प्राणी ।

नहीं किसी का मन तू दुःखाना,
मधुर-मधुर नित बोल रे वाणी ।

तू बस अपना काम किये जा ॥
तेरा भण्डार भरेंगे राम ॥

गीत का हर शब्द हमें भला करते रहने का सन्देश देता है । अच्छे विचारों से आत्मा को बल मिलता है । प्रवचन के पीछे भी महापुरुषों की यही भावना रही है कि उपदेश-श्रवण से जीवन का कल्याण होता है । वैसे धर्म-श्रवण की सार्थकता इसी में है कि श्रद्धापूर्वक श्रवण कर जीवन मे उसे अपनाया जाय । हकीम लुकमान भी यही कहते हैं कि नेकी कर । परिणाम पर विचार करोगे तो कष्ट में उलझ जाओगे । भलाई करके भूल जाने में ज्यादा आनंद है । हमारे यहाँ एक कहावत प्रचलित है - नेकी कर-दरिया मे डाल । भला तो की हुई भलाई को भूलने में ही है । यह भलाई किसी भी रूप में की जा सकती है ।
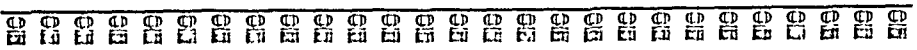
यदि कोई धनवान है, तो उसे अपने धन का सदुपयोग अपने हाथों से समाज की भलाई मे करना चाहिए । खाने, खर्चने और देने के बाद यदि धन बचे तो उसे इकट्ठा करे किन्तु यह नीति नहीं है कि स्वयं भी उपयोग न करें और दीन दुःखी को भी न दे, वरन् उसे जोड़-जोड़कर मर जायॅ । ऐसा जोड़ा हुआ धन कभी-कभी स्वयं के लिए विपत्ति का कारण भी बन जाता है । आपने मधुमक्खी को देखा होगा । मधुमक्खियॉ अनेक फूलों से रस एकत्रित करके उसे शहद रूप में परिणत कर देती है । उनके छत्ते में शहद भर जाता है । न वे स्वयं उसे खाती है और न दूसरों को ही खिलाती है । जब छत्ता विशाल हो जाता है, उसमें बहुत-सा शहद एकत्रित हुआ जानकर वे स्वार्थी-शहद लोलुपी व्यक्ति छत्ते के नीचे आग जलाकर उन मधुमक्खियो को घर से बेघर कर छत्ता तोड देते हैं, उससे शहद निचोड़ लेते है । इस भाति धन को जोडने वालों को भी अपना विवेक जगाना चाहिए । क्योकि धन की तीन गतियॉ होती है- दान, भोग और नाश । धन की उत्तम गति दान को माना गया है दान के द्वारा जग की भलाई भी हो सकती है एवं कर्मो की निर्जरा भी। दूसरी गति भोग की है लेकिन कहॉ तक भोग कर पाओगे ! इसकी भी सीमा है अन्त में नाश ही होगा । लोग ही इसका उस मधुमक्खी के शहद की भांति उपयोग करेंगे, अतः संचित धन के सदुपयोग में ही भलाई है।

धन की प्राप्ति भी पुण्य कर्मो से होती है । जो अपने धन को संचित कर पुनः परोपकार के कार्यो मे लगाते हैं, वे पुण्य कर्मो का संचय करके उत्तम गति प्राप्त करने की कमाई कर लेते हैं । युगो-युगो तक लोग उन्हे कर्ण-भामाशाह, जगडूशाह आदि की भांति सम्मान, आदर देकर एवं प्रशंसा करके स्मरण करते है । व्यक्ति को सदैव निःस्वार्थ भाव से जीवन एवं धन को क्षण भगुर मानते हुए नेक कार्य में खर्च करते रहना चाहिए। कर्मो का खेल निराला होता है । राजा को रंक और रंक को राजा बनते देर नही लगती । कबीर ने ठीक कहा है -

धन यौवन का गर्व न कीजै ।
कागद ज्यों गल जायेगा ॥

इस जीवन का कोई भरोसा नही है । तन, धन एव यौवन पर अहकार करना मानव की मूढता है । जीवन को सहजता से जीते हुए
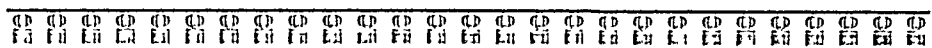
अपनी प्राप्त उपलब्धियो को सद्कार्यों मे लगाना ही जीवन का ध्येय होना चाहिए । जो पुण्य कर्मो से प्राप्त हुआ उसे पुण्य कर्म मे ही खर्च करना श्रेयस्कर है । इस संसार मे, राम-रावण, कृष्ण-कंस, पृथ्वीराज-जयचन्द, राणा प्रताप-मानसिंह एक ही समय में हुए मगर हम एक के प्रति अर्थात् राम, कृष्ण, पृथ्वीराज, राणा प्रताप के प्रति सम्मान के भाव रखते हैं दूसरो के प्रति नहीं । यह श्रद्धा उनके द्वारा अपना जीवन परहित में समर्पित करने के कारण ही है ।

नेकी करके भूलना भी आवश्यक है । यदि नेकी याद रहेगी तो अहंकार को जाग्रत करेगी । अहंकार तो मानवता का परम शत्रु है । व्यक्ति को अपनी प्रशंसा एवं प्रसिद्धि के लिए नहीं अपितु कामना से रहित होकर पर-पीडा दूर करने की भावना से भलाई के कार्यो मे संलग्न रहना चाहिए । दुष्ट लोग तो हर युग मे रहे हैं । रावण, कंस, जयचन्द तो हर युग में आयेंगे, उनका नाम बदला हुआ होगा मगर कर्म तो अहंकारवश वही करेंगे जो पहले करते थे । वे आपके सत्कार्यो के बदले उपहास, निन्दा, गालियाँ, शारीरिक-यातनां, कुछ भी करने को तत्पर हो जायें मगर आपको अपना रास्ता नही छोड़ना है । गोशालक ने भगवान महावीर की कितनी निंदा की मगर विजय सदैव सत्य की होती है, आज गोशालक को कौन याद करता है ? अरे । ऐसे लोग तो दया के पात्र होते हैं । ऐसे मूढ़मतियों को तो क्षमा करके आगे बढ़ जाना ही उचित है । नीति तो यही कहती है कि -

एयं चिय बहुलाहो जीविज्जइ जं खलाण मज्झम्मि ।
लाहो जं न डसिज्जइ भुयंग परिवेढिए चलणे ॥

अर्थात् खलों-दुर्जनों के बीच जीवित रहे, यही बहुत बड़ा धर्म है । पैर में लिपटा साँप यदि नहीं काटता है तो बहुत है । हमको तो अपना कार्य करना है । दुष्टो की बातों पर ध्यान देंगे तो परेशानियाँ कम नही होगी बल्कि वे और अधिक बढ़ेंगी । दुर्जन के भय से ही लोग उन्हें नमस्कार करते है । उनके प्रति श्रद्धा का भाव किसी में नहीं होता । अन्तर्मन से वह संसार की घृणा का पात्र होता है । उनका जीवन तो दीवार पर टंगे उस चित्र की भांति है जिसमें प्रकृति का दृश्य हो,

फल-फूल युक्त वृक्ष हो, बहती हुई नदी हो मगर उससे न तो भूखे को फल मिल सकते है न प्यासे की प्यास बुझ सकती है । दुष्टों से भलाई की इच्छा करना रेत में से तेल और पानी से मक्खन निकालने जैसा है। सज्जन पुरुष का स्वभाव तो फलदार वृक्ष एवं बहती हुई नदी के समान होता हैं । कहा भी गया है -

वृक्ष कबहु ना फल भखे, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारणे, साधुन धरा शरीर ॥

सज्जन पुरुषों का जीवन परमार्थ के लिए ही बनता है और पूरा हो जाता है । वे लुकमान की दूसरी शिक्षा को अपने जीवन मे हर पल स्वीकार करते हैं अर्थात् बदी से बच । यह उनके जीवन का सूत्र होता है । बुरे आचरण से बचने वाला ही सदाचार को अपना सकता है । जो सदाचारी है वह बुरे आचरण का विचार कर ही नहीं सकता । सदाचार के अभाव मे मानव-जीवन मूल्यहीन हो जाता है । मानव की लोकप्रियता उसके सदाचार के कारण ही फैलती है । मानव जीवन की महिमा उसके सुन्दर शरीर से नहीं बल्कि सदाचार के कारण होती है । जिस व्यक्ति में सदाचार का अभाव है यदि उसके पास बल, सौन्दर्य एवं वैभव का विशाल भण्डार भी है तो वह निरर्थक है । सज्जन बदी से बचकर चलते है, मगर दुर्जन अच्छाई से - भलाई से बचकर चलने में सुख अनुभव करते हैं । एक व्यक्ति बीज बो रहा था । तभी उसके पास एक सज्जन व्यक्ति आ गया और बोला- भाई ! खेत मे क्या बो रहे हो ? उसने कहा - नहीं बताऊंगा । सज्जन ने कहा - अच्छा मत बताओ, आज नहीं बताओगे तो क्या, जब बीज अंकुरित होंगे तब पता चल जायेगा ! दुर्जन ने कहा - ठीक है तुम इंतजार करते रहना, मैं ऐसे बीज अपने खेत में बोऊंगा कि वे अंकुरित ही नहीं होगे ! सज्जन उस दुर्जन की मूर्खता को जानकर चुपचाप आगे बढ़ गया । दुर्जन स्वभाववश अपना अहित करने मे भी नहीं चूकते है ।

वस्तुतः जो अभागा है वही छल प्रपंच के जाल बुनता है । सौभाग्यशाली अपने सदाचार के कारण पाप कार्यो से निर्लिप्त रहता है । जो सुधी है वह बदी की ओर आंख उठाकर भी नही देखता है । महापुरुषों का जीवन
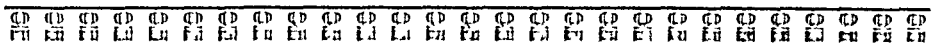
सदाचार से युक्त ही रहता है । प्राचीन काल में भारत की ख्याति का कारण देशवासियों का सदाचार था । अन्य देशों के सज्जन पुरुषों के मन में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति सम्मान का कारण यहाँ के लोगो का सदाचार युक्त जीवन ही था ।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन की एक घटना याद आ रही है । उन दिनों कलकत्ता में भयंकर प्लेग का प्रकोप छाया हुआ था । विवेकानन्द अपनी साधना, उपासना को छोडकर लोगों को बचाने मे जुटे हुए थे । एक सज्जन ने कहा - स्वामीजी ! आप रात-दिन रोगियो की सेवा मे लगे रहते हैं, आपकी उपासना का क्या होगा ? स्वामी विवेकानन्द ने कहा- जब मेरे भाई दु:खी हों और मैं आसन लगाकर बैठ जाऊँ, क्या यही परमात्मा की उपासना है ? परमात्मा मेरी प्रार्थना तभी सुनेंगे जब मैं प्रत्येक दु:खी आत्मा की सेवा का कार्य करूंगा ।

नदी मे कोई बालक डूब रहा है यदि कोई साधक देखते हुए भी आसन जमाये बैठा रहता है तो वह पुण्य का नहीं बल्कि पाप का ही संचय कर रहा है । सदाचारी व्यक्ति तो सभी का भला चाहते हुए बदी से बचकर रहता है । वह किसी का हक छीनना पाप समझता है, चाहे वह भाई, पड़ोसी, मित्र या अपना साझेदार, कोई भी क्यों न हो । यदि भूल से कोई गलत कार्य हो भी जाये तो हार्दिक पश्चाताप करके प्रायश्चित करने की सोचता है ।

हम अतीत के पृष्ठों को पलटकर देखते हैं तो महापुरुषों का सदाचारमय जीवम सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति के समान जगमगाता हुआ दिखाई देता है । गौतम स्वामी, अंगुलीमाल, अर्जुन माली के उदाहरण हमारे सामने हैं। चण्डकौशिक जैसा विषधारी जिसके प्रश्वास मात्र से जीव जन्तु मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे - उसने भी भगवान की कृपा से अपने समस्त पापों का प्रायश्चित करते हुए आत्मकल्याण की दिशा प्राप्त कर ली ।

आज फिर भारतवासियों को बदी से बचते हुए सदाचार का पथ स्वीकार करना है । मानव को स्वाभाविक पवित्रता, नैतिकता एवं धार्मिकता को अपनाने की जरूरत है । सदाचारी आत्मा में अतुलित बल होता है। जो एक बार सदाचरण की ओर झुक जाता है वह फिर पापाचरण की

ओर नही झुक पाता । कुबुद्धि उस पर कभी हावी नहीं हो सकती । कषाय उसे आकर्षित नही कर पाते है । वह सदैव आत्म कल्याण के साथ जाति एवं देश को सदाचार की सौरभ से महकाते हुए उन्हे गौरवान्वित करते है ।

उनका तीसरा सूत्र था 'परहेज कर' । इससे तात्पर्य यह है कि बुरे लोगों की सगति से बचे । अच्छे लोगों की संगति करें । किंवदन्ती है कि काले के साथ श्वेत के बैठने पर रंग भले ही न आये गुण तो आ ही जाते हैं । बुरे के सम्पर्क मे रहने पर बुराइयॉ आ ही जाती है । वातावरण का मनुष्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है । अच्छे कुल में जन्म लेने वाला शिशु भी कुसंगति के कारण चोर, डाकू, और जुवारी बन जाता है । वही बालक महान् पुरुषो की सगति पाकर जन-जन की श्रद्धा का केन्द्र बन जाता है । सामान्य सूत का धागा, फूलों की संगति पाकर, माला के रूप मे पिरोया जाकर इष्ट देव के मस्तक पर चढ़ता है । दुर्जन भी सज्जनो की सगति से जीवन का रास्ता बदल देते हैं । सत्सगति बुद्धि की जड़ता दूर करने मे सक्षम है । वह पाप को घटाती है, चित्त को प्रसन्न बनाती है एवं समाज में सम्मान को बढ़ाती है । जो अपने जीवन मे चरित्र निर्माण की ओर अग्रसर है उन्हें कुसगति से परहेज रखने की आवश्यकता है ।

एक राजा का लडका कुसंगति में पड़ गया । बुरे लोगों से वह घिरा ही रहता था । राजा के पास बात चली गई । एक दिन राजा अपने पुत्र के महल में मिलने हेतु चला गया । एक व्यक्ति उसके पुत्र के कक्ष से निकलकर लडखड़ाता हुआ जाता दिखाई दिया । राजा अपने पुत्र के पास जाकर बोला - कैसे हो पुत्र ? पुत्र संस्कारवान था। उठकर पिता के चरण स्पर्श करते हुए बोला - पिताश्री ! कल ज्वर आ गया था । पिता ने कहा - हाँ वह मुझे लडखडाता हुआ बाहर जाते हुए दिखाई दे गया था । पुत्र को यह जानकर शर्मिन्दगी का अनुभव हुआ और भविष्य मे ऐसे लोगों से दूर रहने का निर्णय कर लिया ।
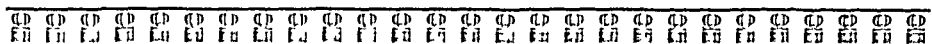
सत्संगति मानव मन के अनेक रोगों को मिटाने वाली होती है। यह बौद्धिक विकास करके मानव का कल्याण करती है । इसके कारण ही देव, गुरु एवं धर्म में आस्था जाग्रत होती है । मैं तो कहती हूँ, भाई -

उठते धुएं से आग का आभास होता है,
उमड़े बादलों से, धुंधला आकाश होता है ।
वही जीवन में अज्ञान तिमिर मिटा पाया,
जिसके जीवन में सत्संग का प्रकाश होता है ।

इसलिए लुकमान दुर्जनों से परहेज की बात करते हैं । दुर्जनों का साथ दुर्गुणों को बढ़ाने वाला होता है । दुर्जनों की संगति करने से तो अच्छा है, जैसा कि आंग्ल भाषा में भी लिखा है -

Better be alone then in ill company.

अर्थात् बुरी संगति करने से तो अकेला रहना ज्यादा अच्छा है । दुर्जनों से किसी के हित की बात नहीं सोची जा सकती । अतः उनसे दूर रहने में ही भलाई है । जीवन में शान्ति और उन्नति की चाह है तो हमें नेकी की राह पकड़नी है, बदी से बचना है और दुर्जनों की संगति से परहेज रखना है । इसी में आपका एवं संसार का कल्याण है ।
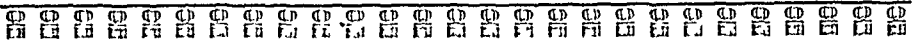
रहें हम कहीं : दृष्टिकोण हो सही

आत्म बन्धुओं ।

उत्तराध्ययन सूत्र की एक गाथा का अवलम्बन लेकर मैं अपने विचार आप तक पहुँचा रही हूँ । उसमे लिखा है -

कुसग्गे जह ओस बिन्दुए,
थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं,
समयं गोयम मा पमायए ॥

अर्थात् कुश की नोक पर स्थित ओस बिन्दु की, उस पर टिके रहने की अवधि जैसे थोड़ी होती है, वैसी ही मनुष्य जीवन की स्थिति है । इस संसार मे कुछ भी स्थिर नहीं है । हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि जो कल था वह आज नही है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा । इतिहास इस बात का साक्षी है कि बड़े-बड़े साम्राज्य बने और नष्ट हो गये । भव्य महलों का निर्माण हुआ और समय की थपेड़ों से टकराकर धूल-धूसरित हो गये ! सत्ता के गलियारों में घूमने वालो को सडक पर आना पड़ा । महलों में सोने वालों को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी है । याद रखो ! समय किसी की मुट्‌ठी मे कैद नहीं है । जो आज अच्छा है वह कल बुरा भी हो सकता है ! बुरा भी वक्त की मार खाकर अच्छा हो सकता है । इस ससार में हर पल प्रकृति बदल

रही हैं, प्रकृति के प्रभाव से प्रत्येक आकृति बदल रही है । किसी की गति तीव्र है तो किसी की गति मंद है । परिवर्तन हिमालय में भी हो रहा है तो सागर मे भी अनवरत चल रहा है । जीवन में निराश होने की जरूरत नही है । मै तो कहती हूँ भाई -

घट भरे हुए भी रीत जाते हैं,
पीड़ा के पल भी बीत जाते हैं ।
आत्म बल पर जिन्हें विश्वास है होता -
हारते हारते भी वे जीत जाते हैं ॥

प्रकृति के विधान के अनुसार जीवन में उथल-पुथल, हार-जीत, हानि-लाभ, सुख-दुःख तो चलते ही रहते हैं । प्रकृति के नियमों में परिवर्तन कैसे हो सकता है ?

एक सम्राट था । उसने अपने मंत्रियों की सभा बुलाकर कहा - इस संसार मे अनेक धर्मग्रन्थ है । राज्य कार्य की व्यस्तता के कारण उन सबका अध्ययन मेरे लिए सभव नहीं है, किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि उनका सार क्या है ? सभी मंत्री एक दूसरे का मुँह देखने लगे । महामंत्री ने कहा महाराज । सभी धर्मग्रन्थ तो मैने भी नहीं पढे है किन्तु नगर के बाहर एक सन्त पधारे हैं, वे अवश्य ही इस समस्या का समाधान कर सकते हैं ।

राजा को महामंत्री की बात उचित लगी और वे तत्काल सन्त की कुटिया पर पहुँच गये । सन्त को वन्दन करके अपनी जिज्ञासा प्रकट की। सन्त ने कहा - राजन् । सारे ग्रन्थ तो मैंने भी नहीं पढ़े हैं । मेरे गुरु ने अपनी मृत्यु से पूर्व मुझे एक बीज मंत्र दिया था जिसमें सभी धर्मो का सार है । वह बीज मंत्र मैंने एक ताबीज में बन्द कर रखा है । तुम आ गये हो तो वह बीज मंत्र मैं तुम्हें दे देता हूँ । लेकिन इसकी एक शर्त है कि जब तुम अपने आपको बिल्कुल अकेला और असहाय अनुभव करो तभी इसे खोल कर पढना ।

राजा प्रसन्न मन राजभवन मे आ गया । कुछ समय के पश्चात् पडोसी राजा ने उस पर आक्रमण कर दिया । अकस्मात् हुए आक्रमण से राजा संभल नहीं पाया और प्राण बचाकर सुदूर जंगल में चला गया।
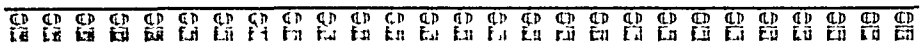
राज्य चले जाने के कारण आज वह अकेला और असहाय होकर वन में भटक रहा था । तभी उसे संत द्वारा प्रदत्त उस तावीज का स्मरण आया जो उसकी वाजू पर वंधा था । उसने तावीज खोलकर पढ़ा, उसमें लिखा था - यह भी बीत जायेगा । राजा ने विचार किया कि बात तो बहुत महत्त्वपूर्ण है, कल तक मैं राजा था, वह बीत गया, आज दीन हीन और विपन्न की भांति यहाँ अकेला भटक रहा हूँ । यह भी बीत जायेगा । ऐसा सोचने पर उसके मन मे उत्साह जाग उठा, शक्ति का संचय करके पुरुपार्थ के वल पर पुनः अपने राज्य को जीत लिया ।

जव वह पुनः राजगद्दी पर बैठने लगा तो तावीज मे लिखे वाक्य का स्मरण हो आया और सोचने लगा - यह भी बीत जायेगा । राजा को उसी समय आत्म-वोध प्राप्त हो गया । उसने जान लिया कि सुख हो चाहे दुःख, अनुकूल हो या प्रतिकूल, सद्भाव हो या दुर्भाव, सम्पन्नता हो या विपन्नता, यह सभी बीत जायेगा । इस ससार मे सभी कुछ परिवर्तनशील है । जो आज है वह कल नहीं रहेगा । इसलिए हमे आज या इसी क्षण का उपयोग कर लेना चाहिए । यह सोचकर तो कबीर कहते है भाई -

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगो कब ॥

इस जीवन को क्षण भगुर समझ कर जो शुभ करने की भावना है, उसे करने को तत्पर होने में ही भला है । अच्छे कार्य को करने मे न प्रमाद अच्छा है और नही विपाद उचित है । जो प्रमादी है, जीवन के महत्त्व से अपरिचित है, जिनकी बुद्धि भ्रमित है वे तो हर बात का विरोध करते हुए कहेंगे कि -

आज करे सो काल कर, काल करै सो परसों ।
जल्दी जल्दी क्यों करता है, जीना है बहु बरसों ॥

ऐसे मूढमतियो पर विश्वास करने वाले जीवन को नरक की ओर ही अग्रसर कर रहे है । यदि जीवन के रहस्य को समझना है तो 'समयं गोयम मा पमायए' सूत्र को स्मरण रखना होगा । इस वाक्य का रहस्य जो जान लेता है वह जीवन मे तनाव, समस्या एवं परेशानी से मुक्त हो

जाता है । आज कोई अभावग्रस्त है तो कोई गरीब है, कहीं सूखा है तो कहीं बाढ़ हैं । कहीं अराजकता है तो कहीं आतंक है । परिस्थितियॉ बदलती रहतीहै । निराश होकर बैठने से कुछ नहीं होता । परिस्थितियो॰ से निरपेक्ष निर्द्वन्द होकर जीना ही सुखी होने का सच्चा उपाय है । जीवन मे सुख और दु:ख तो धूप-छॉव का खेल है । यह तो जीवन की ऑख मिचौनी हैं । घबराने से किसी समस्या का निदान नहीं हो सकता । कहा भी गया है -

सुख-दु:ख तो जीवन में प्रतिपल आते जाते रहते हैं ।
सुख तो सब ही सह लेते पर दु:ख धीर ही सहते हैं ॥

जीवन में धैर्य की बड़ी आवश्यकता है । गुब्बारे को देखो । वह थोडी सी हवा पाकर फूल जाता है, उछलने लगता है, हवा में उडने लगता है लेकिन सूई द्वारा एक छिद्र होते ही पिचक करके जमीन पर गिर पडता है । सुख में अपने आप को भूलें नहीं और कष्टो में गिरकर घबराये नही । होकर सुख में मग्न न फूले, दु:ख मे कभी न घबराए' यह संदेश भी इसलिए दिया है क्योंकि यह भी बीत जायेगा । इस मनुष्य जन्म के महत्त्व को समझे, जितना इसका लाभ ले सके लेने का सद्प्रयास करे । सूत्रकृतांग सूत्र में कहा गया है -

नो हूवणमन्ति राइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥

अर्थात् जैसे बीती रात्रियां कभी नहीं लौटती, वैसे ही मनुष्य जीवन पुन: प्राप्त करना कठिन है । देखते-देखते एक दिन यह भी बीत जायेगा। दु:ख के समय व्यक्ति को लगता है कि आज मेरा अपना कोई नहीं है। ठूँठ को जैसे विहंग त्यागकर चले जाते है, मेरे अपने भी मुझे छोड़कर वैसे ही चले गये हैं । दु:खी व्यक्ति को कमल की पंखुरियों पर गिरी ओस की बूंदे भी अपने अश्रु लगते हैं । पूर्णिमा का चन्द्रमा भी मुस्कराता कम सिसकता अधिक लगता है, किन्तु सत्य यह है कि दु:ख केवल रुलाने के लिए ही नहीं बल्कि बहुत कुछ सिखाने के लिए आता है । मनुष्य जितना दु:खों से सीख पाता है, उतना सुखो से नहीं सीख सकता । न दु:ख में रुदन की जरूरत हैं और न सुख में आह्लादित होकर नर्तन करने की, आवश्यकता यदि है तो सिर्फ स्वयं को पहचानने की है । रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बहुत अच्छी बात लिखी है -

"दु:ख के सिवा और किसी उपाय से हम अपनी शक्ति को नहीं जान सकते और अपनी शक्ति को जितना ही कम करके जानेंगे आत्मा का गौरव भी उतना ही कम करके समझेगे और हमारा यथार्थ आनन्द भी उतना ही अगंभीर रह जायेगा ।

यह बडे आश्चर्य की बात है कि आज इतना वैभव, इतनी सुख-सुविधाओं के साधन पाकर भी मनुष्य स्वयं को सुखी अनुभव नहीं कर पा रहा है । इच्छाओं के दास हुए मनुष्य के चेहरे पर कभी कभी हॅसी दिखाई देती है, तो ऐसा लगता है यह हॅसी भी ऊपर से चिपकाई हुई है । आज जिधर भी नजर जाती हैं व्यक्ति दु:ख, शोक, आकुलता, शारीरिक एवं मानसिक व्याधियो से ग्रस्त दिखाई दे रहा है । उसे यह विचार करना चाहिए कि एक दिन यह भी बीत जायेगा । जरा विचार करो और देखो कि कौन दु:खी है और कौन सुखी है । दु:खी है तो क्यो, क्या कारण है ? सुखी है तो कैसे, क्या कारण है ? कारण को जान जाओगे तो निवारण का उपाय भी मिल जायेगा । जब इस सूत्र को पढ़ती हूॅ तो विचार आता है -

न हि सुही देवता देवलोए नहि सुही पुढवीवई राया।
न हि सुही सेट्ठी सेणावई य एगंत सुही मुणि वीयरागी ॥

अर्थात् वैभव से सम्पन्न देवलोक के देवता भी सुखी नही है, पृथ्वीपति राजा भी जिसके पास अनेक दास-दासियॉ हैं, भारी सेना व विपुल खजाना है - वह भी सुखी नहीं है । सेठ सेनापति भी सुखी नहीं है, किन्तु सुखी वही है, जिसके पास न धन है और न धन के लिए तृष्णा है । जिसके जीवन मे त्याग है, जिसने कामनाओ को जीत लिया है, वही सुखी है। सुख तो आत्मा का गुण है, सुख तो आत्मा के अन्दर ही रहता है । बाह्य पदार्थो की खोज में या उनकी प्राप्ति मे कभी सुख नहीं मिल सकता है, अत: सुख प्राप्त करना है तो अपने जीवन को कामना रहित बनाकर मधुर बनाना होगा । जीवन में मधुरता लानी होगी । गीत की पक्तियॉ आपसे यही कह रही है -

ओ जीने वाले जीना है तो,
जीवन मधुर बनाया कर ।
तन से मन से और वाणी से,
अमृत के कण बरसाया कर ॥
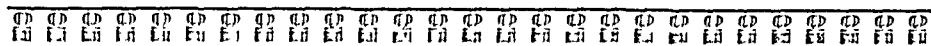
जीवन में निराशा का भाव लाने की आवश्यकता नहीं है । भवितव्यता टल नही सकती । इस जीवन को किसी की अमानत समझ कर स्वीकार करो । एक दिन एक व्यक्ति एक पंक्ति गुनगुना रहा था मेरा ध्यान वरबस ही उस ओर चला गया । गीतकार की पीडा उसमे अभिव्यक्त हो रही थी। जीवन के प्रति इतनी निराशा क्यों पैदा हो रही हैं । गीत के बोल थे –

जीवन जो मिला है तो इसे जीना ही पड़ेगा ।
जीवन यदि जहर है तो इसे पीना ही पड़ेगा ॥

भाई मेरे ! यह जीवन जहर नही है । यह तो अमृत है । यदि इसे जहर बनाया है तो आपने स्वय बनाया है । आपकी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से जीवन मे जहर घुल जाता है । जहर घुला है तो इसे धुलाया भी जा सकता है । आज का मानव सुविधा भोगी हो गया है । उसे तनिक भी असुविधा होती है तो दुःखी हो जाता है । विद्युत् का प्रवाह बन्द हो गया तो सारे घर में तहलका मचने लगता है । पखे, टी वी, फ्रीज सब तो अपना कार्य बन्द करके शान्त हो जाते है । अशान्ति, उथल-पुथल घर में शुरु हो जाती है । आज हर ओर अशान्ति है । तलाश शान्ति की होती है मगर प्राप्त अशान्ति होती है । परेशानियां तो हमने स्वयं खड़ी की है । हम पर-पदार्थो के निमित्त से सुख प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु वहाँ सुख नहीं बल्कि सुखाभास है । अवास्तविक सुख अधिक समय तक रहने वाला नहीं है । आगमकार कहते है –

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा ॥

अर्थात् संसार में सुख अल्प है, दुःख, व्यथा, पीड़ा, निराशा अधिक है । ज्ञानियों ने दुःख को छूत का रोग कहा है । हम अपने दुःख से दुःखी होकर मुँह लटकाकर किसी से मिलेंगे तो वास्तव में उसका उल्लास भी गायब हो जायेगा । इसलिए उचित यही है कि हम दुःख में घबराये नहीं, अशान्त नहीं बने । मिथ्या और अनित्य पदार्थो को सत्य समझने से ही हमें दुःखमय जीवन भोगना पडता है । हम चाहते तो मुक्ति है प्रतिदिन इसकी कामना भी करते हैं, किन्तु क्षणिक पदार्थो के मोह मे पड़कर प्रकृति-प्रदत्त सजा अर्थात् दुःखो को भोगते रहते है । सुख और शान्ति को प्राप्त करने के लिए तो यथार्थ की भूमि पर चलना होगा ।
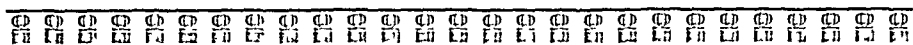
भौतिक पदार्थो के द्वारा प्रदत्त सुख कभी परिपूर्ण नही होते । इनका सुख तो अल्प कालिक ही होता है । समय बीतने पर उनका वियोग सहना पड़ता है जो दुःखदायी होता है । ताबीज मे लिखा मंत्र यही तो था कि 'यह भी बीत जायेगा ।' अर्थात् सुख भी क्षणिक है और दुःख भी क्षणिक है । जो आज क्षणिक सुख है वही भविष्य में होने वाले दुःख का मूल है । पारमार्थिक दृष्टि से वह सुख नही कहला सकता ।

इस ससार मे सब कुछ क्षण भंगुर है - अनित्य है । हर व्यक्ति बदल रहा है, पर्याय बदल रहे हैं । जब हम यह स्वीकार करते है कि चौरासी लाख जीव योनियां है तो यह भी मानना होगा कि परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है । ऐसी स्थिति में चलाचल रूप सांसारिक पदार्थो से सुख की आशा करना दुराशा मात्र है । इसीलिए तो सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी कविता मे लिखा था -

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
मैं नहीं चाहता चिर-दुःख ।
सुख-दुःख की आँख मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख ॥

यही बात कवि ने आगे और इस तरह कही है - 'अविरत सुख भी उत्पीडन, अविरत दुःख भी उत्पीड़न ।' अर्थात् निरन्तर रहने वाला सुख भी पीड़ादायक है और अनवरत मिलने वाला दुःख भी पीडाप्रद है । मानव को चाहिए कि वह जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का मुकाबला करते हुए अपने आप को उर्ध्वगति की ओर ले जाने का प्रयत्न करता रहे ।

हम इस बात को जानते हैं कि साता वेदनीय कर्म से सुख प्राप्त होता है और असाता वेदनीय कर्म के उदय से दुःख मिलता है, किन्तु सातावेदनीय कर्म भी पर-वस्तु ही है, पराश्रित एव अस्थायी है, क्योकि यह भी आत्मस्वरूप नही है । जीवों को साता के पश्चात् असाता एवं असाता के पश्चात् साता का अनुभव होता है । जो बाहरी वस्तुओ के अधीन है वह सब दुःख है और जो अपने अधिकार में है वह सुख है। सुख का संयोग मिलने पर मन प्रसन्न होता है । लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर सुख की अनुभूति होती है मगर वही लक्ष्मी चोरी या डाका पड जाने

पर चली जाये तो दु:खानुभूति में वदल जाती है । सुख ओर दु:ख तो सागर में उठने वाले ज्वार-भाटे के सदृश है जो वास्तव में अस्थायी है। सच्चा सुख धन मे, स्वास्थ्य मे, पत्नी-पुत्रादि की प्राप्ति मे अथवा उच्च पद की प्राप्ति में नही है । यह तो मिट्टी के मोदक है जो मात्र दिखने मे ही आकर्पक लगते हैं । इनसे भूख नहीं मिटाई जा सकती - क्षुधा का शमन करने में ये सहायक नहीं हो सकते ।

सच्चा आत्मिक सुख तो धर्म की अन्तर्दृष्टि पैदा होने पर ही प्राप्त होता है । मृग की नाभि मे कस्तूरी विद्यमान रहती है, लेकिन उसे इसका ज्ञान नही होने के कारण उस सौरभ के वशीभूत वह भोला मृग नदी, नालो, पहाड़ों पर विचरता हुआ उसे ढूढता रहता है । ठीक इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण मानव बाह्य दृष्टि के वशीभूत भौतिक सुखो में आनंद की खोज करते हुए जीवन को खो देता है । जो धर्म साधना मे रत है, वे अनित्य भावना का चिन्तन करते है । कवि ने संसार की अनित्यता को समझकर ठीक ही कहा है -

रात आई है तो कल दिन भी निकलेगा,
वक्त आने पर यहाँ हिमालय भी पिघलेगा ।
तुम तो अपनी साधना में रत रहो साथी -
चण्डकौशिक नाग कब तक जहर उगलेगा ॥

सुख और दु:ख दोनों की सीमा है, मर्यादा है । एक के जाने पर ही दूसरे को स्थान मिलता है । साधक तो इन दोनों से ही परे आत्मानंद की ओर बढ़ने में ही मानव जीवन की सफलता मानता है । किसी वृक्ष का तना काट देने के बाद भी हम देखते हैं कि वृक्ष पर नया तना फूटने लगता है । जब तक हम वृक्ष के सुदृढ़ मूल को नहीं हटा देते वह बार-बार हरा होता रहेगा । तृष्णा और अनुराग रूपी जड़ें जब तक है तब तक दु:खों से मुक्ति नहीं मिल सकती । मुक्ति के लिए इन्हें हटाने का अहर्निश प्रयास आवश्यक है । यदि हम ऐसा नही कर पाये तो साधना के लिए किया गया श्रम निरर्थक हो जायेगा ।

रात्रि के अन्धकार में एक व्यक्ति नौका पर चढ़ा । नौका पर चढ़ते ही उसने पतवार उठाकर पानी में चलाना शुरु कर दिया । वह दूसरे किनारे

को देखता रहा मगर अन्धकार अधिक होने से उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था । वह सारी रात पतवार चलाता रहा । सवेरे जब कुछ उजाला हुआ तो उसने देखा कि नाव तट के पास खड़ी है, वह नीचे उतर गया। कुछ देर तक वह खडे-खड़े तट को देखता रहा । कुछ समय पश्चात् ध्यान आया कि यह तो वही तट है जहॉ से मै नाव पर चढा था । मै वापिस कैसे यहॉ पहुॅच गया । वह पुनः नाव तक गया तो पता चला कि नाव रस्सी से बॅधी हुई है । वह जल्दी-जल्दी में नाव की रस्सी को खोलना भूल गया था । रातभर पतवार चलाकर भी वह वही का वहीं रह गया ।

यही दशा संसार के मोह में लीन सांसारिक प्राणियों की है । दुनियादारी के प्रपंचो मे बंधा मनुष्य धर्म-कार्य मे लगे रहते हुए भी किनारा नहीं पा सकता है । भव-सागर के आलोकमय किनारे को पाना है तो संसार से बंधी हुई मोह की रस्सी खोलनी होगी । ज्ञान की पतवार को चलाकर ही आत्मा को पवित्र बनाने का प्रयास करना होगा - मूर्च्छावस्था को छोड़ना पड़ेगा ।

इस क्षणभंगुर जीवन को समझना पड़ेगा । हमें यह बात माननी पड़ेगी कि इन्द्रियों के विषयो की तृप्ति में कोई सुख नहीं है, धार्मिक प्रवृत्तियों में अग्रसर होने से तन, मन एवं धन की शक्ति का सदुपयोग होता है, जबकि पाप प्रवृत्तियो में धन एवं शरीर की क्षति प्रत्यक्षतः होती है । इससे बड़ी क्या मूढता हो सकती है कि आज का मानव भविष्य के शाश्वत सुखों को भूलकर अशाश्वत भौतिक सुखों को प्राप्त करने में अपनी उपलब्धि समझता है । वह यह क्यों नहीं समझता है कि दुःख रूपी बादलो में सुख विद्युत् की भांति अल्प काल के लिए कौंधकर अदृश्य हो जाता है । कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में -

इस नील विषाद गगन में,
सुख चपला सा दु:ख घन में,
चिर विरह नवीन मिलन में,
इस मरु मरीचिका वन में,
उलझा है मेरा मन कुरंग ।
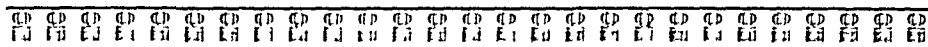
समय रहते हमें अन्धकार से बाहर निकलना है, दुःखों के सागर में डूबने से बचना है, आत्मा को कर्म मुक्त बनाकर वास्तविक स्वरूप को पाने का प्रयत्न करना है । मानव जीवन वृथा चला गया तो पुनः इसकी प्राप्ति होना बडा कठिन हैं । यह जीवन बीत जाये उससे पहले ही विषय वासनाओ पर विजय प्राप्त करके कर्म बन्धन से छुटकारा पाना होगा । मानव जीवन की सफलता का सूत्र यही हैं कि आत्मा प्रति पल विशुद्ध होती चली जाये ।

जो मानव अपने चित्त की भूमि से विषय-लालसा को समूल उखाड़ डालते हैं, वे ही परमार्थ की साधना करते हुए सच्चे सुख को प्राप्त कर सकते है । इन आती जाती सांसो का कोई ठिकाना नहीं है । अच्छा तो यही है कि सुख-दुःख की अनुभूति से ऊपर उठकर समभाव मे रमण करें । जीवन में विद्यमान दोषों का निवारण करे एवं नवीन दोषों को प्रवेश न दे । जिसे जीवन में 'यह भी बीत जायेगा' सूत्र याद रहता है, उसे सैकडो संकट एव अनगिनत परेशानियॉ भी विचलित नहीं कर सकती । साधना के शिखर पर आरोहण करने वाले के मन में यह विश्वास रहना चाहिए कि समस्त प्रतिकूलताएं स्थायी नहीं है, ये सब बीतने वाली है । मुझे ये अपने पथ से कभी भी डिगा नहीं सकती । आपका यही दृष्टिकोण जीवन मे आनन्द जगा सकता है । आपके जीवन में नव शक्ति का संचार कर सकता है ।

जय महावीर !
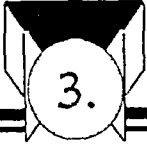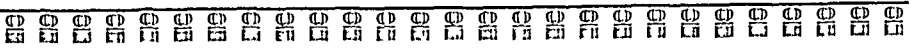
अन्तर सुमन खिलाओ : श्रद्धा भाव जगाओ

धर्मप्रेमी आत्म बन्धुओ !

चारित्र-पाहुड़ का एक सूत्र मेरी स्मृति-सरोवर में तैर रहा है । बात भले ही बहुत छोटी है मगर अन्तर्मन में आलोक भरने वाली है । लिखा है -

सम्मत्तमणु चरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ।

अर्थात् सम्यक्त्व का आचरण करने वाले धीर-वीर पुरुष समस्त दुःखों का क्षय करते हैं । सम्यक् शब्द का अभिप्राय है ठीक, पूरा एवं उपयुक्त। जिसे किसी भी कार्य का पूरा ज्ञान होता है वही उस कार्य को उपयुक्त ढंग से पूर्ण कर सकता है । आधी अधूरी जानकारी से कभी भी कोई कार्य नहीं बनता है । जिसे जीवन में कुछ पाना है, तो उसे पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता होगी। कर्म का क्षेत्र हो या धर्म का क्षेत्र सम्यक् स्थिति ही जीवन की सफलता का मंत्र है । इसके लिए किसी और से नहीं बल्कि अपने आप से, अपनी आत्मा से पूछना पड़ेगा कि क्या मेरा यह कदम - जो मैने उठाया है उचित है ?

एक वृद्धा की आँखो में मोतियाबिन्द छा गया, नेत्र-ज्योति कमजोर होने पर चिकित्सक से राय ली गई । चिकित्सक ने नेत्र का परीक्षण करके शल्य-क्रिया द्वारा मोतियाबिन्द को हटाने का निर्णय किया । ऑखों की शल्य क्रिया (ऑपरेशन) का नाम सुनते ही वृद्धा घबरा गई । डॉक्टर एव परिवार वालों ने समझाकर, उसे भय मुक्त बनाया । शल्यक्रिया की गई। शल्य-क्रिया सफल रही । वृद्धा को पुनः ठीक दिखाई देने लगा । डॉक्टर ने दो हजार रुपयों का बिल दे दिया । परिवार वाले प्रसन्न थे कि दो हजार रु देने से ही मांजी की ऑखें ठीक हो गई है । वृद्धा ने कहा- अभी रुपये देने की जल्दी मत करो । आखिर दो हजार रुपये की बात

है । मैं कोई भाग कर नही जा रही हूँ । मेरी ऑखें ठीक हो गई या नहीं, मैं अपने अड़ोस-पड़ोस वालों से पूछकर ही बताऊँगी । चिकित्सक वृद्धा की बात सुनकर हैरान हो गया । वह बोला - मॉजी ! आँखे ठीक हुई है या नही यह तो आपको बताना है, पड़ोसी इसमे क्या करेगे ?

यही स्थिति आज हम सभी की है । हम अपनी स्थिति को दूसरों की दृष्टि से देखना चाहते हैं । अपनी दृष्टि से दूसरो को एवं दूसरो की दृष्टि से स्वयं को देखना, व्यक्ति का अपूर्ण दर्शन हैं । सही दृष्टिकोण तो यही है कि स्वयं की दृष्टि से स्वयं को देखा जाये । मेरे बारे मे जितना मैं जानती हूँ और आपके बारे में जितना आप जानते है, उतना उचित इस ससार में और कौन जान सकता है?

जो अपने आप से ऑखे घुमाले उसका भला तो कोई क्या कर पायेगा? दूसरों के भरोसे रहने वाला जीवन में आगे नहीं बढ सकता है । जिसमें आत्म-विश्वास का अभाव होता है वे ही मनुष्य पर मुखापेक्षी होते हैं । वर्तमान दौर में यह स्थिति कुछ ज्यादा ही देखने में आ रही है । जब आत्म-साधना की बात चलती है, दान-धर्म की बात चलती है, जीवन-निर्माण हेतु उचित कदम उठाने की बात चलती है तो भाई-बहिन स्वविवेक को त्यागकर कहते हैं- घर वालों से पूछना पड़ेगा । उनकी सलाह आवश्यक है । अच्छे काम के लिए तो सलाह की जरूरत महसूस करते हो । दया, उपवास, पौषध में दूसरे तुम्हारी क्या सहायता करेंगे । यह तो निजात्मा का विषय है । आत्म-कल्याण के लिए यदि हम कोई कदम उठाते हैं तो उसमें दूसरे आपके सहयोगी कम बल्कि बाधक ज्यादा मिलेगे। हम अपनी आँख में अंजन लगाते हैं तो उसका लाभ हमारी ऑख को ही मिलेगा। धर्म-क्षेत्र के चिकित्सक तो सन्त होते है । उनकी राय ली जाती है तब तक तो उचित है मगर निर्णय आपका अपना होना चाहिए। रोगी कभी रोगी को सहायता नहीं दे सकता है । सम्यक् दृष्टि के अभाव में ही मनुष्य में ऐसे अनुचित विचार पैदा होते है और वे लोग उन विचारों में खोये खोये ही खुश रहते हैं । क्या यह ठीक है ?

एक बहरा, एक अन्धा और एक लंगड़ा तीनो चले जा रहे थे। रास्ते मे उन्हें एक नंगा भी मिल गया । चलते-चलते उन्हें शाम हो गई। अचानक बहरा बोला - अरे ! मुझे डाकुओ की आवाज सुनाई दे रही है । अन्धे ने रुक कर कहा- सुनाई क्या दे रही है वे तो हमारी ओर ही आ रहे है । लंगड़ा बोला - डाकुओं से बचने मे ही फायदा है, मै तो यह भागा । यह सुनकर नंगा बोला - तुम सबने तो अपना बचाव कर लिया है । अब डाकुओ के हाथों लूटा तो मैं ही जाऊँगा।
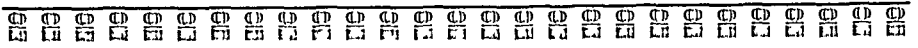
यही स्थिति ससारियो की हो रही है । जिसके पास कुछ भी नही है, वे ही अपनी सुरक्षा मे लगे है । जिन्होने सम्यक्त्व का सहारा ले लिया उन्हे किसका भय है । वे निर्भय होकर लक्ष्य की ओर आगे बढ़ सकते है । वे आत्मा के निज गुण-सम्यक्ज्ञान से यह जान जाते है कि जीवन का लक्ष्य क्या है ? मुझे किस पथ से आगे की ओर प्रस्थान करना है । महान् पुण्यों के उदय से ही मानव जीवन मिला है इसे केवल मौज-मस्ती में ही खो देना स्वयं के साथ ही अन्याय करना है । आंग्ल भापा में कहावत है -

Life is not all beer and skittles

अर्थात् जीवन का लक्ष्य मात्र मनोविनोद करना ही नही है । जीवन तो उच्च आचरण का निर्वाह करते हुए, आत्म स्वरूप को जानकर लक्ष्य प्राप्ति का कर्म-स्थल है । जीवन की सफलता के लिए लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक है । कार्य सरकार का हो या व्यापारी का, सब जगह कार्य योजनानुसार ही होते है । लक्ष्य निर्धारित करके योजनानुसार चलने पर ही सफलता प्राप्त होती है । जीवन की सफलता के लिए भी लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है । बिना लक्ष्य निर्धारित किये कार्य करने से सफलता संदिग्ध हो जाती है । डॉक्टर भी रोगी को देखकर दवा का लक्ष्य निर्धारित करता है कि यह दवा तीन दिन मे,पॉच दिन मे या पन्द्रह दिन में रोग को ठीक कर देगी । यह रोगी को आवश्यक पथ्य परहेज रखने का निर्देश देता है । रोगी को रोग-मुक्ति में सफलता भी प्राप्त हो जाती है ।

हमें मानव जीवन मिला है । इस जीवन का एक ही लक्ष्य है, एक ही परमोद्देश्य है - आत्म-साधना करना । इस लक्ष्य के निर्धारण के बाद प्रयास भी करना जरूरी है । किसी ने कहा भी है -

To aim is not enough we must hit.

अर्थात् लक्ष्य-निर्धारण के साथ-साथ उस ओर प्रयास करना अति आवश्यक है । आत्म जागृति के लिए भगवान महावीर ने भी अपना संदेश देते हुए कहा है - पहले उसे जानो, उसका ज्ञान प्राप्त करो फिर मानो अर्थात् उस पर श्रद्धा करो तब तदनुकूल अपना आचरण बनाओ । स्वयं को जानना पहली शर्त हैं । कहा भी गया है -

याणंति अप्पणो वि, किन्नु, अन्नेसिं ।

अर्थात् जो अपने को नही जानेगा, वह दूसरों को क्या जानेगा ? मैं जब स्वयं को ही नहीं देख पाता हूॅ तो फिर दूसरों को कैसे देख सकता हूॅ । आत्मा से अधिक नजदीक तो हमारे और कोई नहीं है । जब हम उसे ही नहीं जान पाते,

उसे ही नही देख पाते है तो दूसरे को जानने की बात करना अपने आपको धोखा देना है । ऐसे लोगों को देखकर ही किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

आज ज्ञान कम अभिमान ज्यादा है,
आज दान कम अहसान ज्यादा है ।
नाम की भूखी दुनियाँ में देखा -
आज काम कम तूफान ज्यादा है ॥

तूफान चाहे प्रकृति मे आये या मन मे, वह किसी को आबाद नहीं करता बल्कि उजाडने का ही प्रयास करता है । यदि सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो जाये तो जीवन का रूप ही बदल सकता है । वे जब किसी व्यक्ति को दूसरे को सुधारने की बात करते हुए देखते है तो कहते है पहले अपने को देखो अपने को जानो । कहने की आवश्यकता नही है कि किसी के आचरण को देखकर दूसरे के जीवन मे आचरण स्वत: उतरने लगता है । शीतल जल के किनारे पर पहुँचने से ही गर्मी से संतप्त मनुष्य को शीतलता का आभास होने लगता है । सर्दी में, ठिठुरते व्यक्ति को आग मे कूदने की जरूरत नहीं है । आग का सम्पर्क ही उसकी ठिठुरन को समाप्त कर देगा । आवश्यकता सिर्फ इतनी ही है कि हम जीवन के प्रति श्रद्धा और विश्वास को बढाते हुए अपनी दृष्टि को सम्यक् बनावें दृष्टि के सम्यक् बनते ही सुख के लिए बाहर भटकने की जरूरत नहीं रहेगी। सच्चे सुख का भण्डार बाहर नहीं, अपनी आत्मा में ही है । आत्मा को कर्म-मैल से मुक्त करना ही जीवन का ध्येय होना चाहिए । कर्मो की निर्जरा से ही मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर हुआ जा सकता है । यह तभी हो सकता है जब सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र की उपलब्धि हो । कहा भी गया है -

सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्ग: ।

अर्थात् सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र रूप रत्नत्रयी ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है । साधक इन्हें जानकर ही ज्ञान और क्रिया का उचित समन्वय करता है । दोनों के उचित समन्वय के अभाव में उच्च श्रेणी पर आरोहण नही किया जा सकता । जो सम्यग् नहीं है वह तो अधूरा ही है । कार, मोटर, गाड़ी को हम देखते हैं, उसके पहिये धुरी पर टिके रहते है, धुरी नही होने पर पहिये नहीं लग सकते और पहिये नहीं है तो आप ही सोचिये गाड़ी आगे कैसे बढेगी ? सम्यक्त्व तो इस आत्मा की धुरी है, ज्ञान व चारित्र पहिये है जो इसे मोक्ष की ओर ले जाते हैं । जीवन को सार्थक बनाना है तो सम्यक्त्व को जीवन में लाना पडेगा । यह तभी आ सकता है जब आत्मा को मन व इन्द्रियों की दासता से मुक्त किया जाये ।
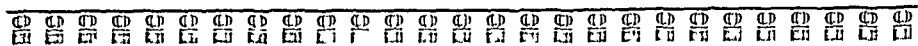
चीन में एक बहुत बड़े विचारक हुए है जिनका नाम था कन्फ्यूशियस। एक साधक उनके पास अपनी समस्या लेकर गया और बोला - मै अपने मन पर संयम कैसे कर सकता हूँ ? कन्फ्यूशियस ने कहा - भाई ! इसमें इतना परेशान होने की क्या जरूरत है ? मै तुम्हें एक सूत्र देता हूँ उसे अपनाना, सब ठीक हो जायेगा । वे बोले - क्या तुम कानो से सुनते हो ? साधक ने कहा - हॉ ! कन्फ्यूशियस बोले - मै मान ही नहीं सकता कि तुम कानों से सुनते हो । तुम तो मन से सुनते हो । आज से केवल कानो से सुनना आरम्भ करो । मन से सुनना बन्द कर दो। इसी प्रकार केवल जीभ से चखना, आँखों से देखना शुरु कर दो । मन को इनसे दूर रखोगे तो मन पर अपने आप संयम हो जायेगा ।

जब तक इन्द्रियों का संयम नही हो जाता तब तक आत्म-शोधन के सारे प्रयास निरर्थक है । उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है -

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।

अर्थात् अविजित कपाय और इन्द्रियॉ ही आत्मा की शत्रु है । हमें यह बात कभी भी विस्मृत नही करनी चाहिए कि मन की शक्ति से भी अधिक मनुष्य की आत्म-शक्ति प्रबल होती है । आत्मानद विषयानंद से कई गुना अधिक और अनूठा होता है । यही जीवन मे शाश्वत एव अपूर्व सुख को प्रदान करने वाला होता है । आत्मानंद की ओर जाना है तो मन की स्थिरता पर ध्यान देना होगा । इसके बिना आत्मा मे सम्यक्त्व की प्राप्ति आकाश-कुसुम तोड़ने की कल्पना मात्र है । मन की स्थिरता के लिए ज्ञान जरूरी है । ज्ञान न केवल मन का ही परिमार्जन करता है बल्कि कर्म को भी निष्काम और शुद्ध बनाता है । ऐसा होने पर मानव स्थितप्रज्ञ बनता है । उसकी धर्म-साधना में स्थिरता आती है ।

कुछ दिनो पूर्व की ही बात है । एक बहिन दर्शनार्थ स्थानक में आई एव निवेदन किया कि आप मेरे घर पधारने की अनुकम्पा करे ! मैने पूछा - कोई कारण ? वह बोली - मेरा पुत्र अस्वस्थ है उसे आप मांगलिक देगे तो वह स्वस्थ हो जायेगा । मुझे आप की वाणी पर पूर्ण विश्वास है । मैने कहा बहिन ! कल तो वह सड़क मर खेल रहा था अचानक बीमार कैसे हो गया । वह बोली - आप ही देख लीजिए । मैं उनका आग्रह जानकर वहॉ पहुँची - बालक को देखा तो आश्चर्य हुआ बालक कुर्सी पर बैठा कुछ खा रहा था । मुझे देखते ही खडा हो गया। मैंने कहा बहिन ! तुम्हारा बच्चा तो पूर्ण स्वस्थ है । वे कहने लगी महाराज श्री ! इसे शारीरिक या मानसिक बीमारी नहीं है, इसे नास्तिकता का रोग है । यह धर्म की हँसी उड़ाता है । हम कुछ समझाने का प्रयास करते है तो समझता ही नही है । मैंने बालक को कहा - तुम मुझे जानते हो ? वह शर्माता हुआ बोला

- हॉ जानता हूँ । ठीक है तो तुम्हारे मन मे धर्म के प्रति कुछ शंका है तो कल स्थानक में आना मै तुम्हारी शंका का निवारण करूगी । वह बालक हाथ जोडककर बोला - आपकी आज्ञा है तो मै अवश्य आऊँगा । मैंने महिला से कहा - बहिन । मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हें धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा है । तुम एक सच्ची माता हो जो पुत्र-हित का चिन्तन करती हो । यह रोग आत्मा से सम्बन्धित है इस बालक को सम्यग् ज्ञानौषधि की आवश्यकता है । बालक संस्कारवान है, थोडी-सी प्रेरणा से यह रोग चला जायेगा । गुरु कृपा ही कहिये वह बालक अगले दिन ही प्रवचन के समय मॉ के साथ स्थानक में आ गया ।

वस्तुत: सम्यक् दृष्टि सुमन की महक के समान होती है । सुमन स्वयं तो सुरभित ही है मगर अपनी उपस्थिति से वातावरण को भी सौरभमय बना देता है । ठीक इसी के अनुरूप सम्यक्त्व भी सम्यक्त्वी के जीवन को आध्यात्मिक तथा नैतिक दृष्टि से उन्नत बनाता है । जो उनके सम्पर्क मे आता है उन व्यक्तियों को भी वह उन्नत व उत्तम आचरण युक्त जीवन जीने की प्रेरणा देता है ।

जब व्यक्ति को सम्यग् ज्ञान हो जाता है, तो उसे तत्त्वो के प्रति पूर्ण श्रद्धा हो जाती है । श्रद्धा को ज्ञानियों ने दुर्लभ मानते हुए धर्म का मूल माना है । शुद्ध श्रद्धा ही सम्यग् दर्शन है । इसके बिना समकित आ ही नहीं सकती । यों कहना भी युक्ति संगत होगा कि श्रद्धा वह आधारशिला है जिस पर मुक्ति-महल खड़ा किया जा सकता है ।

प्रकाश के अभाव में ऑखें होते हुए भी वस्तुएं दृष्टि गोचर नहीं होती है । उजाले की मात्र एक किरण अंधकार के अस्तित्व को मिटा देती है । इसी प्रकार जीवाजीव, पुण्य पापादि तत्वों का सम्यग् बोध आत्मा के लिए प्रकाश रूप है, जिससे मानव सत्य श्रद्धा पर आरूढ़ होकर सम्यक्त्व में दृढ़ होता है । श्रद्धा के बिना ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है । हमारा ध्येय यही हो कि हम अपनी श्रद्धा को सुदृढ़ बनाएँ । वर्तमान दौर में अध्यात्म के सूर्य को भौतिकता का सघन घन ढकने का प्रयास कर रहा है । सम्यक्त्व की श्रेष्ठ समीर के समक्ष कितने ही सघन बादल हों ठहर नही पायेंगे । सम्यक्त्वधारी श्रेष्ठ सन्त-महापुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होते है । क्या मजाल है बादलों की जो उगते सूर्य को रोक सके । श्री कन्हैयालाल सेठिया ने ठीक ही लिखा है -

के खिमता उण बादल् री,
जो रोके - सूर उगाली नै ।
सिंहा री हाथल सह लेवे,
वा कूँख मिली कद स्याली नै ।
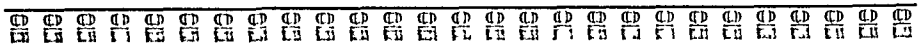
महा सम्यक्त्वधारियों का जीवन तो सूर्य और सिंह के सदृश होता है । वे प्रत्येक परिस्थिति मे श्रद्धा को बनाये रखते हैं । उन्हें यह ज्ञान होता है कि बिना श्रद्धा के कल्याण असंभव है ।

आज भौतिकता के प्रति जो जन-मानस का लगाव है, आसक्ति है, रूचि है वह यदि सयम-साधना की ओर मुड़ जाये तो आत्मा का उद्धार निश्चित है। संयम मे श्रद्धा रखे बिना जो ऊँची-ऊँची बाते करते रहते हैं, उनके लिए यही कहा जा सकता है कि -

पढ़े लिखे वक्ता बने, काव्यों के कर्तार ।
संयम में श्रद्धा न जो, तो सब कुछ बेकार ॥

संयम में श्रद्धा नहीं, क्यों मन धारे वेश ।
दीप जले ना तेल बिन, क्यों लोचे तू केश ॥

सम्यग् दर्शन के बिना, मिले न सम्यग् ज्ञान ।
आये नहीं सम्यक्त्व तो, जीवन धूल समान ॥

हमें मानव जीवन को धूल की तरह नहीं बनाना है । इसमे सम्यक्त्व की ज्योति जाग्रत करनी है । आज मूढ़तावश जीवन जड़ता से प्रभावित हो रहा है । अंधकार और उजाले में हम भेद नही कर पा रहे है हमारी ज्ञान-रोशनी पर आकांक्षाओ का काला पर्दा पड़ गया है । उसे हटाने की जरूरत है । जीवन में पवित्रता पैदा करने की जरूरत है । पवित्रता का भाव श्रद्धा से ही संभव है । गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है कि - जो श्रद्धाशील है वही ज्ञानी है, वही जितेन्द्रिय है और वह श्रद्धा से ज्ञान को पाकर शाश्वत शान्ति को पा सकता है । यह शाश्वत शान्ति मोक्ष ही है । कहा भी है -

जं सक्कइ तं कीरइ, जं सक्कइ तयम्मि सद्दहणा।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं ॥

अर्थात् जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिए एवं जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए । धर्म पर श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एवं मरण रहित मुक्ति का अधिकारी होता है ।

इस मानव जीवन में सच्ची श्रद्धा रखने वाला ही अनन्त शक्ति को प्राप्त कर सकता है । श्रद्धा के कारण उसमे अजेय बल आ जाता है । चरित्र में दिव्य गुणो की अभिवृद्धि होकर वे प्रकट होने लगते हैं । संसार की सारी शक्तियां एक तरफ है एव दूसरी ओर आत्मा की शक्ति है तो सारी शक्तियॉ

मिलकर भी आत्मशक्ति की बराबरी नही कर सकती है । भगवान महावीर, बुद्ध, महात्मा गांधी की आत्मशक्ति का लोहा सबने स्वीकार किया है । गाधी वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ आत्मबली .पुरुष थे, इसमे कोई दो राय नहीं है । धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा से ही ऐसी दिव्य शक्ति उन्हें प्राप्त हुई थी । कबीरदासजी के जीवन का एक प्रसंग याद आ रहा है -

एक श्रद्धालु भक्त कबीरदास जी के घर पहुँचा । कबीरजी घर पर नहीं थे । उनकी पत्नी ने पूछा - क्या काम है ? भक्त बोला - मैं बहुत दुःखी हूँ । पापों का फल भोग रहा हूँ । पापों से मुक्त कैसे बनूं यह जानने यहाँ आया था। कबीर की पत्नी ने कहा - आप तीन बार श्रद्धा से राम का नाम जपें, बस यही दुःखों से मुक्ति का उपाय है । भक्त प्रसन्न मन वहाँ से लौट गया । रास्ते मे कबीर मिल गये, सारी बात हुई और कबीर अपने घर की ओर चल दिये । वह भक्त भी आगे बढ़ गया । घर आकर कबीर ने पत्नी से कहा - तुम बहुत ज्यादा बोलती हो, इतना वाचाल होना ठीक नही है । संयम से काम लिया करो । पत्नी बोली- मैंने ऐसा क्या किया है जो आप मुझ पर नाराज हो रहे हैं । कबीर बोले - तुमने भक्त को राम का नाम तीन बार लेने के लिए कहा है । यदि भगवान का नाम एक बार भी पूर्ण श्रद्धा से लिया जाये तो आत्मा का उद्धार हो जाता है ।

बन्धुओं ! श्रद्धा का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या हो सकता है । जीवन की मंगलमयता के लिए मात्र भगवान के प्रति, परमात्मा के प्रति ही नही बल्कि सम्पूर्ण जीवात्माओं के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए । सम्यग्दर्शन जीवन में मंगल-प्राप्ति का प्रथम और अनिवार्य चरण है । जिसे अपने जीवन को सफल बनाना है उसे सम्यक्त्व की त्रिवेणी में नहाना चाहिए । आप सम्यक्त्व के सन्मार्ग पर चलेंगे तो आपकी देह मे जो ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा का निवास है वह दमक उठेगा । अन्त में मैं आपसे यही कहूंगी कि -

चाहते हो मुक्ति तो इतना करो,
संयम के भावों को द्विगुणित करो ।
बाहरी जड़-दीप से कुछ नहीं होगा -
आत्मा के दीप को प्रज्वलित करो ॥

आपके हृदय मे यदि आत्म-दीप जल गया तो फिर उजाला ही उजाला है - आनन्द ही आनन्द है । जरूरत है तो सिर्फ इतनी सी कि हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाये । हम सम्यग् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र को अपनाकर आगे बढ़ते रहें। यही जीवन की प्रगति है यही आत्मा की उन्नति है ।
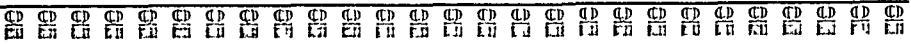
धर्म की धारा : लक्ष्य हो हमारा

धर्मप्रेमी आत्मबन्धुओं !

यह प्रसन्नता का विषय है कि आप अपने सभी सांसारिक कार्यो को छोड़कर प्रात:कालीन कुछ समय धार्मिक कार्यो के लिए निकालते हो । आपकी धर्म के प्रति आस्था है । जो मानव विवेकशील होता है वह सदैव धर्म की शरण प्राप्त करता है । धर्म का आश्रय ग्रहण करके उसके मन मे प्रसन्नता होती है । यह हमारे लिए बडे गौरव का विषय है कि जिस भूमि पर हम बैठे है वह सदा-सदा से धर्मभूमि कहला रही है । इस संसार मे सर्वप्रथम सभ्यता का सूर्योदय भारत भूमि में ही हुआ है । सस्कृति ने यहीं पर अपने पर फैलाये है । मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुलने के पश्चात् उसने दैहिक सुखों से भी अधिक आध्यात्मिक सुखों को जीवन में स्थान दिया है । विवेकशील व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह समझता है कि मात्र समृद्धि ही जीवन नहीं बना सकती । इस आत्मा से भी बढकर एक परम सत्ता हमारे मे छिपी हुई है । उसका प्रकटीकरण हो जाये तो जीवन निखर सकता है ।

प्रत्येक मनुष्य शाश्वत सुख की खोज में है । भटकना कोई नहीं चाहता । भटकता वही है जिसे पथ का ज्ञान नहीं होता । अध्यात्म के आंगन में जो उतर जाता है उसका भटकाव बन्द हो जाता है । जीवन तो मैंने और आपने अब तक न जाने कितनी बार जी लिया है मगर आत्मा से परमात्मा बनने का जीवन तो मनुष्य जीवन ही है । देह-मन्दिर मे बैठे
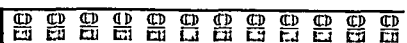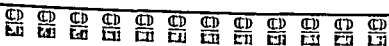
उस चैतन्य स्वरूप को जगाने का समय तो अब आया है । हमे इस भव में धर्म को जानकर उसमें अवगाहन करने का प्रयत्न करना चाहिए । धर्म के लिए कहा है -

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सयामणो ॥

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मंगल है । वह अहिंसा संयम तप रूप हैं जिस साधक का मन सदा धर्म मे रमण करता है उसे देवता भी नमस्कार करते है । इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करने के लिए देवता भी तरसते है । मनुष्य जन्म मे कर्मो का क्षय करके आत्मा अपने लक्ष्य तक पहुँच सकती है । धर्म के बिना सुख की कल्पना करना मृग-मरीचिका ही है। सन्मत्ति प्रकरण में तो साफ लिखा है -

धम्म विहीणो सोक्खं, तण्हा छेयं जलेण जह रहिदो ।

अर्थात् जिस प्रकार जल के बिना किसी की प्यास नहीं बुझ सकती उसी प्रकार धर्म-विहीन मनुष्य सुख नहीं पा सकता । आज सुखी कम दुःखी ज्यादा है । इसका कारण स्पष्ट है कि आज का मानव धर्म के प्रति कम भौतिकता की ओर अधिक आकर्षित है । वह जब मन्दिर में जाता है, स्थानक में जाता है तब भी उसका मन घर या दुकान की ओर लगा रहता है । वह सोचता भी है, यह धन-वैभव सब एक दिन यहीं रह जायेगा । किसी दिन मुझे सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा । यह सोचता-सोचता ही जीवन को पूरा कर लेता है । जिसके मन में धर्म का भाव जाग्रत होता है उसे उसी क्षण अपनी यात्रा प्रारंभ कर देनी चाहिए । जहाँ सूरज होता है वहाँ अन्धकार नहीं ठहरता । जहाँ पर दीपक जल जाता है वहाॅ से अन्धकार पलायन कर जाता है । धर्म भी एक ऐसा ही दीपक है । जब आत्मा मे धर्म-दीप प्रज्वलित हो जाता है तब आत्मा परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर लेती है । धर्म का यह दीपक तो हमारे, आपके, सबके पास है मगर अभी तक वह जल नही रहा है । दीपक भी है, तेल भी है, बाती भी है मगर एक चिनगारी भी तो चाहिए । एक जलता हुआ दीपक ही मिल जाये तो उससे अन्य अनेकों दीप जल सकते है। उस दीपक की खोज करो जो जल रहा है । गौतम ने महावीर को खोजा,

आनन्द ने बुद्ध को ढूंढा । दयानन्द ने विरजानन्द मे, विवेकानन्द ने परमहंस मे वह ज्योति देखी जो जल रही थी । उन्होने जलते दीपों से अपने मन का दीप भी जला दिया, जिससे मन-आगन ज्योतिर्मय हो गया ।

धर्म अन्तर में अद्‌भुत आलोक उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। धर्म का होना और धार्मिक होना दोनो ही अलग-अलग बातें हैं । कोई यह कहे कि मै जैन हूँ, मेरी सात पीढ़ियॉ इस धर्म का पालन कर रही है । कोई यह कहे कि हमारे खानदान मे दो-दो व्यक्ति घर-परिवार से निकल कर सन्त हो गये अत: मै ही अधिक धार्मिक हूँ । इससे कुछ फर्क नही पडता । धर्म की बाते करने से, प्रतिक्रमण या भक्तामर रट लेने से ही कोई धार्मिक नही बन जाता है । जब तक धर्म के पुष्प अन्तर मे नही खिलते तब तक कोई लाभ नही है । किसी को प्यास लग रही है और वह पानी-पानी बोलता रहे तो क्या उसकी प्यास मिट जायेगी ? नहीं, कभी नहीं मिट सकती । पानी जब गले के नीचे उतरेगा तब ही प्यास शान्त होगी । इसी प्रकार जीवन को धर्ममय बनाने से ही जीवन का कल्याण संभव है । धर्मशील मानव सदैव धर्म के आंगन में विचरण करता रहता है । उसे धर्म का मर्म ज्ञात होता है । वह जानता है कि वास्तविक धर्म क्या है ? वह भली भॉति समझता है कि -

वत्थु सहावो धम्मो ।

अर्थात् वस्तु का जो स्वरूप है वह धर्म है । ज्ञानीजन इस स्वरूप से स्वय को कभी अलग नही करते । धर्म ही उनके जीवन का ध्येय होता है । इस वर्तमान दौर मे तो लोग धर्म को भूलकर अधर्म को अपनाते हुए भी नही हिचक रहे हैं । धर्म के प्रति लोगों के भाव देखकर मन कह उठता है -

धर्म को तो आज दुनियां ने खिलौना कर दिया ।
दूध के बदले में पानी का बिलौना कर दिया ॥

पानी को बिलौने से नवनीत नही निकलता है बाह्य आडम्बर हमको धर्म के धरातल पर खड़ा नहीं कर सकते । जो जिस कार्य में लगा है उसे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना चाहिए, यह उसका धर्म है । महाभारत काल में सहदेव स्वयं बहुत बडे ज्योतिषी थे । कौरवों ने उन्ही से अपना
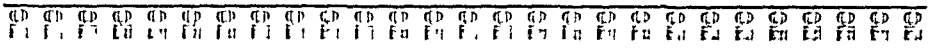
विजय मुहूर्त निकलवाया । सहदेव ने दुर्योधन को अपना विरोधी होते हुए भी सर्वतोभद्र विजय मुहूर्त निकालकर ज्योतिपी के आसन पर बैठ अपने धर्म का निर्वाह किया था । कृष्ण ने बाद मे वह मुहूर्त ही बदल दिया था । उपनिपदों मे नचिकेता की कथा आती है । नचिकेता के पिता ने एक ऐसा यज्ञ किया जिसमे अपना सर्वस्व दान देना पडता है । पिता अपने पुत्र के विमोह मे पडकर ऐसी गायो का दान करते हैं जो अन्तिम प्रसूति कर चुकी है । जिनसे अन्तिम बार दुग्ध प्राप्त कर लिया गया है । जो वृद्ध हो चुकी है । नचिकेता पिता की भावना समझ जाते है और पिता से कहते हैं - तात । आपने सर्वस्व दान किया है क्या मैं आपकी सम्पत्ति नही हूँ, कृपया मेरा भी दान कर दीजिए । पिता चुप रहे मगर नचिकेता हठ करता रहा कि मेरा भी दान करो । क्रुद्ध होकर पिता ने कहा - जा मै तुझे यमराज को दान करता हूँ । नचिकेता यमराज की शरण में चला जाता है । यमराज बालक नचिकेता पर प्रसन्न होकर वरदान मांगने को कहते है । उस समय नचिकेता आत्म तत्व के सिवा कुछ भी लेने से मना कर देते है । वे कहते हैं कि भौतिक सुख-सुविधाएँ शाश्वत सुख नही है अध्यात्म का अमृत ही जीवन को सुखी बना सकता है ।

आपको यदि कोई देव वरदान मांगने की बात कहे तो आप क्या चाहेंगे ? यह आपके सोचने का विषय है । भौतिक सुखों के कीचड़ में डूबा हुआ अध्यात्म के निर्मल नीर का आनन्द नहीं ले सकता । परमात्मा रूपी नवनीत तो आत्मज्ञान रूपी दुग्ध से ही प्राप्त किया जा सकता है।

आत्म तत्व की प्राप्ति ही धर्म का असली मर्म है । धर्म ही मनुष्य को पाप से पुण्य की ओर, अशुभ से शुभ की ओर आगे बढ़ाता है । भौतिकता का मार्ग तो बन्धन का मार्ग है । धर्म इन बन्धनों से मुक्ति प्रदान करता है । जो पापों के बोझ से दबा हुआ है, जो कर्मो के बन्धनों मे कैद है उसे धर्म की चर्चा करने को समय ही कहॉ मिलता ?

इस संसार में दो तरह के मनुष्य होते है । एक बन्दर की तरह एवं दूसरा पक्षी की तरह । बन्दर और पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हों और उस समय यदि भूकम्प आ जाये तो यह देखा गया है कि पक्षी तत्काल वृक्ष को त्याग कर उड़ जाते है मगर बन्दर उस वृक्ष के चिपट
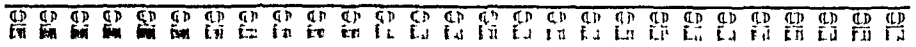
जाता है । वृक्ष के उखडकर धरती पर गिरते ही बन्दर भी उसके नीचे दबकर प्राण त्याग देता है । ठीक इसी तरह कुछ मनुष्य बन्दर की भाति सांसारिक वैभवों से चिपके रहते हैं । भोगो से उनकी आसक्ति इतनी अधिक रहती है कि वे उन्हे छूटते देख अपनी पकड और मजबूत कर लेते है। एक दिन ये ही भोग उनके नाश का कारण बनते हैं । वे धन्य है जो भोगासक्ति का त्याग कर धर्म का सुरक्षित आश्रय ग्रहण कर लेते है । ऐसे मनुष्यों का जीवन ही ज्योतिर्मय बनता है । धन, यौवन, संसार का वैभव जीवन के वास्तविक सहारे नही हैं । सच्चा सहारा तो धर्म ही है जो जीवन का कल्याण कर सकता हैं ।

इस जीवन का कोई भरोसा नही है । इस जीवन को क्षण भंगुर जानकर ही भगवान महावीर स्वामी ने फरमाया है -

जहेह सीहो व मियं गहाय मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मि तम्मंसहरा भवन्ति॥

अर्थात् मृगों के बीच से जब सिह किसी एक मृग को पकड़कर ले जाता है, तब अन्य देखते रह जाते है । कोई उसे बचा नही सकता है । इसी प्रकार काल रूपी सिंह मानव का आयुष्य के पूर्ण होने पर उसे अपने परिजनों के मध्य से उठा ले जाता है । परिजन असहाय होकर देखते रह जाते हैं । अत: मानव को चाहिए कि वह जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करे । समय रहते आत्म-कल्याण की ओर कदम बढ़ाये। यही उत्तम मार्ग है । इस पर चलकर ही परम सुख की प्राप्ति होगी । महाभारत में दुर्योधन युद्ध के लिए चलने लगा तो माँ से आशीर्वाद मांगा। माता गांधारी ने कहा - 'यतो धर्मस्ततो जय: ।' अर्थात् जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है । धर्म जिसके साथ है वहाँ तो आनन्द ही आनन्द है । जीवन में जीतना है तो धर्म का सहारा लो ।

एक राजा ने अपने नगर में घोषणा करवा दी कि जिसकी कोई भी वस्तु बाजार मे न बिके वह राजा के पास जाये, राजा उसे खरीद लेगा । एक दिन एक व्यक्ति फटे पुराने चिथडे लेकर आया और बोला- मैं अपना दारिद्र्य बेच रहा हूँ, जो खरीदना चाहे खरीद ले । दरिद्रता को कौन लेना चाहेगा ? अन्त में वह राजा के पास पहुँचा । राजा ने मुँह

मांगा दाम देकर उसकी दरिद्रता खरीद ली । रात्रि मे राजा के स्वप्न में लक्ष्मी प्रकट हुई और बोली - राजन् ! मैं जा रही हूँ, तुमने दरिद्रता खरीद ली है तो अब मेरा यहाँ क्या काम ? वह चली गई । इसी प्रकार क्रमशः रूप, यश और सम्मान ने भी विदा ले ली । अन्त में धर्म उपस्थित हुआ और बोला - महाराज ! मेरे साथी आपको छोड़कर जा चुके हैं, मैं भी विदा ले रहा हूँ । राजा ने कहा - यह कैसे हो सकता है ! तुम से बँध कर ही तो मैंने प्रतिज्ञा ली थी । मैंने तो अपने धर्म का पालन किया है । धर्म जाते जाते ठहर गया और बोला - तुम मुझे इतना चाहते हो तो मै नहीं जाऊँगा । धर्म ठहरा तो लक्ष्मी, रूप, यश और सम्मान भी पुनः लौट आये ।

आप अपने जीवन मे धर्म को थाम लेंगे तो सभी सद्गुण प्राप्त हो जायेंगे । इस मनुष्य शरीर से धर्म की साधना की जा सकती है । शरीर मिला है तो समय रहते जितना शुभ कार्य हो सकता है, करने का प्रयास करो । धर्म के प्रति जीवन में प्रमाद किया तो अन्त में पछताना पड़ेगा । धर्म के बिना जीवन की किश्ती को किनारा नहीं मिल सकता। इसलिए एक कवि ने ठीक ही कहा है -

सुप्त चैतन्य को जगाना चाहिए,
हर क्षण को सार्थक बनाना चाहिए ।
विलास-लहरों में डुबकी लगाने वालों -
समय रहते किनारे को पाना चाहिए ॥

किनारे को पाना है, जीवन मे मुक्ति की ओर कदम बढ़ाना है तो प्रमाद को त्याग कर आत्मोन्नति का मार्ग स्वीकार करो ।

इस ससार में एक धर्म ही ऐसा पवित्र अनुष्ठान है जिससे आत्मा का शुद्धीकरण होता है । इस कार्य में आपके परिजन भले ही आपका साथ न दें मगर आपको अपने कल्याण के लिए धर्म का आचरण अवश्य करना चाहिए । कोई सारे सूत्र कंठस्थ कर ले इससे क्या ! कोई रामायण रट ले उससे वह धर्ममय नहीं हो जाता । ग्रन्थ तो धर्म का मार्ग बताने वाले है । चलना तो आपको ही होगा ।
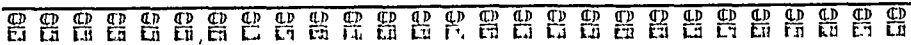
एक व्यक्ति अस्वस्थ हो गया । मित्र-परिजन आने लगे । सभी ने राय दी कि तुम्हें अस्पताल जाकर डॉक्टर को अपना रोग बताना चाहिए। वह व्यक्ति डॉक्टर से मिला अपने रोग के बारे मे चर्चा की । डॉक्टर ने निदान करके एक पर्ची पर दवा लिखकर कहा - यह लो, ठीक हो जाओगे । वह व्यक्ति पर्ची को लेकर घर आ गया । दो दिन बाद मित्र मिला और बोला - अब कैसे हो ? उसने कहा - कुछ भी फर्क नही पड़ा, डॉक्टर को भी दिखाया उसने पर्ची दी वह भी ली । मित्र बोला- पर्ची कहाँ है ? उसने जेब से पर्ची निकाल कर बताई । मित्र ने कहा- दवा की शीशी किधर है ? वह बोला - कौनसी दवा की शीशी । दवा तो डॉक्टर ने दी ही नही, उसने तो पर्ची देकर कहा - यह लो ठीक हो जाओगे । मैंने पर्ची हाथ में ले ली । मित्र बेचारा सिर थामकर रह गया ।

बन्धुओ ठीक ही कहा है -

न नश्यति तमो नाम कृतया दीप वार्तया,
न गच्छति बिना पानं व्याधिरौषध शब्देन,

अर्थात् दीपक को न जलाकर केवल दीपक-दीपक शब्द को रटने से तम नहीं हटाया जा सकता । केवल औषधि-औषधि की रटन से रोग दूर नही हुआ करता है । अधकार को हटाने के लिए दीपक को जलाना जरूरी है, रोग को दूर करने के लिए औषधि का सेवन आवश्यक है ।

वीतराग प्रभु ने धर्म के दो स्वरूप निर्धारित किये है - एक है श्रुत धर्म और दूसरा है चारित्र धर्म । इस संसार में उत्तम धर्म का श्रवण मिलना निश्चय ही दुर्लभ है । आप सभी भाग्यशाली है कि आपको वीतराग का दरबार मिला है । इस दरबार के सिहासन पर सत्तारूढ होने के लिए आत्मबल की आवश्यकता होती है । सुख की मनोवृत्ति का त्याग करने वाला ही धर्म के शिखर पर आरूढ़ हो सकता है । जो भाई-बहिन धर्म महल मे रखे उच्च सिंहासन पर चढने की भावना रखता है उसे चारित्र मे क्षमा, सन्तोष, सरलता और नम्रता के द्वारो से होकर गुजरना पड़ेगा । जो मनुष्य इन द्वारों से निकलने का सद्प्रयत्न करता है, वह अपने भव को सवार लेता है । उसका मानव-जन्म सफल हो जाता है । धर्म के
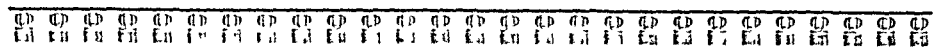
इन द्वारों में प्रवेश करना है तो धर्म का जो मूल हे विनय, उसका सहारा लो और श्रद्धा को धारण करो । श्रद्धा ही मनुष्य को राग से छुटकारा दे सकती है । धर्म के प्रति आपकी श्रद्धा, आसक्ति को कम कर देती है । आसक्ति हटने पर मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो जाता है । आत्मा के परमात्म-स्वरूप को प्राप्त करना है तो धर्म की शरण मे जाना ही होगा । धर्म का सुफल वही प्राप्त कर पाता है जो धर्म को आचरण में उतार लेता है । उत्तम आचरण ही मोक्ष की कुंजी है । कवि ने ठीक ही कहा है -

सैनिक इसलिए बड़ा है कि वह बल देता है,
बादल इसलिए बड़ा है कि वह जल देता है ।
हम से, आप से ही क्या सारे संसार से भी -
धर्म इसलिए बड़ा है कि वह सुफल देता है ॥

इस सुफल प्रदान करने वाले धर्म को जीवन से दूर न करें । धर्म तो अशान्ति, शोक एव क्लेश को सदा सदा के लिए मिटाने वाला होता है । धर्म तो आत्मा के लिए कल्याण कारक है, इसे किसी जाति या सम्प्रदाय से जोड़ने की चेष्टा न करे । यदि कोई ऐसा करता है तो वह धर्म के मूल भावों से दूर चला जा रहा है । कहा भी गया है -

बाँधो न नदी धर्म की,
यह उदारता के सीने से निकली है ।
इसका स्पर्श पाकर के
जीवन के शुष्क कगार सरस हो जायेंगे ।

जहाँ धर्म है वहाँ शुष्कता का क्या काम ? वहां तो हर ओर सरसता का साम्राज्य फैला रहता है । भगवान महावीर का भी जीवन हमारे सामने है तो सिकन्दर, हिटलर, मुसोलिनी के उदाहरण भी हमारे सामने है । महावीर ने राज्य वैभव त्यागकर अपना बहुत कुछ खोकर भी सब कुछ पा लिया मगर सिकन्दर, हिटलर, मुसोलिनी ने बहुत कुछ पाकर भी सब कुछ खो दिया । जो बाहर-बाहर खोजता है उसे कुछ नहीं मिलता मगर जो अपने भीतर-भीतर कुछ खोजता है उसे सब कुछ मिल जाता है यह धर्म मनुष्य

को अन्तःकरण में उतरने की कला सिखाता है । जो आनन्द उदारता में है वह आनन्द अन्यत्र नही है । उदार मन-मस्तिष्क वाला साम्प्रदायिकता की दीवारों से नही टकराता । आपका जीवन सुन्दर है, इसे सुन्दरतम बनाने को प्रयास करो । मनुष्य से बढकर सुन्दर विश्व में कुछ भी नहीं है । यही विचार करके कवि ने कहा है -

सुन्दर है सुमन, सुन्दर है विहग,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम ॥

मानव भव की उपेक्षा मत करो । धर्म की दृढ़ नीवो पर जीवन के भव्य महल का निर्माण करो । धर्म के भव्य महल पर चढने के लिए सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, सेवा, परोपकार, मैत्री, तप, विनय, विवेक के सोपान लगाओ । गुणानुरागी बनकर उस पर सद्कर्मो का लेप चढ़ाओ । यदि अप्रमत्त बनकर हम धर्म के मार्ग में बढ़ते रहे तो आगे मुक्ति का द्वार खुला मिलेगा । दुःखों से घबराकर धर्म का साथ मत छोड़ो । कहा भी गया है -

मत घबरा मन दुःखों से,
धर्म का विचार कर ।
सुबह जरूर आयेगी,
सुबह का इन्तजार कर ॥

जीवन मे सुबह तभी आयेगी जब जीवन धर्ममय होगा, व्यवहार में पवित्रता होगी एव धरती पर प्रेम एव करुणा का निर्झर प्रवाहित होगा। आप अपने में धर्म को उतारने का प्रयास करें । धर्म भीतर उतरेगा तो उसके प्रकाश से आत्मा आलोकित हो उठेगी । यही जीवन की सफलता है ।

* * *
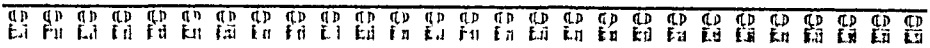
चिन्ता त्यागें : चिन्तन जागे

बन्धुओ !

तीन शब्द मेरे मन-मानस को झकझोर रहे हैं । वे शब्द है - चिता, चिन्ता और चिन्तन । चिता और चिन्ता मे विशेष अन्तर नहीं है । ज्ञानियों ने इनका भेद करते हुए बताया है कि चिन्ता शीतल ज्वाला है जो जिन्दे को जलाती है और चिता मुर्दों को जलाती हैं । चिता और चिन्ता दोनों ही जीवन का नाश करती है । चिन्तन की प्रक्रिया इनसे भिन्न है । जो विचारशील मानव हैं वे सदैव अपना समय चिन्तन में व्यतीत करते हैं । मानव-मस्तिष्क कभी चिन्तन से रहित नहीं रहता । हर क्षण उसमें चिन्तन चलता रहता है । सुप्तावस्था मे भी मनुष्य का अवचेतन मन सक्रिय रहता है । मस्तिष्क में सर्वथा निर्विकल्प अवस्था तो तभी आती है जब वह सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हो जाता है ।

जो अज्ञानी है, अशुभ कर्मो के उदय से दु:खी हैं वे अपना जीवन चिन्ता मे व्यतीत करते है । वे कर्म से हाथ खींच कर बैठे-बैठे विचारों की उधेडबुन मे लगे रहते हैं । जो जीव हैं वे सभी, यहाँ तक कि पेड़-पौधे भी - विचार शून्य नहीं होते । वानर जिस प्रकार एक डाली को पकड़ कर दूसरी डाली पर चला जाता है, लतायें भी अपने तन्तुओ को फैलाकर डालियों के तन्तुओ को जकड़ते हुए आगे बढ़ती है, अपने मृत बच्चे को देखकर पशुओ की ऑखे भी नम हो जाती है, पक्षी के अण्डे फूट जाने पर वे भी चीं ची करने लगते हैं । यह सब प्राणी की विचारशीलता

का प्रमाण है जिसमे भले बुरे का चिन्तन नहीं वह पाषाण-चेतनाशून्य हो सकता है, मगर जीव कभी नहीं हो सकता । संसार में उसी की अभिलाषा पूर्ण होती हैं जो चिन्तन की ओर अभिमुख है । मै तो कहती हूँ कि इस वर्तमान दौर में -

चिन्ता नहीं चिन्तन जरूरी हैं,
विचारों का मन्थन जरूरी हैं ।
चेतना का फूंकना है शंख तो -
भावों का स्पन्दन जरूरी है ॥

चिन्तन होगा तभी जीवन में चेतना आ पायेगी । आपका चिन्तन लाभकारी भी हो सकता है, हानिकारक भी बन सकता है । यह चिन्तक की मनःस्थिति पर निर्भर है । जो जिस क्षेत्र मे काम करता है उसका चिन्तन भी उसी ओर दौड़ता है । व्यापारी का चिन्तन व्यापार को बढाने में चलता है तो चोर का चिन्तन किसी सुरक्षित घर में कैसे पहुँच कर चोरी की जाये - इसी का विचार करते हुए चलता रहता है । किसान खेत से अधिकाधिक फसल प्राप्त करने का चिन्तन करता है । नेता जनता को अपने पक्ष मे बनाये रखने में लगा रहता है । सत्ता की कुर्सी पर बैठे लोगों का चिन्तन कुर्सी को बचाये रखने का होता है वहीं विपक्षी कुर्सी को हथियाने या जोड़-तोड़ करने में चिन्तन लगाते है । कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजसेवी सभी के रास्ते अलग-अलग होते है । एक का चिन्तन कभी कभी दूसरे का भी हो जाता है । कवि भी जब भावना के साथ-साथ चिन्तन करता है तो वह दार्शनिक हो जाता है । कहा भी गया है- **No poet can be great without being a profound philosopher at the same time.**

जो चिन्तन भौतिक आवश्यकताओ तक सीमित है, शारीरिक सुख एवं समृद्धि तक सीमित है, जड़ पदार्थो तक सीमित है वह चिन्तन आत्मपरक नहीं बन सकता । जो चिन्तन आत्मपरक नही है वह जीवन के लिए लाभकारी भी नही हो सकता । ऐसा चिन्तन व्यर्थ एव निरर्थक है । जीवन में अध्यात्म का प्रवेश हो, मन और मानस में जाग्रति पैदा हो वही चिन्तन सच्चा चिन्तन है।

मै बहिनो से, सभी भाइयो से पूछती हूँ - क्या आपने अपना ध्यान, अपना चिन्तन, जीवन-जागृति की ओर लगाया है ? जो राग की ओर ले
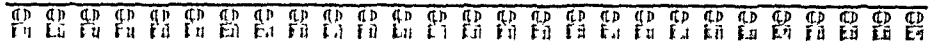
जाता है वह स्वस्थ चिन्तन नही हो सकता । बीती हुई घटनाओ पर सोचना चिन्तन कम चिन्ता ज्यादा हैं । ऐसे चिन्तन से जीवन में लाभ कम होता है - उद्विग्नता अधिक बढ़ती हैं । जो बीत गया उसे भूलकर भविष्य का ध्यान करना ही जीवन-निर्माण में सहायक हो सकता है । सच्चे मन से किया गया पश्चाताप का एक पल ही अवशेष जीवन में नई रोशनी भर देता है ।

वह सागर ही क्या जिसमें लहरें न उठे और वह मन ही क्या जिसमे विचार न उठें । स्वामी रामतीर्थ का नाम बचपन में तीर्थराम था। बचपन से युवावस्था में आ गये । उनके मन में उठती विचार तरंगें अन्तर्द्वन्द्व पैदा करती रहती थी । वे विचार करते कि मैं गृहस्थी बनूं या संन्यासी बनूं । अनिर्णय की स्थिति बनी रही । एक दिन वे हमेशा की तरह ही गंगा-स्नान को जा रहे थे । पांव पथ पर बढ़ रहे थे मगर ध्यान कहीं ओर था । सामने से एक हरिजन महिला आ रही थी उसने तीर्थराम से कहा - 'एक तरफ चलो ।' तीर्थराम की चिन्तनधारा ठहर गई, वह बोला- माँ ! तुमने ठीक ही कहा है । मुझे एक तरफ ही चलना चाहिए । अब तक दो तरफ चलने के कारण मेरे जीवन में ठहराव आ गया था । मै आज से ही एक तरफ चलूंगा अर्थात् संन्यासी बनकर चलूंगा । उसी क्षण तीर्थराम स्वामी रामतीर्थ बन गये ।

अतीत का अनावश्यक चिन्तन हमे वर्तमान से काट देता है । अतीत की दुर्घटनाओं पर आंसू बहाने से सफलता नही मिलती बल्कि वर्तमान उन आंसुओं में बह जाता है । व्यतीत हुए अतीत पर सोचना मन के आकाश को काली घटाओं से ढंकना है । अपने अतीत को भूलने में ही जीवन की सार्थकता है । अतीत की लाश का बोझ उठाकर चलने वाला मंजिल से पहले ही थककर बैठ जाता है । अतीत के इसी चिन्तन को व्यर्थ मानते हुए एक कवि ने कहा है -

> मैंने अक्सर अपने अन्दर
> पुरानी लाश को सड़ते हुए महसूसा है,
> उसके हाथ पाँवों को
> अपनी आँखों में धंसते हुए महसूसा है,

अब सोचता हूँ,
लाशों को जला देने, पानी में बहा देने
या फिर कब्र में दफना देने की परम्परा
कितनी अच्छी थी, कितनी पुरानी थी
मैं जानता हूँ यह लाश तभी मेरा पीछा छोड़ेगी
जब मैं अतीत हो जाऊँगा ।

कवि ने बहुत गहरी बात कही है । आदर्श परम्पराएं प्रत्येक युग में स्वीकारी जाती है । जो बुराइयॉ है उन्हें सदा-सदा के लिए जला देने, बहा देने या दफन करने मे ही जीवन का भला है । अतीत में जो गलतियॉ, खामियां या न्यूनताए रही हैं उन पर पश्चाताप करते रहने से कुछ नहीं मिलता, बल्कि उन्हे भूल करके नवीन चिन्तन की ओर अग्रसर होना चाहिए। यही जीवन के लिए श्रेयस्कर है । ज्ञानियों ने कहा है -

गते शोको न कर्त्तव्यो: भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन, वर्तयन्ति विचक्षणा: ॥

अर्थात् विचक्षण पुरुष अतीत पर पश्चाताप नहीं करते व भविष्य के सुन्दर-सुखद छलावे से परिपूर्ण स्वप्नों में भी नहीं उलझते । उनके साथ में वर्तमान होता है, उसी में वे जीते है, उसी को भोगते है और उसी के अनुसार अपने जीवन को आकार देते हैं ।

भविष्य के चिन्तन में वर्तमान को नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं है। कुछ लोग दिन-रात भविष्य के काल्पनिक सपने संजोने में ही समय को बर्बाद कर देते है । ऐसा सोचना चिन्तन नहीं बल्कि चिन्ता का विषय बन जाता है । संसार में मूढमति लोगों की कमी नहीं है । वे किस प्रकार धन का अधिकाधिक संग्रह किया जाये इसी में लगे रहते हैं। सन्तान के लिए अठारह पापों का सेवन करते हुए कर्म-बन्धन करते हुए हिचकिचाते भी नही हैं । ऐसा करते समय वे भूल जाते है कि जीवन शाश्वत नही बल्कि नश्वर है । भूतकाल के लिए मात्र पश्चाताप करते रहना और भविष्य के प्रति नए-नए स्वप्न देखना - दोनों ही बातें मानव के लिए समय का दुरुपयोग करना है । चिन्तन की धारा को उपयुक्त मार्ग पर बढाने के लिए हमे ऐसे व्यक्तियो से सम्बन्ध रखना चाहिए जो हमारी सहन शक्ति
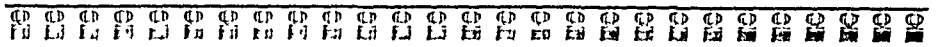
को बढा सके, हमारी विवेक शक्ति को नया रूप प्रदान कर सके, सुख-दुःख की प्रचण्ड तरंगो को अपने भीतर ही शमन करने की सामर्थ्य पैदा कर हमारे जीवन को तेजस्वी एवं यशस्वी वना सके । जो चिन्तन भोगों की ओर बढ़ाता है वह तो सांसारिक रोगों से हमारा साक्षात्कार कराता है । हमें हर दिन को नया जन्म मानकर शुद्ध चिन्तन करते हुए जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करना चाहिए ।

एक राजा ने सन्त से पूछा - महाराज ! आपकी आयु क्या होगी? सन्त ने कहा - पन्द्रह वर्ष ! राजा बोला - आप भी मजाक कर रहे हैं । आपके बाल पक गये हैं, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं । कमर भी कुछ-कुछ झुक रही है, फिर भी मुझे अपनी आयु पन्द्रह वर्ष बता रहे हैं । सन्त ने कहा - राजन् ! जीवन के पचास वर्ष तो मैंने घर गृहस्थी की चिन्ता में ही व्यतीत कर दिये । जबसे धर्म का सहारा लिया, महापुरुषों की वाणी सुनी तो चिन्तन-सागर में डुबकी लगाई । मुझे वीतराग के पथ पर चलते हुए पन्द्रह वर्ष ही हुए है यही मेरी वास्तविक आयु है । मैं अपना अतीत भूल चुका हूँ ।

हम यदि चिन्तन करके देखें तो पायेंगे कि सत्तर वर्ष की आयु का एक व्यक्ति अपनी अवस्था के लगभग चौबीस वर्ष सोने में, ग्यारह वर्ष नौकरी या उद्योग-धन्धा करने में, आठ वर्ष खेल-कूद व मनोरंजन में, छः वर्ष भ्रमण करने मे, छः वर्ष ज्ञान-प्राप्ति में, छः वर्ष बातचीत करने में, छः वर्ष भोजन में व दो वर्ष भविष्य की चिन्ता में नष्ट कर देता है । मात्र एक वर्ष ही वह धर्म, कर्त्तव्य, मानवता के संबंध में एवं जीवन निर्माण के विषय में सोच पाता है और सोचते-सोचते संसार से विदा ले लेता है । संसार के अधिकांश लोग इसी अनुरूप नासमझी का जीवन जी रहे हैं । ऐसा लगता है जीवन के सुसंस्कार अंधी गलियों में भटक गये है । राष्ट्र का युवावर्ग बेकारी, बेरोजगारी, भविष्य की चिन्ता मे दिग्विमूढ बन खड़ा है। वह स्वय की कार्य-क्षमता को भूल रहा है । कवि की चार पंक्तियाँ बार-बार मेरे चिन्तन को जगाती हुई कहती हैं -

माता की पहचान मन की ममता होती है ।
साधक की पहचान उसकी समता होती है ।

उम्र और बदन की ललाई का प्रश्न नहीं -
युवक की पहचान/उसकी कार्यक्षमता होती है॥

युवापीढ़ी पर धर्म, समाज एवं राष्ट्र का बहुत बडा दायित्व है। वह अपनी कार्य-क्षमता का अधिकाधिक उपयोग करे, उसके लिए वर्तमान का चिन्तन करना ही समीचीन है । चिन्तन के माध्यम से जीवन का प्रत्येक पल सुन्दर एवं सार्थक बन सके, दूषित विचार एवं कर्म से मन परे हट सके, पापकर्म से निवृत्त होकर पुण्य की ओर प्रवृत्त हो जाये तो मानव जीवन की सार्थकता है । सभी को यह विचार करना चाहिए कि अनन्त काल तक विभिन्न योनियो में परिभ्रमण करते हुए, नाना प्रकार के दुःखों को भोगते हुए जब अनन्त पुण्यो का सचय हुआ तब जाकर यह मानव-भव प्राप्त हुआ है । अगर यह इस बार भी व्यर्थ चला गया तो फिर दुःख बहुल योनियों में भटकना पड़ेगा ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सभी अपना चिन्तन देह से हटाकर देही की ओर मोडे । केवल इस जीवन में कुछ क्षणों के लिए मान-प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेना, कीर्ति के, उच्च कलश को छू लेना ही जीवन का अन्तिम ध्येय नहीं होना चाहिए । इसके आगे भी प्राप्त करने को बहुत कुछ है और उसी को लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ना श्रेयस्कर होता है । कवि ने अपने चिन्तन को प्रकट करते हुए कहा है -

इस जीवन का ध्येय नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना।
हमें पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं है॥

सागर की बूद सूर्य के ताप से भाप बनकर हिमालय तक पहुँच जाती है । वहां पहुँचकर भी अपने घर लौटने का भाव रखती हुई चट्टानों के टकराती, पर्वतों से गिरकर झरना बनती, नदियों में बहकर धारा के रूप मे सागर तक पहुँच जाती है । मार्ग की कठिनाइयाँ उसको लक्ष्य से नहीं हटा पाती । जिसका चिन्तन सकारात्मक एवं आत्मबल से युक्त होता है, वही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है । जैन दर्शन भी कहता है कि मानव का उच्चतम उद्देश्य अखण्ड एव अक्षय शान्ति, अनन्त और अव्याबाध सुख की प्राप्ति करना है । जो प्राणी अक्षय सुख की प्राप्ति के लिए तत्पर हो जाता है, तो सांसारिक सुख उसके लिए गौण हो जाते

है । हमारा चिन्तन यदि उत्तम कार्य के लिए होता है तो बुराइयाँ अपने आप ही अलग हटती जाती है । किसान खलिहान में अनाज को भूसे से अलग करने हेतु मशीन मे रखता है तो मशीन भूसे को अलग करते हुए अनाज का ढेर लगा देती है ।

जो मानव ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की सम्यग् आराधना में लगा है उससे सांसारिक बुराइयां भूसे की भांति ही अलग हो जाती है । वह अपना समस्त प्रयत्न आत्म-स्वरूप को प्राप्तकर निज घर में लाने हेतु करता है । उसका चिन्तन अध्यात्म के उच्च शिखर पर टिक जाता है । उसका मन अशुद्ध भावो से विलग हो जाता है । उसे यह बोध हो जाता है कि शुभ चिन्तन जीवन को त्याग और अनासक्ति के मार्ग पर बढ़ाता है। शुभ चिन्तन ही मानव के मन में यह दृढ़ विश्वास जगाता है कि धन, वैभव, सन्तान, सुन्दर-सुगठित शरीर एवं सांसारिक उपलब्धियां अशाश्वत है। एक दिन इनका वियोग निश्चित है, फिर इनसे मोह क्यों रखा जाये । सन्त कवि तुलसी ने विनय पत्रिका में सच ही कहा है -

मन पछितैहै अवसर बीते ।
सुत वनितादि जानि स्वारथ-रत न करू नेह सब ही तें ।
अंत हु तोहि तजैंगे पामर, तू न तजै अब ही तें ॥

लोग इस लोक में अपनत्व का ढ़िंढोरा पीटते है, लेकिन श्वासों का पंछी उडते ही सब मुखड़ा मोड़ लेते हैं । जब तक शरीर में चेतन है तब तक ही यह देह प्रिय है, जैसे ही जीवात्मा साथ छोड़ती है वैसे ही परिजन भी श्मशान का रास्ता दिखाने लगते हैं । जिसने घर को बनाया, उसे सजाया, संवारा वहीं से उसे बाहर निकाल दिया जाता है । मृत्यु के बाद उसका वहाँ कोई स्थान नहीं है । बैंक खातो से उसका नाम काट दिया जाता है, वोटर लिस्ट में से उसका नाम हटा दिया जाता है । उसके वस्त्रों को बॉट दिया जाता है । क्या यही जीवन की उपलब्धि है ।

महानुभावों ! आत्म-सुख प्राप्त करना है तो अपना चिन्तन शुभ की ओर बढाओ । आसक्ति को घटाने मे ही लाभ है । यह आसक्ति ही मनुष्य के सद्गुणों को नष्ट कर देती है । जब अशुभ कर्मो का सयोग मिलता है तब कडे परिश्रम से प्राप्त उपलब्धियॉ भी नष्ट होने में देर नही करती । मनुष्य हाय-हाय करता हुआ कर्म बन्धन में बॅधता जाता है ।
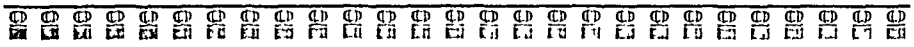
जिसको ज्ञान की रोशनी पल भर के लिए भी मिल जाती है, वह भौतिक सम्पदा को ठोकर मारकर अध्यात्म की ओर उन्मुख हो जाता है । उसका चिन्तन नश्वर से हटकर अविनश्वर की ओर चला जाता है । वह समझ जाता है कि केवल आत्मा ही शाश्वत है । सांसारिक सुख, सुख नहीं मात्र सुखाभास है । भगवान महावीर ने भविजनो को उद्बोधन दिया है कि -

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा, अणिगाम सुक्खा,।
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ काम भोगा ।

अर्थात् ये भोग क्षण मात्र सुख देने वाले है और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं । उनमें सुख थोड़ा है और दुःख अधिक है । काम भोग जन्म-मरण से छुटकारा पाने के विरोधी है । मोक्ष-सुख के परम शत्रु है तथा अनर्थो की खान है । सच्चा सुख तो कर्मो से मुक्त होकर आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेने में निहित है ।

जो मनुष्य इन्द्रियो का दास होता है, वह भोगो की ओर भागता हुआ रोगो के दलदल में फँस जाता है । भोगो का परित्याग करके योग की ओर जाने वाला शाश्वत सुखों की ओर मुड़ जाता है । उनका चिन्तन जीवन के सत्य को प्राप्त करने में लगा रहता है । जिनका जीवन अधार्मिक होता है वे चिन्तन की अपेक्षा चिन्ता में ही जीवन खो देते हैं । वे शरीर के आस पास ही घूमते रहते हैं । शारीरिक सुख के अलावा भी एक अनन्य सुख हैं वे उसके बारे में चिन्तन नहीं कर पाते । मुमुक्षु ही जीवन के यथार्थ को जानकर इन्द्रियों एवं मन पर काबू पाने में समर्थ हो पाते हैं । ऐसे लोग समाधि भाव धारण कर लेते है । वे राग-द्वेष से दूर चले जाते हैं । न इष्ट की प्राप्ति का सुख होता है न अनिष्ट के संयोग का दुःख होता है । विपत्ति में भी अपना धैर्य नहीं खोते है ।

एक बन्दर नदी में तैर रहा था, तभी मगर ने उसकी टांग पकड ली । बन्दर हॅसते हुए बोला - बहुत खूब मगर जी । लकडी का ठूठ पकड़ कर सोच रहे हो कि बन्दर की टांग को पकड लिया है । मेरी

टांग तो इधर है । मगर ने सोचा - यह तो मूर्खता हो गई । उसने वह टाग छोड़कर दूसरी पर झपट्टा मारना चाहा, तब तक तो बन्दर उछल कर तट पर आ गया । यही स्थिति चिन्तनशील मनुष्यों की होती है । वे समय और परिस्थिति का ध्यान रखकर अगला कदम उठाते हैं । जिनकी दृष्टि आत्मोन्मुखी होती है वे अपने मन के दोषों का निवारण कर आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयास करते है ।

यदि हृदय सरल, शुद्ध और विषय विकारों से रहित है तथा उस पर सद्विवेक का पहरा है तो पापों का अन्तःकरण में प्रवेश नहीं हो सकता। हृदय के कण-कण में जब पवित्रता रमण करती है तो अज्ञान को अन्तर मे स्थान नही मिल पाता । सच्चे साधक के अन्तःकरण को एक राजदरबार के रूप में चित्रित करते हुए किसी विचारक ने कहा है -

''तेरे मन के अन्दर सुन्दर सिंहासन पर सत्य रूपी राजा एवं अहिंसा रूपी महारानी प्रतिष्ठित है । स्नेह, सद्भावना, विरक्ति, सेवा, करुणा, दया आदि अनेक सुन्दर सद्गुण दरबारियों के समान शोभा बढ़ा रहे हैं । तेरे इस हृदय दरबार में अगणित सत्यधारी पैगम्बर और अवतारी भी विराजमान हैं, फिर बता - तू वन में किसलिए भटक रहा है । तुझे बाहर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है ।''

चिन्तनशील मनुष्य बाहर के बजाय अन्तर्यात्रा की ओर मुड़ जाता है । लोग जिसे बाहर ढूँढकर नहीं पा सकते वह उसको अपने अन्तर्मन में पा लेता है । इस भू-मण्डल पर करोड़ों मानव जीते हैं मगर जीवन उसी का सार्थक होता है जो चिन्तनशील है । समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा एवं सद्भाव रखते हुए अपने हृदय का अहंकार, ईर्ष्या, निन्दा, काम, क्रोध और मिथ्यात्व से दूर रहते हैं । चिन्तनशून्य मानव तो खोखली जड़ वाले वृक्ष की भाँति होते हैं । वाल्मीकि ने रामायण में लिखा है-

न चिरं पाप कर्माणः क्रूराः लोक जुगुप्सिता।
ऐश्वर्य प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥

अर्थात् जिनकी जड़ खोखली हो गई हो वे वृक्ष जैसे अधिक काल तक खड़े नहीं रह सकते, उसी प्रकार पाप कर्म करने वाले लोक-निन्दित क्रूर-पुरुष ऐश्वर्य को पाकर भी चिरकाल तक उसमें प्रतिष्ठित नहीं रह

पाते । ठीक इसी प्रकार जो मनुष्य बुराई की ओर उन्मुख है एक दिन उनका अन्त निश्चित होगा ।

जिन्हें धर्म, समाज एवं राष्ट्र से प्रेम है जो इनकी भलाई के साथ आत्म कल्याण की चाह रखते हैं उन्हें चाहिए कि वे अपना अन्तिम सर्वतोमुखी बनाएं । जो सबके कल्याण की सोचता है उसी चिन्तन में उसका भी कल्याण निहित होता है । एक व्यक्ति का चिन्तन पूरे समाज में नई चेतना को जन्म दे सकता है । जीवन मे यदि आगे बढ़ना है समाज में जाग्रति का उद्घोष करना है सुसंस्कृत, सभ्य मानव समाज का निर्माण करना है तो चिन्तन के चक्र को मन्द नहीं होने देना चाहिए ।

एक बहिन सन्त के पास जाकर बोली महाराज ! आप अपने चरण की धूल मेरे बच्चे के सिर पर लगाने दें ताकि यह महान् बन सके । सन्त ने कहा बहिन - तुम अपने बच्चे मे उत्तम संस्कार पैदा करो, उसे नवचिन्तन दो, आत्म चिन्तन की ओर अभिमुख करो तभी यह महान् बन सकेगा। मात्र पांवों की धूल से तुम्हारा पुत्र महान् नहीं बन सकेगा ।

वर्तमान पीढ़ी में आत्म चिन्तन के दीप प्रज्वलित कर सकें तो यह हमारे जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो सकेगी । इसी से सबका जीवन कल्याणमय होगा ।
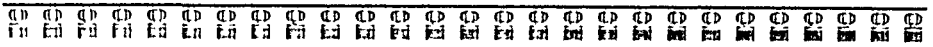
समय को जान : निज को पहचान

धर्मप्रेमी आत्म बन्धुओं !

महाभारत में वेदव्यास जी ने समय की महत्ता बताते हुए लिखा था -

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चापराह्निकम् ।
न हि मृत्यु प्रतीक्षेत् कृतमस्य नवाकृतम् ॥

अर्थात् कल का काम आज ही कर लें, पिछले प्रहर का काम प्रथम प्रहर में कर लें क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखती है कि इसने कार्य कर लिया है या नहीं । मृत्यु तो आयेगी ! वह किसी की उम्र, महल-झोपड़ी, धन-सम्पत्ति, बल, अवस्था नहीं देखती है । उसको तो एक दिन आना है । उसे कोई रोक नहीं सकता । इसलिए समय रहते इस जीवन को सार्थक बनाने में ही भला है । जब तक जीवन है स्वयं को जाज्वल्यमान दीपक की भांति जलाये रखो ! आलोक को फैलाते रहो । यह शरीर कुछ करने के लिए मिला है तो परोपकार करो । परोपकार नहीं कर सकते, हिम्मत नहीं है तो फिर अपना भला तो करो, इसमें प्रमाद करना उचित नहीं है। जरा विचार करो कि इस आत्मा के कल्याण के लिए अब तक आपने क्या किया है ? अरे । यह समय तो मुट्ठी में से खिसकती बालू रेत के समान है । हर क्षण यह रेत खिसक रही है । एक निश्चित समय के लिए हमें यह जीवन मिला है । आयुष्य पूरा होते ही हमें यहाँ से
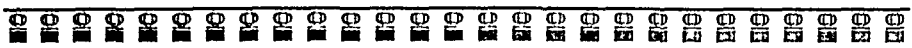
प्रस्थान करना होगा । आज तो आप शुभ कार्य हेतु मुहूर्त निकलवाते हो उस दिन आपको इसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी । कब - कैसे इस संसार से जाना पड़ेगा, कुछ पता नहीं है । सदैव यह विचार करते हुए अपने जीवन में पुण्यों का संचय करो कि यह समय फिर नहीं आने वाला है ।

आप तो ऊर्जा के भण्डार है । आप सब प्राणी कहलाते हैं, क्योंकि आपमें प्राण है । प्राणों के निकलते ही यह शरीर निष्प्राण हो जाता है। यह प्राण ही ऊर्जा है । विद्युत् के उपकरण में जब तक विद्युत् का संचार होता है, वे चलते रहते हैं । बिजली के जाते ही सारे उपकरण शान्त हो जाते हैं । जब तक जीवन है, ऊर्जा है इसका आप लाभ उठा लो। क्या मालूम विद्युत् कटौती की भाँति जीवन की कटौती भी हो जाये । जो समय मिला है उसका पूरा लाभ उठाने में ही कल्याण है। शेक्सपियर ने भी कहा है - आज का अवसर घूमकर खो दो, कल भी वही बात होगी और फिर अधिक सुस्ती आयेगी, अतः कल शैतान का दूत है । इतिहास के पृष्ठों पर इस कल की धार से कितने ही प्रतिभाशालियों का गला कट गया । बच्चे तो अभी बच्चे हैं । अभी उनकी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई है । वृद्धों के जीवन-दीप का तेल समाप्ति की ओर जा रहा है । उनकी ऊर्जा में कमी आ रही है । लेकिन युवकों में अभी ऊर्जा का भण्डार है, वे इस युवावस्था में कुछ भी कर गुजरने में समर्थ है । इस युवावस्था को व्यर्थ न गँवादे ! जीवन में संघर्षो का सामना करते हुए समय का उपयोग व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के लिए करके सच्चे कर्मवीर, धर्मवीर बनने की आवश्यकता है । जिसमें ऊर्जा है, जो समय के महत्त्व को पहचान गये है, उन कर्मवीरों के लिए कवि ने ठीक ही कहा है -

जिन्होंने कुछ करने का भाव जगाया वे विश्वास जगाते हैं,
जिन्होंने कुछ करके यहाँ दिखाया वे इतिहास बनाते हैं ।
जो सूरज की प्रतीक्षा में कल का इंतजार नहीं करते -
वे स्वयं जलकर के अंधेरे में प्रकाश फैलाते हैं ॥

इस संसार में आज जो कुछ प्रकाश विद्यमान हैं वह ऊर्जावान लोगों ने ही किया है । समय पर उनके द्वारा किए गये कार्यो के परिणाम

स्वरूप ही विश्व में ज्ञान, विज्ञान एवं धर्म का आलोक फैला है । बुद्ध हो या महावीर, जीसस हो या मुहम्मद, दयानन्द हो या विवेकानन्द, आप किसी भी महापुरुष का जीवन देखे उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानेगे तो पायेगे कि उन्होने कल की कभी प्रतीक्षा नहीं की हैं । जो बीत गया वह तो हाथो से निकल गया है उस पर अब अधिक चिन्तित होने की जरूरत नही । जो आज है वह स्वर्णिम समय है, कल तो भविष्य के गर्त में छुपा है । कल का कोई भरोसा नहीं है । वह तो आयेगा मगर आप उससे मिल सकेगे यह जरूरी नहीं है ।

यह जीवन बहुत थोड़ा है । इसका अधिकांश भाग तो निकल गया है जो शेष बचा है उसका उपयोग करना ही हमारा ध्येय होना चाहिए। ध्येय-सिद्धि को जैनाचार्यो ने श्रावक का गुण माना है । प्रत्येक मानव जो आगे बढ़ने का भाव रखता है, वह अपना ध्येय पहले निर्धारित करता है। उसके लिए प्रयास करता है । प्रयास करोगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। जो हो गया उस पर आप अधिक ध्यान न दे उससे कुछ मिलने वाला नहीं है । समझदारी तो आने वाले पलों को सुन्दर एवं सार्थक बनाने में है । 'जब जागो तभी सवेरा' इस उक्ति को हृदय मे अच्छी तरह स्वीकार कर जीवन का एक पल भी बर्बाद मत करो । जीवन का हर क्षण मूल्यवान है । जो जाग्रत है वह समय का पूरा-पूरा लाभ उठा लेता है । एक दोहा मैंने अपने बचपन मे सीखा था । आप भी जानते हैं कि -

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब ॥

यह सन्देश उन लोगों के लिए है जो धर्मप्रेमी है । जिनका विवेक जाग्रत है - लेकिन थोडे प्रमादी है । जिन्हें बस संकेत करने की आवश्यकता होती है वे प्रमाद की चादर त्यागकर अपने ध्येय की तरफ अग्रसर होने को बिना विलम्ब किये तत्पर हो जाते हैं । उन लोगों के लिए यह दोहा प्रभावक सिद्ध नही होगा जो जीवन के महत्त्व को जानबूझ कर भूल चुके हैं, जो जीवन को पशुतुल्य बना चुके है, प्रमाद ने जिनके रोम-रोम में डेरा डाल दिया है । उनके पुण्य प्रबल थे इसलिए मनुष्य भव को पा गये अब आगे उनकी क्या स्थिति बनेगी यह वे स्वयं भी समझ नही सकते

है । उन्हे समझाने का प्रयत्न भी किया जाये तो वे कुतर्क करने लग जायेगे और कहेंगे कि -

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों ।
इतनी जल्दी क्यों करे, जियेंगे यहाँ बरसों ॥

सच पूछा जाये तो यह बुद्धि का दिवालियापन है । ऐसे लोग जडमति है । वे महापुरुषो की शिक्षाओं से बहुत दूर हैं । संसार में ऐसे लोगों की कमी नही है । आप एक ढूढेगे तो हजार मिल जायेंगे । वे अच्छे कार्यो को कल पर टालते हैं । वे सोचते है - कल यह कार्य करना है मगर कल भी आज मे बदल जाता है और वे बिना कुछ किए ही समय को खोकर संसार से विदा हो जाते हैं । मुहूर्त के चक्कर में पडोगे तो दिन नही महिने निकल सकते है । अच्छे कार्य के लिए आज से अधिक शुभ दिन नही हो सकता । आज ही क्यो ? अभी ही अच्छा मुहूर्त है । हॉ बुरे कार्य मे विलम्ब करे तो आपके लिए अच्छा रहेगा। अशुभ कार्य को कल के लिए छोड़ दें वह हितकर रहेगा । इस समय का सदुपयोग कर लोगे तो जीवन मे इन्द्र धनुष-से रंग उतर जायेंगे ।

महाराज दशरथ ने दर्पण मे अपना चेहरा देखा तो श्वेत केश देखकर विचार किया मै वृद्ध हो चुका हूँ अब मुझे राजकार्य राम को देकर धर्मलाभ लेना चाहिए । उन्होंने तत्काल वशिष्ठ जी को बुलाकर कहा - मै अपना राज्य सिहासन राम को देकर मुक्ति के पथ पर चलने का विचार रखता हूँ, कौनसा दिन ठीक रहेगा । वशिष्ठ जी ने कहा - महाराज अच्छे कार्य के लिए तो आज का दिन और यही पल उत्तम है । आपके मन में श्रेष्ठ कार्य का भाव जागने वाला क्षण ही श्रेष्ठ क्षण है । इसमें विलम्ब उचित नहीं । दशरथ ने कहा - नहीं आप उचित मुहूर्त देखकर बतायें कि राम के राज्याभिषेक हेतु कौनसा दिन श्रेष्ठ रहेगा उसी दिन मै अपना राज्यभार राम को देकर मुक्त हो जाऊंगा । वशिष्ठ ने तत्काल पंचाङ्ग देखकर राम के राज्याभिपेक का मुहूर्त निकाल दिया । महिने भर का समय मिल गया। अयोध्या में तैयारियॉ होने लगी । घर, गली, बाजार सजने लगे । उधर रनिवास मे मंथरा ने कैकेई के कान भरना शुरु कर दिया और मुहूर्त से पूर्व ही सारा गुड़-गोबर हो गया । वशिष्ठ जी द्वारा निकाला गया मुहूर्त भी राम का राज्याभिषेक नही करवा सका । यदि उसी दिन उसी पल

दशरथ निर्णय ले लेते तो राम को वनवास जाने का प्रसङ्ग नहीं बनता। रामायण की कहानी ही दूसरी बन जाती ! राम लक्ष्मण और सीता को वन-वन भटकना नहीं पड़ता ।

आप अच्छे कार्य को समय रहते तत्काल करने का भाव जाग्रत करें । समय जा रहा है । कल पर भरोसा करोगे तो दशरथ की सी दशा हो सकती है, कल कल करते तो जीवन की चौथी अवस्था आ गई । सिर पर आते श्वेत केश तो वृद्धावस्था की बदलियाँ हैं, ये बरसेगी निश्चित बरसेगी और एक दिन आपको वहा ले जायेगी । समय रहते सचेत होने की जरूरत है । यह यौवन तो जीवन का वरदान है, समय को खोकर इस वरदान को अभिशाप में न ढालें । प्रमाद में समय को न खोये । समय आपकी मुट्ठी में रहे ऐसा काम करोगे तो आपका जीवन धन्य बन जायेगा । लेकिन समय ने यदि आपको अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया तो आप उसके गुलाम-दास बनकर रह जायेंगे ।

बन्धुओं ! किसी भी दास के स्वतंत्र विचार नहीं होते हैं । दास सदैव अपने स्वामी की ओर ही देखता रहता है । उसकी स्वयं की सारी ऊर्जा स्वयं के लिए उपयोगी नहीं होकर स्वामी के लिए ही खर्च होती है । यह वृद्धावस्था समय का दासभाव ही है । इस अवस्था में इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है, ठीक ढंग से बैठा भी नहीं जाता, शरीर को रोग घेर लेते हैं, सांस फूलती है । ऐसी स्थिति में फिर कौन, कैसा तीर मार लेगा यह विचारने की आवश्यकता है । इस अवस्था में आप धर्म-कमाई करने की बात करके रेत में से तेल निकालने की चेष्टा ही करेंगे जिससे पर्याप्त लाभ होने वाला नहीं है । यौवन-मद में पागल बना मनुष्य समय को सार्थक करने से वंचित रह जाता है । जो व्यक्ति किसी कार्य को कल पर टालता है वह आज के महत्त्व को घटाने का प्रयास करता है। इस संसार में व्यक्ति हो या राष्ट्र, जो भी आज शीर्ष पर दिखाई दे रहे हैं, उसके पीछे उनके द्वारा किये गये समय का सदुपयोग ही है । महान् बनना प्रतिष्ठा प्राप्त करना आपके अपने हाथ में है । इस संसार में मनुष्य अपने आप में न तो बलवान है न दुर्बल । समय या काल का सदुपयोग ही उसे ऊपर उठाता है । अतः कहा गया है -

काले कालं समायरे ।
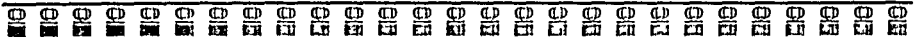
अर्थात् प्रत्येक कार्य को समय पर करो । एक व्यक्ति को अपने नगर से बाहर आवश्यक कार्य से जाना था । उसने गाड़ी का अग्रिम टिकिट भी बनवा लिया । निश्चित समय पर उसे घर से प्रस्थान करना था । घड़ी में समय देखा और चल दिया । कुछ दूर जाने के पश्चात् उसे याद आया कि यात्रा प्रारम्भ करते समय नाक के जिस भाग से सांस निकलती है वही पॉव उठाकर मुझे घर से बाहर धरना चाहिए था । यह तो भारी भूल हो गई । वह पुनः तेजी से घर में आया । सांस-प्रश्वास का ध्यान रखकर घर के बाहर निकल कर स्टेशन पर पहुँचा तो गाड़ी छूट चुकी थी । वह टिकिट को हाथ में लिए देखता ही रह गया । उसे अपने पॉव पर बड़ा गुस्सा आ रहा था । वह बार-बार उसे छडी से मारने लगा कि तेरे कारण मै गाड़ी चूक गया । तू पहले ही घर से सही समय बाहर निकल जाता तो मेरी यह स्थिति नहीं होती । इसके पश्चात् दूसरे पॉव पर छड़ी मारकर कहा - तुझे पहले निकलने की क्या जरूरत थी, थोड़ी प्रतिक्षा नहीं कर सकता था । यह मनुष्य की विवेकहीनता है । कौनसा सांस अच्छा है, कौनसा पांव अच्छा है, ऐसे अन्धविश्वास में पड़कर समय को खोना ठीक नहीं है । हमारे भाव शुभ है तो सब शुभ ही होगा ।

यह समय तो दौड़ा जा रहा है । समय रहते इस जीवन का निर्माण करना मनुष्य के अपने हाथ में है । ज्ञानियों ने कहा है -

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स वऽत्थि पलाय णं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥

अर्थात् जिसकी मृत्यु से मित्रता हो या जो भागकर मृत्यु से पिण्ड छुड़ा सकता हो अथवा जिसे यह निश्चय हो कि मैं मरूंगा नही, वही किसी शुभ कार्य को कल पर छोड़ सकता है । इस युवावस्था मे, जो कि जीवन की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है, जीवन का लाभ उठा लेना श्रेयस्कर है । राजा भोज के जीवन का प्रसग है । एक दिन राजा भोज अपने अश्व पर चढ़कर चले जा रहे थे । उन्हें सामने से एक वृद्धा आती हुई दिखाई दी । वृद्धावस्था के कारण उसकी कमर झुक चुकी थी । हाथ

में लाठी लिए धीरे-धीरे वह चली जा रही थी । राजा भोज ने मजाक में ही पूछ लिया -

कांई गांठ स्यूं गिर पड़्यो, किण रो काढ़ै खोज ।
कुड़कर चालै डोकरी, पूछै राजा भोज ॥

अर्थात् तेरे पास से क्या गिर गया है, जिसको तू झुक करके चलती हुई खोज रही है ? वह वृद्धा भी कुछ कम ज्ञानी नहीं थी उसने भी कहा - बेटा ।

म्हांम्यू तो थामै गई, उण रो काढूं खोज ।
था स्यूं पण जासी परी, सुण रे राजा भोज ॥

अर्थात् एक दिन जब यह जवानी मुझ में थी तब मैं अकड़कर चलती थी लेकिन वह मेरे से फिसल कर तुम जवानों में चली गई है। मै उसे ही खोज रही हूँ । पर, तुम भी गर्व मत करना, क्योकि एक दिन तुम्हारे हाथ से भी यह खिसक कर चली जायेगी तुम भी मेरी तरह जवानी अर्थात् अपने यौवन का समय ढूंढते फिरोगे ।

यह समय फिर आने वाला नही है । हम इन भौतिक सुखों के दलदल में नैसर्गिक व आत्मिक सुख ढूंढना चाहते हैं लेकिन कभी नहीं मिल पायेगा । धर्म साधना के बिना सुख की सच्ची अनुभूति असम्भव है । बाहरी पदार्थो मे सुख की तलाश करना समय को व्यर्थ खोना है। आपके पास अब भी समय है, क्योंकि -

बचपन बीत जवानी बीते और बुढ़ापा आयेगा ।
मानव धर्म-साधना कर ले समय चला यह जायेगा ॥

धर्म प्रेमियो ! जो समय हमारे सामने शेष है हम उसका पूरा-पूरा उपयोग करें ! आत्मा की प्यास सदनुष्ठान के जल से बुझ सकती है । आयु-कूप से जल निकालने हेतु पचास फुट रस्सी तो आपने कुए में डोल सहित डाल दी है, उसे यदि पानी के समीप पहुँचा दी है, तो अब विलम्ब मत करो, कुछ रस्सी अभी भी आपके पास है उसे जल के स्तर तक पहुँचाओ । धर्म-कूप के जल को खींच कर जनम-जनम की अतृप्त आत्मा को तृप्त कर दो । धर्म की साधना करके कर्मो की

निर्जरा करने का समय आपके पास अब भी है । इसका सदुपयोग करने की चेष्टा करना ही जीवन का ध्येय बना लीजिए अन्यथा -

निर्वाण दीपे किमु तैल दानं,
चौरे गतेवा किमु सावधानम् ॥

अर्थात् दीपक के बुझने के पश्चात् तेल डालने से क्या लाभ ? चोर के माल ले जाने के बाद सावधान होने से क्या फायदा ? खेती के सूखने के बाद यदि बादल जमकर बरसें तो क्या खेती फिर हरी भरी हो सकती है ? नही, भाई ! नही हो सकती । यह मानव भव बड़ा दुर्लभ है, चला गया तो फिर लौटकर आना मुश्किल है । जीवन में प्रमाद को त्यागकर धर्माचरण को जीवन का हिस्सा बनाने का प्रयत्न करें क्योंकि -

क्षिप्रमक्रियमाणस्य काल: पिबतितद्रसम् !

अर्थात् कोई भी सत्कार्य विलम्ब से किये जाने पर काल उसका रस, उत्साह व उमंग को पी जाता है । आजकल जिससे भी बात करते है कि भाई ! स्वाध्याय करते हो, सामायिक करते हो ? तो यही उत्तर मिलता है क्या करे महाराज श्री ! समय ही नहीं मिलता । क्यो नही मिलता ? चौबीस घण्टे मिलते है ! समय हमारे सामने से निकल जाता है और हम उसे जाते हुए देखते रह जाते है ! जो समय से हाथ मिला लेते है उनका जीवन सॅवर जाता है । समय प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष स्वर्णिम अवसर के रूप मे उपस्थित है इससे कुछ लाभ उठा लेते हैं कुछ हाथ मलते रह जाते है, वर्तमान दौर में भारत के पिछडने का प्रमुख कारण यहां के निवासियो द्वारा की गई समय की उपेक्षा ही है । बड़े-बड़े नेता जो समय देते है वे उस निश्चित समय पर पहुॅच ही नही पाते । इस दौर मे भी ऐसे लोग हुए है जिन्होंने समय का मूल्य पहचाना है । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-जिनके विद्यालय में विवेकानन्द ने शिक्षा प्राप्त की थी, वे जब घर से निकलते थे तो लोग अपनी घडियॉ मिलाया करते थे ।

अच्छे एवं शुभ कार्यो के लिए समय निकालना चाहोगे तो निकल जायेगा । कोशिश करोगे तो सफलता निश्चित है । चार्ल्स फॉस्ट एक मोची होते हुए अपने कार्यो मे से एक घण्टा प्रतिदिन गणित के अध्ययन मे
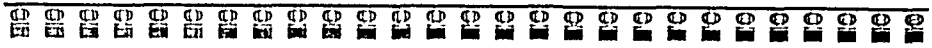
लगाकर अमेरिका का महान् गणितज्ञ बन गया । गैलीलियो ने अपने डॉक्टरी जीवन की व्यस्तता में ही समय निकालकर दूरबीन का आविष्कार कर लिया।

समय का सदुपयोग करने वाला ही महापुरुषों की पंक्ति में बैठ सकता है । संस्कृत में एक सूक्ति है -

कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च संचयेत्

अर्थात् कण कण करके धन एवं क्षण-क्षण करके ज्ञान अर्जित करते रहना चाहिए । समय गतिमान है उसे आप और हम तो क्या स्वयं तीर्थंकर देव भी नहीं रोक सकते । भगवान महावीर से एक वार देवराज इन्द्र ने प्रार्थना की - प्रभो ! इस समय भस्मक ग्रह चल रहा है, अतः आप अपनी जीवन डोरी दो क्षण आगे बढ़ा दे तो जिन शासन में अत्यधिक अभिवृद्धि होगी । अनन्त ज्ञान के धारक प्रभो महावीर ने कहा - देवेन्द्र! दो क्षण तो वहुत बड़ी बात है, पलमात्र भी अपनी जीवन डोर को आगे नही बढ़ाया जा सकता है । कोई अपनी निश्चित सांसों से एक सांस भी अधिक नहीं ले सकता यह असम्भव है कि हम अपने जीवन के अवशेष काम को पूरा करने के लिए मृत्यु से कहे कि मुझे थोड़ा वक्त दो । तुम कुछ क्षणों के लिए मुझसे दूर चली जाओ । यह आयेगी तुम्हें पता भी नहीं चलेगा अतः समय को सुकृत में लगाओ ! कल-कल के स्वर को विराम दो क्योंकि पल का भी भरोसा नहीं है !

बन्धुओं ! यदि आप मात्र भौतिक सम्पदाओं के संग्रह में ही उलझ गये तो आध्यात्मिक भावों से दूर हो जाओगे । आध्यात्मिक चेतना से ही आत्मबल उपलब्ध होता है । आत्मबल की आंशिक उपलब्धि भी जिसको हो जाती है उसके समक्ष सभी भौतिक सुख नगण्य हो जाते हैं । प्रत्येक सुबह की किरण मानव के लिए कर्मण्यता का सन्देश लेकर आती है । जीवन का सर्वोत्तम समय आज ही है । आप धर्म की शरण ग्रहण करने में विलम्ब न करे । मानव भव में ही धर्म का लाभ प्राप्त किया जा सकता है । सन्त तुलसीदास जी ने भी लिखा है -

बड़े भाग मानुष तन पावा ।
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा ॥
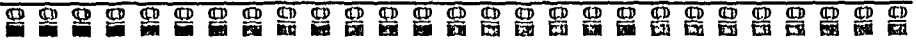
ऐसे सुर-दुर्लभ मानव जीवन में यदि समय का सदुपयोग करते हुए सत्य का आचरण नहीं किया ज्ञान की ज्योति नहीं जलाई, आत्मा का बोध नहीं किया, सत्य, संयम और शील की अनुपालना नहीं की, सेवा, सहयोग में जीवन नहीं लगाया, घर आये अतिथि का सम्मान नहीं किया तो इस जीवन का कोई महत्त्व नहीं हैं । मन में उत्तम भाव जगाते हुए उत्तम कर्म करने का प्रयास करना ही समय को सार्थक करना है । कवि की चार पंक्तियों के माध्यम से अपनी बात कहकर अपनी बात को विराम दूंगी -

आज कल में, कल आज में बदल जाता है,
बदलते मौसम में हिमालय पिघल जाता है ।
रोज सूरज उगता है प्राची में यहाँ पर,
रोज पश्चिम का क्षितिज उसे निगल जाता है ॥

यह सूरज तो कल आ भी जायेगा पर यह क्षण जो चला गया यह फिर नहीं लौटेगा । समय आपके हाथ में है थाम सकते हो तो थाम लो । अपनी ऊर्जा का जितना उपयोग कर सकते हो उसके सफल करने में ही जीवन की सार्थकता है, आलस्य को त्यागकर संकल्प शक्ति को जगाओ । ध्यान एवं साधना का पथ अपनाओ तभी आत्मा का कल्याण सम्भव हो सकेगा । आज बस इतना ही - जय महावीर !
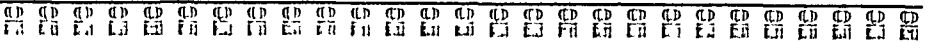
जीवन में रस घोलो : अन्तर्चक्षु खोलो

महानुभावों !

कभी एक मुक्तक लिखा था । आज रह-रह कर उसकी चार पंक्तियॉ मेरे मन मे उमडकर जिह्वा पर आ रही है । लिखा था -

समय पर संसार में जो लोग ना जागे ।
रह गये पीछे वही यहाँ लोग अभागे ॥
वे ही जमाने को दिशा दे पाये हैं बन्धु -
जो उठे, जागे और बढ़ गये आगे ॥

सचमुच इस संसार में जो जागता है वही कुछ प्राप्त कर पाता है । जो सोता है वह तो केवल खोता ही खोता है । सोना ही - खोना. है जबकि जागना पाना है । आपको मनुष्य का जीवन मिला है अब यह तो आप पर निर्भर है कि इसको यूं ही खो देना है या इसमें कुछ प्राप्त करना है । हाथ पर हाथ धर कर निष्क्रिय होकर बैठ जाने से कभी सफलता प्राप्त नहीं होती है । आज का व्यक्ति दौड़ रहा है । उसे पल भर भी चैन नहीं है । रात-दिन उसकी हाय-हाय बढती जा रही है । उसकी रातो की नीद और दिन का चैन छिन-सा गया लगता है । इस स्थिति को देखकर लगता है - वह अपने साथ ही निर्मम बन गया है । जिन्दगी उसके लिए बोझ बनती जा रही है । वह भार को उतारना चाहता है मगर वह समय के साथ दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है । प्रगति के

नाम पर वह जीवन को दुर्गति की ओर ले जा रहा है । वह विकास की भ्रान्ति में जी रहा है जो उसे विनाश की ओर धकेल रही है । इस सारी स्थिति को देखकर लगता है कि आदमी अपने आत्म-विश्वास से दूर चला गया है । हमारी बाह्य दृष्टि-चर्मचक्षु खुल गए है तो सवेरा होते ही उठ करके हम अपने-अपने कार्यो मे लग गये । शाम होते ही फिर सो गये । यह जागना और निद्राधीन हो जाना मानव की सही जाग्रति नही है, जब तक चेतन नहीं जागता, उस पर रहा हुआ अज्ञान का अंधकार नही हटता तब तक यो सोते-उठते रहने से कोई लाभ नहीं है ।

एक लकड़हारा प्रतिदिन जंगल से लकड़ियॉ काटकर शहर में लाता और उन्हें बेचकर जीवन-यापन करता था । एक दिन भी यदि वह अपने कार्य मे प्रमाद कर जाता तो उस दिन घर में चूल्हा नही जल पाता । उसकी दीन दशा देखकर एक संन्यासी ने कहा - भाई । तुम शहर के आस पास से ही लकड़ियॉ काट लाते हो यदि तुम कुछ आगे बढोगे तो तुमको उत्तम लकड़ियों की प्राप्ति होगी । लकडहारा संन्यासी की बात मानकर कुछ आगे बढ़ा उसे जंगल में शीशम, सागवान के वृक्ष दिखाई दिये । वह उन वृक्षों की सूखी एवं सीधी लकड़ियों का गट्ठर बनाकर ले आया । उसे प्रतिदिन जितनी आमदनी होती थी उससे दो गुनी आमदनी प्राप्त हुई । उसका मन बांसों उछलने लगा । संन्यासी की सीख उसके कानो में गूंज रही थी कि तुम आगे बढ़ो । आज वह कल से भी ज्यादा आगे बढा तो उसे चन्दन के वृक्ष दिखाई दिये । प्रसन्न मन से उसने चन्दन की लकड़ियों का गट्ठर बनाकर सिर पर धरा और शहर मे आया । चन्दन की सुगन्ध से सारा वातावरण सुवासित हो उठा । नगरजनों ने मुँहमांगा मूल्य देकर, चन्दन की लकड़ियॉ खरीद ली । लकड़हारे का जीवन ही बदल गया । सन्यासी के बताये सूत्र ने उसके जीवन को नया मोड दे दिया । 'उतिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत' गीता के इस संदेश को उसने साकार कर लिया ।

जो मानव-जीवन में कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा रखते है । उनका ध्येय सदैव आगे बढ़ने का रहता है । थोड़ी-सी सिद्धि एवं सफलता उनके पॉवों की गति को मंद नहीं करती । कहा भी गया है -

जिसने बढ़ना सीख लिया है वे रुकने को क्या जाने!
जिसने उठना सीख लिया, वे झुकने को क्या माने !!
जिसने सपना देखा है, मुक्ति-महल तक जाने का -
नहीं लेंगे विश्राम कभी भी, वे थकने को क्या जाने॥

जो थककर बैठ गये उनसे लक्ष्य दूर हो जाता है । आपकी-हमारी सबकी एक ही मंजिल है, मोक्ष की प्राप्ति । जब तक यह प्राप्त नहीं हो जाय तब तक जीवन पर्यन्त आगे ही आगे बढ़ना है । उपनिषदों में भी चरैवेति-चरैवेति कहकर निरन्तर चलते रहने का ही सन्देश दिया है। चलते रहने में ज्ञान की आवश्यकता होती है । चलने के नाम पर कोल्हू का बैल भी निरन्तर सुबह से शाम तक चलता है मगर यह चलना कोई चलना नही है । कोल्हू के बैल की ऑखो पर पट्टी बंधी होती है । वह सोचता है कि सुबह से शाम तक चलते-चलते वह बहुत दूर तक पहुँच गया होगा मगर पट्टी खुलने पर उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है कि वह दिन भर चलकर भी कहीं नहीं पहुँचा है - वहीं का वहीं है।

एक वकील साहब कहीं जा रहे थे । उन्होने देखा एक वृक्ष के नीचे कोल्हू चल रहा है । कोल्हू का मालिक वृक्ष की छाँव में लेटा हुआ आराम कर रहा है । वकील को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने आराम कर रहे व्यक्ति से कहा - भाई ! तुम इधर सो रहे हो उधर बैल कोल्हू चला रहा है । यदि वह भी आराम करने के लिए खड़ा हो जाये तो तुम्हें कैसे पता चलेगा । वह व्यक्ति बोला - मैने बैल के गले में घंटी बाँध रखी है । रुकने पर उसकी आवाज बन्द हो जायेगी, बस मैं जान जाऊंगा। वकील साहब बोले - मान लो बैल खड़ा होकर सिर हिलाने लगे तो भी घंटी की आवाज होती रहेगी फिर तुम्हें कैसे पता चलेगा ? वह बोला- श्रीमान् मेरा बैल तो बैल है वह कोई आपकी तरह वकील नहीं है । आप जल्दी से चले जाइये आपकी तरकीब यदि बैल ने सुन ली तो परेशानी खड़ी हो जायेगी । अभी जानवर आदमी की तरह चालाक नहीं हुआ है।

जहाँ चालाकी शुरु हुई, वहीं धोखा होने लगता है । अपने आपको धोखा देना अच्छी बात नहीं है । हमारी आत्मा ने जन्म-मरण की असंख्य लम्बी यात्राएं करते-करते इस भव को प्राप्त किया है । इन यात्रा के पड़ावों

मे उसने कैसे-कैसे कष्ट उठाये है । यह हमारा अन्तिम पड़ाव है । इसी भव से मनुष्य मुक्ति की यात्रा कर सकता है । इस बार भी चूक गये तो कोल्हू के बैल की तरह फिर चलना पडेगा । भौतिकता की इस चकाचौंध में मोक्ष-मार्ग की ओर बहुत कम व्यक्तियों का मन आकर्षित होता है लेकिन पतन के मार्ग की ओर तो भीड़ बढ़ती ही जा रही है ।

अत: हमको कुछ चिन्तन करना चाहिए कि हम आगे बढ़ रहे है या नहीं ? मुक्ति के लक्ष्य की ओर हमारे कदम उठ रहे हैं या हम एक ही स्थान पर खड़े खडे कदम ताल कर रहे हैं । चलते हुए भी अगर हम आगे नहीं बढ़ पाते हैं, तो समय और जीवन दोनों को बर्बाद करना है । श्रावकों को सम्बोधित करता हुआ यह गीत मानव से प्रश्न कर रहा है -

मोक्ष मार्ग में कदम बढ़ाये तुमने दो या चार,
रोज शाम को जीवन खाता खोलो, करो विचार,
श्रावक क्या तेरा आचार ?

कितना संग किया गुणियों का, कितना लाभ लिया मुनियों का,
या खेल तमाशा हँसी ठट्ठे में, मस्त रहा बेकार ।
श्रावक क्या तेरा आचार ?

मानव जीवन सफल बना ले, इस नर तन से लाभ उठाले,
लाख चौरासी योनि में यह, मिले न बारम्बार ।
श्रावक क्या तेरा आचार ?

जरा इस गीत की पंक्तियों पर विचार कीजिए ! दर्पण में चेहरा देखने से पहले अपने अन्तर में झांककर देखिये कि हमारा आचरण कैसा है ? हम इस जीवन को सुधारने के लिए क्या प्रयत्न कर रहे हैं । इस मानव देह को पाकर के यदि मुक्त होने का प्रयास नहीं किया तो युगों-युगों तक भटकना पडेगा । व्यक्ति सांसारिक कार्यो में इतना उलझ गया है कि वह स्वयं को भूल ही गया है । काल को समीप आया हुआ जानकर भी वह यह सोचता है कि अभी मुझे अमुक-अमुक कार्य करने हैं । यह काम पूरा हो जायेगा उसके बाद धर्माराधना करूं, सोचूंगा । ऐसा सोचते-सोचते इस जीवात्मा के अनन्त जन्म व्यतीत हो गये मगर आज तक
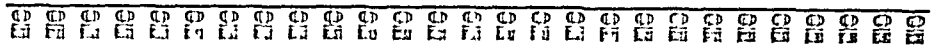
कोई भी काम पूरा नहीं हुआ है । जीवन पूरा हो गया मगर काम अधूरा ही रह गया है । सोचते-सोचते समय निकल गया मगर आत्मा के लिए वह कुछ नही कर पाया है । यदि जीवात्मा को आगे बढाना है तो सारा सांसारिक सोच त्यागकर अपने लिए सोचने की जरूरत है । इसलिए तो मै बार-बार आपसे कहती हूँ -

सोचते सोचते ही समय जा रहा है,
यह आदमी कुछ ना कर पा रहा है ।
स्वयं के लिए सोच पाया नहीं मन -
आत्मा को यूं ही बस भटका रहा है ॥

इस संसार मे आकर अपने आपको कब तक भटकाते रहोगे । अरे । हमको तो जिनदेव ने रास्ता बता दिया है बहुत सीधा और सरल मार्ग है, उसे छोड़कर किधर भटक रहे हो ? समय बहुत कम है । जो कुछ अच्छा करना है वह आज और अभी से करना प्रारम्भ कर दो । वृद्धावस्था में जब यह शरीर ही तुमसे नहीं संभाला जा सकेगा तब आत्मा को कैसे संभाल पाओगे । यदि विवेकपूर्वक वर्तमान को संवारोगे तो भविष्य स्वतः आनन्दमय बनता चला जायेगा । आज का दिन कल मिलने वाला नहीं है । मन में शुभ भावों की अभिवृद्धि करो । यदि जीवन में शुभ कर्म करते रहे तो यह जीवन तीर्थ बन जायेगा अन्यथा यह जीवन तमाशा बन कर रह जायेगा । बाहर-बाहर दौड़ना छोड़ दो अन्तर्मन में आगे बढ़ो। इधर-उधर भटकने से कुछ भी मिलने वाला नहीं है । कबीर जी ने भी कहा था -

मन मथुरा, तन द्वारका, काया काशी जाण ।
दसवाँ द्वारा देह रा, ता में ज्योति पिछाण ॥

उस दिव्य ज्योति के-परमात्म-स्वरूप के दर्शन निज आत्मा मे ही होंगे । आत्मा की ओर बढ़ेंगे तब ही परमात्मा के दर्शन हो पायेंगे । मैं आपसे यह नहीं कहती हूँ कि आप इस संसार को त्याग दो । कमल पानी का त्याग नहीं करता है । वह उसमें रहकर भी उससे ऊपर है । उन्नति की ओर जाने वालों की स्थिति कमल के समान ही होती है । धन, सम्पत्ति या वैभव प्राप्त करना कोई बुरा नहीं है मगर इनसे यदि तृष्णा
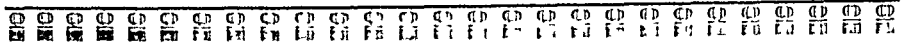
बढ़े और ये प्रगति में बाधक बने तो इनसे दूर रहने मे ही हित है। चक्रवर्ती के पास वैभव की कमी नहीं होती, वह जीवन में अनेक कार्य सम्पादित करता है । वह भी जब तक उनका त्याग नही करता आत्म वैभव उसे प्राप्त नहीं होता है । आत्मोत्थान के कार्य जब तक नही होगे, मानव अपने लक्ष्य से दूर ही रहेगा । वह बार-बार नरक के दुःख भोगेगा, तिर्यच योनि मे भटकता रहेगा । समय रहते हुए हमे ज्ञान नहीं हुआ तो यह जीवन निष्फल चला जायेगा । उत्तराध्ययन सूत्र मे भगवान ने फरमाया है -

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पंति बहुशो मूढा, संसारम्मि अणंतए ॥

अर्थात् जितने भी अज्ञानी या तत्त्व-बोधहीन पुरुष है वे सब दुःख के पात्र है । इस अनन्त संसार मे वे मूढ़ प्राणी बार-बार विनाश को प्राप्त होते रहते हैं । अनन्त ज्ञानियों ने मानव को बार-बार सचेत किया है । भवसागर से पार उतरने को धर्म की किश्ती व ज्ञान की पतवार प्रदान की है । हम मूढ़ता का त्याग कब करेगें ? मंजिल की ओर हमारे पॉव कब उठेंगे ? सत्पुरुषों का समागम करके सच्चे धर्म का मर्म कब जानेंगे? आंग्ल भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है -

A Man is known by the company he keeps.

इस बात को गांठ बाँध लो कि जो ज्योतिर्मय पथ के साधको की संगति मे रहेगा उसके अन्तर्चक्षु खुल जायेंगे । जीवन मे सांसारिकता के मोह से निकले बिना आगे नही बढा जा सकता । इस मोह की बात पर एक कहानी याद आ गई है -

एक धोबी के घर कुत्ता आ गया । धोबी ने उसे रोटी का टुकडा दिया । कुत्ता बडा प्रसन्न हुआ । कुछ समय पश्चात् धोबी की दोनों पत्नियॉ भी आ गई । खाना खाने के पश्चात् उन्होने भी कुत्ते को रोटी दी । कुत्ते का पेट भर गया । अब वह धोबी के घर पर ही पालतू कुत्ते की तरह टिक गया । धोबी ने कुत्ते का एक दिन नामकरण भी कर दिया। घर वाले उसे टोनी कहकर आवाज लगाते तो टोनी दौड़कर आवाज लगाने वाले के पास पहुँच कर दुम हिलाने लगता एक दिन दोनो स्त्रियों मे झगडा हो गया तो एक ने दूसरी को गाली देते हुए कहा - चुप रह टोनी

की बैर (पत्नी), दूसरी कहाँ चूकने वाली थी, वह भी बोल उठी - अरे! तू है टोनी की बैर तो ! कुत्ता एक दूसरे का मुँह ताकने लगा । इस झगडे के बाद दोनों महिलाओं ने कुत्ते को रोटी डालना ही बन्द कर दिया। कुत्ता भूख के मारे सूखने लगा मगर घर छोड़कर कहीं नहीं जाता । एक दिन गली का दूसरा कुत्ता मिल गया । उसने टोनी की दशा देखकर कहा- अरे यह क्या दशा हो गई है तुम्हारी ? आजकल क्या खाने को पूरा नहीं मिलता है ? कुत्ते ने कहा - जब से दोनों स्त्रियों में झगड़ा हुआ हैं मेरी रोटी बन्द हो गई है । गली का कुत्ता बोला - चल छोड़ इस घर को, मैं तुझे दूसरा घर बता देता हूँ, जहाॅ तेरा जीवन सुधर जायेगा। टोनी बोला- नहीं भाई ! मेरे दो दो पत्नियाॅ है इन्हें छोड़कर अन्यत्र कैसे जा सकता हूँ ? दूसरा कुत्ता टोनी की शक्ल देखता रह गया ।

कहानी व्यंग्य से भरी है मगर एक बहुत बड़े सत्य को उद्घाटित करती है । मोह के वशीभूत ही मानव तन-मन को नष्ट करता रहता है। उसे अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता है । किसको कितने समय तक इस संसार में रहना है, किसी को कोई पता नहीं है । यह आयु तो अंजलि में भरे जल के सदृश है, जो कितनी भी सावधानी से रखा जाय किन्तु वह टिक नहीं सकता है । कहा भी गया है -

अहोरात्राणि गच्छन्ति, सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयुंषि क्षपयत्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥

अर्थात् दिन और रात लगातार बीत रहे हैं और संसार के सभी प्राणियों की आयु तीव्र गति से क्षीण हो रही है । ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य की किरणों की गर्मी से सरोवर का जल शीध्रता पूर्वक सूख जाता है । यह शरीर क्षण भर में ही आत्मा के प्रयाण करने पर वैसे ही निर्जीव हो जाता है जैसे सूर्य की एक किरण के पृथ्वी पर आते ही ओस की बूंद सूख जाती है । इस बात पर विचार करके मानव को सजगता पूर्वक अपनी मंजिल को पाने हेतु अप्रमत्तता पूर्वक प्रयास करना चाहिए। जीवन में राग को त्यागकर वीतरागभाव की ओर आगे बढ़ना चाहिए ।

महापुरुषों का सत्संग तो जीवन में प्रमाद को हटाकर ज्ञान का आलोक पैदा करता है । प्रमादी व्यक्ति के हृदय में ऐसी जड़ता घर कर

जाती है । वह ज्ञान के अभाव मे यह नहीं समझ पाता कि कौनसी क्रिया उसे शुभ फल प्रदान करेगी । ज्ञान पाप्त करने मे किकर्त्तव्यविमूढ बनना ठीक नहीं है । एक दोहे मे कहा भी गया हैं -

उत्तम विद्या लीजिए, जदपि नीच पै होय ।
पर्‌यौ अपावन ठौर पै, कंचन तजे न कोय ॥

अपवित्र स्थान पर पडा हुआ स्वर्ण भी मनुष्य उठाकर रख लेता है । उसे उठाने मे वह प्रमाद नहीं करता तो फिर ज्ञान की प्राप्ति में प्रमाद क्यों ?

वन्धुओं ! प्रमाद तो एक तन्द्रा हैं और उसमे पडा हुआ मनुष्य न जागता हुआ सा लगता हैं और न सोता हुआ-सा । आजकल यह सुनने मे आता है कि बीमार व्यक्ति कभी कभी कोमा मे चला जाता है । कभी-कभी यह स्थिति महिनो-वर्षों तक वनी रह जाती हैं । इसे मूर्च्छा भी कहा जा सकता है - वेहोशी भी कह सकते हैं । प्रमादी मनुष्य सभी ...क कर्म करता हुआ भी अपने आपके प्रति वह कोमा ... हृदय में ज्ञान का दीप प्रज्वलित नहीं हुआ है । मोह-निद्रा मे खोया-खोया वह जीवन की सुनहली घड़ियो को खो रहा है । वह यह विचार ही नहीं कर पाता कि यह मानव पर्या... बडी कठिनता से मिली है । इसका पुनः प्राप्त होना दुर्लभ है । इस मानव-भव में ही धर्म का लाभ लेना होगा धर्माचरण करना होगा तथा जीवन मे पुण्य का संचय करना होगा । एक मुक्तक में कहा भी गया है -

कुछ करो वरना यह घड़ी निकल जायेगी,
समय बर्फ है बन पानी पिघल जायेगी ।
मुँह ताकते रह जाओगे धुवां देखकर -
जिन्दगी यहाँ लाश में बदल जायेगी ॥

समय रहते हुए राग-द्वेप से बाहर निकलना है, प्रमाद को त्यागकर शुभ कर्मो को गति देनी है । ज्ञान के आलोक से मन-मन्दिर को प्रकाशित करना है । हमारा शुद्ध आचरण ही हमें दुःखों से मुक्ति दिला सकता है जीवन उसी का धन्य है जो शिष्ट वा सुन्दर आचरण मे लगा है । आचरण के महत्त्व को कोई भी अस्वीकार नही कर सकता । आप सन्तो

के चरण छूते है, उनके सिर का स्पर्श नहीं करते, ऐसा क्यों ? महापुरुषो के चरण उनके आचरण के प्रतीक हैं । वे यथार्थ के प्रतीक हैं । जो चरण यथार्थ से जुडे होते हैं, वे संसार के लिए सदैव पूजनीय होते हैं। मनुष्य उच्च आचरण के कारण ही आगे वढ सकता है । ज्ञान है और आचरण नहीं है तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं है ।

एक व्यक्ति की उसके ज्ञान के कारण वडी प्रतिष्ठा थी । राजा एवं प्रजा उन्हें बड़ा सम्मान देती थी । उसे राजभवन मे कहीं भी आने जाने की स्वतंत्रता थी । एक दिन वह कोपागार में गया और चुपचाप एक स्वर्ण अशर्फी उसने अपनी जेब मं डाल ली । कोपाध्यक्ष यह देखकर चुप रह गया कि छोड़ो, भूल हो गई होगी । दूसरे दिन भी उसने इधर-उधर देखकर अशर्फी चुरा ली । तीसरे दिन फिर यही कार्य किया तो कोपाध्यक्ष ने राजा से शिकायत कर दी । उस विद्वान् की तलाशी ली गई तो तीनो मोहरें उसकी जेब मे मिल गई । राजा को बहुत क्रोध आया। उसने बुलाकर कहा - आप जैसे ज्ञानी से यह उम्मीद नही थी । आपको इस घृणित कार्य के लिए मृत्युदण्ड दिया जा सकता है । उस व्यक्ति ने कहा महाराज ! यह मैं जानता हूँ । मुझे आपकी सजा भी स्वीकार है। मै तो यह जानना चाहता था कि मेरा राजभवन में सम्मान ज्ञान के कारण है या आचरण के कारण है । आज मुझे इसका उत्तर मिल गया है । ज्ञान से बड़ा आचरण होता है ।

मानव का मूल्य शुद्धाचरण पर ही निर्भर है । चरित्रवान व्यक्ति ही जीवन में आगे बढ़कर सभी का सम्मान प्राप्त कर सकता है । चरित्र की महत्ता को बताते हुए कहा भी गया है - 'यदि आपका धन खो गया है तो आपने कुछ भी नहीं खोया है, यदि स्वास्थ्य खो दिया है तो आपने जीवन में कुछ खो दिया है, मगर आपने यदि चरित्र को खो दिया है तो जीवन मे सब कुछ खो दिया है ।' जीवन में प्रगति करने वाले को अपने आप पर दृष्टि रखना चाहिए । हर पल सजग होकर कार्य करना चाहिए । जीवन थोडा है, आत्मा के लिए यात्रा लम्बी है। समय रहते यह यात्रा शुरु नहीं हुई तो दिन का अवसान कब हो जायेगा कुछ पता नही है ।

मुक्ति की ओर जाना है तो धर्म की आराधना करनी होगी । धर्म में समस्त संतापों को शमन करने की क्षमता होती है । यह प्रेम, करुणा एवं शान्ति का प्रदाता है । अज्ञानतावश जो धर्म के नाम पर मतभेद खड़े करता है वह धर्म के पावन स्वरूप को विकृत बनाता है । संसार में सद्भाव एवं शान्ति के पथ पर अग्रसर होते हुए, अनेकान्तमय दृष्टि को अपनाते हुए, समन्वय के भाव को जगाते हुए हमको आगे बढ़ना है । इस अल्पकाल मे पूर्वकृत कर्मो की निर्जरा करनी है । कर्मो के जितने हल्के होने का प्रयास करेंगे उतने हम ऊपर उठते जायेंगे । जीवन मे यदि ऊपर उठना है तो धर्म का साथ करना पडेगा । कहा भी गया है –

चइज्ज देहं न हु धम्म सासणं ।

अर्थात् आवश्यकता पडने पर देह को भले ही छोड़ दिया जाय किन्तु अपने धर्म को मत छोड़ो । जो भव्य प्राणी इस बात को हृदयंगम कर लेते हैं वे ही जीवन को सफल बनाते हुए मुक्ति का मार्ग तय कर सकते है ।

विवेक का पथ : मुक्ति का रथ

धर्मप्रेमी सज्जनो ।

संस्कृत मे एक श्लोक है -

विवेकश्चापि वैराग्यं पट् सम्पत्तिर्मुमुक्षता ।
ज्ञानयोगस्य मुक्तौ तु चत्वारिसाधनानि वै ॥

अर्थात् विवेक, वैराग्य, पट्सम्पत्ति और मुमुक्षता ये चार साधन निश्चय ही ज्ञान-योगी के लिए मुक्ति के साधन है । इस श्लोक मे प्रथम स्थान विवेक को दिया गया है । विवेक का अर्थ है ज्ञान - हित और अहित निर्णय करने की बुद्धि । जो ज्ञानी होता है वही विवेकी होता है ।

एक राजा ने प्रसन्न होकर अपने सेवक को क्षत्रप नियुक्त कर दिया और कहा - तुम्हें उस क्षेत्र के शासन-संचालन का पूर्ण अधिकार है । तुम्हारे सामने अनेक प्रकार की समस्याए आयेगी उनका फैसला भी अब तुम्हें ही करना है । तुम किस आधार पर फैसला करोगे ? सेवक ने कहा - स्वामी । मै अपने सलाहकारों से उचित एव अनुचित का निर्णय करने को कहूँगा ।

राजा ने कहा यदि उन्होने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी तो तुम क्या करोगे ? वह बोला - तब मै इतिहास और धर्मग्रन्थों के आधार पर विचार करूँगा । यदि उनसे भी तुम्हें कोई आधार नहीं मिला तो तुम किस आधार पर कोई फैसला करोगे ? राजा बोला ।
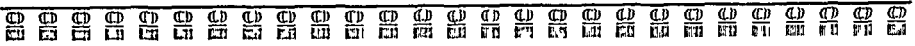
सेवक ने कहा – तब स्वामी । मै अपने विवेक के आधार पर निर्णय करूंगा ।

राजा ने कहा – तुम क्षत्रप बनने के योग्य हो । जो व्यक्ति विवेक के आधार पर अच्छे-बुरे का निर्णय करता है वही जीवन में सफलता प्राप्त करता है । व्यावहारिक जीवन मे जितनी विवेक की आवश्यकता है, उतनी ही धार्मिक क्षेत्र में भी विवेक की जरूरत है । जिसमें विवेक का अभाव है वह कोई भी कार्य उचित ढंग से नहीं कर सकता है ।

जीवन-जाग्रति के लिए विवेक से बढ़कर कोई सम्पदा नहीं है। जीवन के मार्ग में गर्त भी है तो कांटे भी बिखरे पडे है । पग-पग पर गतिरोध हेतु पापाण भी बिखरे हैं तो कीचड़ भी पड़ा है । जो विवेक का आधार ले लेता है वह कांटे, पाषाण एवं कीचड़ से बचकर सुरक्षित अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है । विवेक अन्तर्मन में उगने वाला वह सूर्य है जिसके निकलने पर कोई भी मनुष्य अन्धकार मे नहीं रहता है। योग्य गुरु सदैव अपने शिष्यों में विवेक का सूर्य उगाता है । ज्ञानियों ने विवेक को तीसरा नेत्र माना है । हमारी ऑखे तो सूर्य के उजाले में ही देख पाती है । रात्रि मे देखने के लिए उसे प्रकाश की जरूरत पड़ती है, मगर जिस मनुष्य का विवेक चक्षु खुल जाता है उसे फिर बाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं रहती । जो धर्म का आचरण करता है, सत्संग का सहारा लेता है, चिन्तन की वीथियों में घूमता है वही अपने विवेक को जाग्रत कर पाता है ।

जिसका विवेक जाग्रत नही है वह तो सड़क पर पड़े केले के छिलके पर पांव रखकर आगे बढ़ने की सोचेगा, मगर वही पर फिसल कर शरीर की ही क्षति करेगा । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक ही कहा है – 'तुम अपनी गलतियों को रोकने के लिए विवेक के दरवाजे बन्द कर दोगे तो सत्य भी बाहर ही रह जायेगा । सत्य से साक्षात्कार करने वाला विवेक का साथ कभी नही छोड़ता है । जहाँ विवेक का अभाव है वहॉ पग-पग पर कष्ट निश्चित रूप से खडे मिलते हैं । मनुष्य भूल पर भूल करता हुआ आखिर पतन के गर्त मे गिर ही पड़ता है ।

एक मोक्षाभिलापी साधक ने भगवान महावीर की शरण मे पहुँचकर उनसे निवेदन किया – प्रभु !
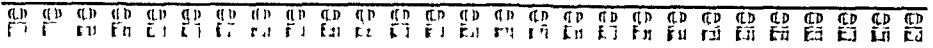
कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कहं आसे ? कह सए ?
कह भुंजंतो, भासंतो, पाव कम्मं न बंधई ?

अर्थात् साधक कैसे चले, कैसे खडा रहे, कैसे बैठे, कैसे सोये और किस प्रकार खाए और किस प्रकार बोले ताकि पाप कर्म का बन्ध न हो ।

साधक का जिज्ञासा भाव ही उसे धर्म पथ पर आगे बढने को प्रेरित करता है । वह जो बात स्वयं नहीं जानता उसके बारे मे ज्ञानियो से पूछता है । दूसरों से पूछकर कार्य करने वाला अनेक परेशानियों से बच जाता है । आपने बस स्टेण्ड या रेल्वे स्टेशन पर या जहॉ बड़े-बड़े समारोह - उत्सव होते है वहॉ भी पूछताछ कार्यालय देखे होगे । जो अनजान व्यक्ति सीधा वहॉ पहुॅच जाता है उसे पूछताछ करने पर सही राह जल्दी मिल जाती है । उस साधक ने भी परमज्ञानी भगवान महावीर से ही पूछा था । भगवान महावीर ने प्रत्युत्तर मे कहा -

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जय मासे, जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधई ॥

अर्थात् साधक को यतनापूर्वक चलना चाहिए, यतनापूर्वक ही उठना, बैठना व सोना चाहिए । समस्त क्रियाएं यतनापूर्वक ही हो । ऐसा करने पर वह पाप कर्मो से लिप्त नहीं होता है ।

यतना शब्द जैन धर्म का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है सावधानी, उपयोग-युक्तता, विवेक, जागृति अथवा अप्रमाद । सभी प्रकार के पाप कर्मो का मूल व्यक्ति की उपयोग-शून्यता है । जीवन में असावधानी, अविवेक, अजागृति से कर्मबन्ध होते हैं । क्योकि अविवेक से की गई क्रियाओं से जीवों की हिंसा होती है, हिंसा ही नहीं बल्कि मृषावाद, अदत्तादान आदि पापकर्म भी अविवेक के कारण ही होते है । जिनसे बडा कटु परिणाम निकलता है । बोधि उसके लिए दुर्लभ हो जाती है । बोधि दुर्लभ हो जाने पर चरित्र भी सम्यक् नही हो सकता है फिर मुक्ति की कल्पना तो बहुत दूर की बात होती है । इसीलिए अनन्त ज्ञानी प्रभु महावीर ने ज्ञान प्राप्ति से पूर्व साधक के लिए यह आवश्यक माना है कि वह विवेक पूर्वक जानने योग्य को जाने और करने योग्य को करे । विवेक और अविवेक

की निर्णायक क्षमता सन्तों की सत्संगति से ही प्राप्त हो पाती है । सज्जनो का साथ सदैव विवेक को बढाने मे सक्षम होता है । सन्त कवि तुलसी ने रामचरित मानस मे सबसे पहले विवेक की बात कहते हुए लिखा है-

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
रामकृपा बिन सुलभ न सोई ॥

अपने से अधिक ज्ञानवान का साथ एवं उनका सम्पर्क विवेक की जागृति करता है । किसी भी भव्य-भवन का निर्माण करने के लिए उसकी नींव को मजबूत बनाया जाता है । नीव यदि मजबूत है, उसका धरातल ठोस है तो भवन स्वत: ही मजबूत बनता जायेगा । हमें अपने जीवन का स्वर्ण-महल बनाना है धर्म को इस जीवन मे सजाना है, तो विवेक रूपी नीव को ठोस बनाना होगा । साधारण जीवन मे भी विवेक का महत्त्वपूर्ण स्थान है । विवेक जाग्रत होगा तो क्रिया-व्यवहार एवं आचरण सम्यक् होगा । कहा भी गया है -

विवेक दृष्टया चरतां जनानां,
श्रियो न किंचित् विपदो न किंचित् ॥

अर्थात् विवेक पूर्ण आचरण करने वाले के लिए न कोई सम्पत्ति है न कोई आपत्ति है । विवेक पूर्वक जीवन जीने वाले दोनों ही अवस्थाओं मे तटस्थ भावना रखते हैं । क्योंकि 'अविवेक: परमापदां पदम्' अर्थात् व्यावहारिक जीवन मे भी यदि विवेकहीनता है तो आपत्तियॉ बिना आमन्त्रित किये ही आ जाती है । विवेक से अभिप्राय यह है कि देश, काल, परिस्थितियो के अनुसार सोच समझपूर्वक ऐसा निर्णय लेना, जिससे समस्याएॅ बिना किसी कठिनाई के सुलझ जाये । विवेकशील निर्णय जीवन को सकारात्मक दिशा प्रदान करते हैं । विवेक के निर्णयानुसार जब कोई कदम उठाया जाये तो मन में किसी प्रकार की ग्रन्थि नही बन पाती है ।

जीवन मे भूल होना स्वाभाविक है मगर उस भूल को दोहराना सबसे बड़ी मूर्खता है । पशु की अपेक्षा मनुष्य की श्रेष्ठता का कारण उसका विवेक ही है । विवेक उसकी तीसरी ऑख है जो हर समय खुली रहती है । जिस पर प्रभु की कृपा होती है, गुरुजनों की दया होती है, जो धर्म के प्रति लगाव रखते हैं - उन्ही का अन्तर्मन जाग्रत रहता है।
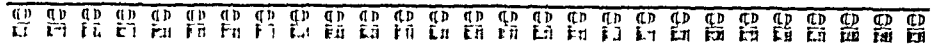
यह अन्तर्मन की जागृति जो आलोक फैलाती है वह मानव का विवेक ही होता है । बाह्य अन्धकार मे भी वह सदैव सजग होकर धर्म के मार्ग पर बढता रहता है । जो मनुष्य धर्म-मार्ग का अनुसरण नहीं करता, मनुष्य होकर भी मनुष्यता से दूर है वह पशु से भी गया बीता होता है । अपने जीवन को धर्मानुरूप ढालने वाला ही जीवन को संवार पाने मे सक्षम होता है । जीवन मे क्या अच्छा है और क्या बुरा है इसका निर्णय वह विवेक के द्वारा ही कर पाता है । विवेक का पहला काम है - मिथ्यात्व को पहचानना और दूसरा काम है सत्य को जानना । यदि विवेक का अभाव है तो धर्मशास्त्र भी क्या करेंगे ? विना विवेक के महापुरुषों के उपदेशो का क्या महत्त्व है ? विवेक के समान अलिखित शास्त्र कोई भी नहीं हो सकता । आगम, वेद, पिटक आदि सभी शास्त्रों की भाषाओं में निवद्ध है उन भाषाओ का ज्ञान पाना आवश्यक है पर विवेक मनुष्य के स्वानुभव पर आधारित होता है । उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा है कि - 'पण्णा समिक्खए धम्मं' अर्थात् तू अपने जीवन के लिए अपनी प्रज्ञा से धर्म का प्रकाश ले । यह अपना प्रकाश क्या है ? यह मनुष्य का अपना विवेक ही है। इसी से वह अच्छे बुरे का, पाप-पुण्य का निर्णय स्वयं कर सकता है । जो दूसरों की बुद्धि के सहारे आगे बढ़ने का विचार करता है, यह तो बौद्धिक परावलम्बन है ।

एक युवक धर्म-सभा मे गया । दो घण्टे प्रवचन सुनकर घर पहुँचा और चारपाई पर आकर सो गया । पिता ने पूछा - बेटे ! क्या बात है? तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है ? पुत्र ने कहा - पिताजी ! मैं आज धर्म-सभा मे गया था । वहाँ पर महाराज श्री ने कहा कि शान्ति का जीवन स्वीकार करना चाहिए । मुझ पर उनकी बात का प्रभाव पड़ा है अतः मैं शान्त होकर पड़ा हूँ । पिता ने कहा - बेटे ! तुमने उपदेश को सिर्फ सुना ही है उसको समझा नही है । तुम्हें अपने विवेक से भी काम लेना चाहिए कि शान्ति का मार्ग क्या है ? सोते रहने से शान्ति नही मिलती। शान्ति तो धर्म के अनुसार सत्याचरण से प्राप्त होती है । तुम्हारा घर आकर सो जाना अविवेक को बढ़ाना है । जो व्यक्ति बिना सोचे समझे निर्णय ले लेता है वह स्वयं के लिए ही नही, दूसरों के लिए भी समस्या पैदा कर देता है ।

संसार के प्रति आसक्ति के रहते हुए कोई दिव्य शक्ति को नही पा सकता है । जब तक किसी में आत्मज्ञान नहीं होता है, वह विषयों के प्रति आसक्त बना रहता है। पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने, या आगमों को रटने से कोई ज्ञानी नहीं बन जाता । ऐसा मनुष्य तो दंभी होकर अपनी शक्ति का भी नाश कर सकता है। जिसमे विवेक का अभाव है वह तो उस बन्दर के समान है जिसके हाथ में तलवार थमा दी गई हो ।उस अबोध बालक की भाति है जो सूखी घास पर बैठकर दिया सलाई जलाकर खेल रहा हो । विवेक के साथ-साथ व्यक्ति मे समता एवं योग्यता भी होनी चाहिए। ऐसा नही होने पर उससे बहुत बड़ी हानि हो सकती है।

एक राजा ने बन्दर पाल लिया । राजा बन्दर को हमेशा अपने साथ ही रखता । बन्दर को शिक्षित बना दिया गया । वह सदैव राजा की सेवा में लगा रहता । जब राजा सोता तो वह उस पर हवा करने के लिए पंखा झलता रहता। गर्मी की ऋतु थी राजा सोया हुआ था, बन्दर उसके पास बैठा पंखे से हवा कर रहा था । एक मक्खी बार-बार राजा के ऊपर आ बैठती । बन्दर के पंखे का उस पर कोई असर नही हो रहा था । राजा ने सोते समय अपनी तलवार पास मे ही रख रखी थी। मक्खी से परेशान बन्दर ने म्यान में से तलवार निकाल ली और सोचा कि अब यह मक्खी मेरे स्वामी पर बैठी तो मै इसका काम ही तमाम कर दूंगा। मक्खी उड़ती हुई फिर राजा पर बैठ गई । बन्दर ने मक्खी के बैठते ही तलवार का तीव्र प्रहार किया ! मक्खी तो उड़ गई मगर राजा की गर्दन कटकर धड़ से अलग हो गई ।

यह स्थिति बनी अविवेक के कारण ! जानवरों में मानव जितना विवेक नही हो पाता है । इसी के कारण राजा को अपने प्राण गंवाने पड़े । अविवेकी का साथ भी अमंगल उपस्थित करता है । व्यावहारिक जीवन मे दृष्टि पसारे तो हम पायेंगे कि चाकू का प्रयोग गृहिणी सब्जी काटने में करती है । डॉक्टर भी मरीज की शल्य-क्रिया में चाकू का प्रयोग करता है । डॉक्टर से कहा जाये कि तुम सब्जी काटो, शल्य क्रिया का काम गृहिणी कर देगी । चाकू ही तो चलाना है । यदि ऐसा किया जाये तो अनर्थ हो जायेगा । विवेक के अभाव मे किया कोई भी काम हर्ष को विषाद मे बदल देता है ।
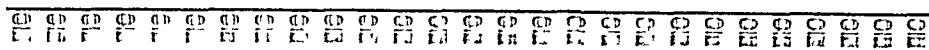
मानव जीवन मे हर्ष, उल्लास का आगमन हो, हर क्षण मन में आह्लाद का नाद होता रहे इस हेतु अध्यात्म के पथ को जानना आवश्यक है । अध्यात्म के भावो की जागृति आसक्ति को कम करने मे सहायक है । विवेकपूर्वक धर्म की आराधना से ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है । धर्म साधना से ही मन मे निर्मलता का संचार होता है । नीतिकारो ने विवेक को असाधारण नेत्र की सज्ञा दी है - 'एको हि चतुरमलः सहजो विवेकः' अर्थात् निर्मल एवं स्वाभाविक विवेक ही एक मात्र असाधारण नेत्र है । इसके द्वारा हमारी दृष्टि प्रत्येक प्राणी के प्रति आत्मीयता एवं सहिष्णुता से परिपूर्ण हो जाती है । अपने पराये का भेद समाप्त हो जाता है । प्रकृति का कण-कण उसके अन्तर्मन को प्रफुल्ल वनाने लगते हैं । जो सबको समदृष्टि से देखता है उसी का मन गा उठता है -

सूरज मुझे नहलाता है,
चाँद रोशनी पहनाता है,
क्यों घर की याद दिलाते हो,
जग सारा रैन बसेरा है ।
यह न तेरा न मेरा है ॥

इस जग मे मनुष्य का उसका विवेक ही है जो उसके वास्तविक स्वरूप से साक्षात्कार करवाता है । विवेकहीन मनुष्य अपने आपको भूल जाता है कि वह कौन है और क्या कर रहा है । मनुष्य होते हुए भी पशुता उस पर हावी हो जाती है । इंसान होते हुए वह शैतान का रूप बन जाता है । यदि विवेक का अलंकार उसने धारण कर रखा है तो वह धर्म के पथ पर बढ़ता हुआ इसान से भगवान बनने की सामर्थ्य पैदा कर लेता है । प्रवचन सार में भी लिखा है -

चरदि जदं जदि णिच्चं,
कमलं व जले णिरुवलेवो ।

अर्थात् यदि साधक प्रत्येक कार्य विवेक से करता है, तो वह जल में कमल की भांति जगत मे निर्लेप रहता है । जो ससार से निर्लेप हो गया उस पर पाप क्यों चढ़ेंगे ? स्वयं प्रभु फरमाते है कि विवेक रखने वाले मानव के जीवन में चार प्रकार की विशेषताओं का स्वतः प्रादुर्भाव हो जाता है । वह छः काया के जीवों को आत्मवत् समझने लगता है । सभी जीवों को आत्मवत् मानने पर उसकी दृष्टि सम्यक् हो जाती है । ऐसी दृष्टि विकसित हो जाने

पर वह पिहितास्त्रव हो जाता हैं । साथ ही साथ वह दान्त हो जाता है, जितेन्द्रिय बन जाता है । जो साधक जितेन्द्रिय बनकर एव परिवार का त्याग कर सयम स्वीकार लेता है, उसके लिए सारा ससार ही उसका परिवार बन जाता है । जो विवेक से हीन है उसे धर्म की प्राप्ति नही हो सकती साथ ही सम्यक्त्व पर भी वह दृढ़ नही रह पाता। आज लाखो लोग उपदेशों का श्रवण करते हुए भी जीवन में परिवर्तन नही ला पाते है इसके पीछे उनकी विवेकहीनता ही है। इसीलिए तो कवि ने कहा है -

समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक ।
समझा सोई जानिए, जाके हृदय विवेक ॥

वस्तुतः जिसके हृदय में विवेक है वही वस्तु तत्त्व को समझ सकता है । जीवन में जो कुछ पढा, सुना या सीखा है उसे क्रिया मे ढाल कर जीवन को समुन्नत बना सकता है । वह स्वयं तो आनन्द सागर में डुबकियाँ लगाता है मगर दूसरों को भी उसी आनन्द में निमग्न करने की चेष्टा करता है । जो विवेकहीन होते है वे तो जीवन में दुःखी रहते ही है, मगर दूसरो को भी दुःखी बनाने मे लगे रहते है ।

संखिया का नाम आपने सुना होगा । वह बहुत तीव्र विष होता है । भूल से उसका एक कण भी मुख में चला जाये तो प्राण निकल जाते है । उस संखिये को विवेकी वैद्य शोधन कर दवा के रूप में उपयोग कर मृत होते जीवन में प्राणों का संचार कर देते है । अविवेकी धर्म को अपने लिए संखिया समझता है, मगर यही धर्म उसके जीवन मे उतर जाये, कोई उत्तम गुरु उसे प्राप्त हो जाये तो उसको नया जीवन प्रदान कर सकता है ।

आज संसार मे विवेकवान लोगों की कमी आती जा रही है । उसी के कारण अशान्ति का बोलबाला है । पाप, अधर्म, अराजकता, हिंसा में वृद्धि का मूल कारण विवेक की कमी ही है । पतन के कारण ही मनुष्य मनुष्यता से दूर हो रहा है । भर्तृहरि ने लिखा है -

विवेक भ्रष्टानाम् भवति विनिपातः शतमुखः ।

अर्थात् विवेक-भ्रष्ट व्यक्तियो के लिए पतन के सैकडों द्वार खुल जाते है । जहां विवेक नही है वहाँ अनिष्ट की आशंकाए बढ़ जाती है। विवेक को मनुष्य जीवन की दसवी निधि कहा गया है । यह निधि जिसके पास है, वह वैषयिक सुख के अल्पतम साधन होने पर भी सुखी रहते
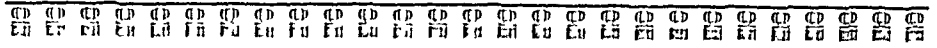
है । वे अपना जीवन अभावो मे भी विवेक से सुखपूर्वक व्यतीत कर सकते हैं । जिसके हृदय में विवेक का दीपक है, वह देवमन्दिर के तुल्य है । विवेक को जिसने अपना लिया वह जीवन में आगे बढ जाता है। खलिल जिब्रान के जीवन का एक मार्मिक प्रसंग याद आ रहा है -

खलिल जिब्रान घर त्याग कर जव जाने लगे तो उन्हे आभास हुआ कि घर उनको पुकार कर कह रहा है - तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? मुझमे तुम्हारा अतीत समाया हुआ है, तुम्हारे शैशव की असंख्य क्रीड़ाये मुझसे जुडी हुई है । वे कहते हैं कि मै घर की पुकार सुनकर ठहरा तो मार्ग ने पुकारा - पथिक ! आओ मेरा अनुसरण करो, मै तुम्हारा भविष्य हूँ । मेरा अनुसरण करने से तुम्हें नए-नए अनुभव और नया-नया ज्ञान प्राप्त होगा, मै तुम्हे ऊँचे से ऊँचे स्थान पर पहुँचा दूंगा ।

जीवन मे अविवेक पीछे की ओर मोड़ता है जबकि विवेक आगे बढ़ाता है । विवेक का उपयोग इसी जीवन के लिए है । एक तरफ घर की आसक्ति, परिजनो का मोह है जो हमारी प्रगति को रोकते हैं । ऐसे अवसर पर मनुष्य का विवेक ही उसे भले-बुरे का ज्ञान कराता है ।

दार्शनिक सुकरात अपने शिष्यों के साथ बैठे थे तभी एक ज्योतिषी ने आकर कहा - आपके नथुनो की रचना यह बताती है कि आप क्रोधी है, सिर व मस्तक बताता है कि आप लालची है ! ठुड्डी यह बताती है कि आप सनकी है, दांतों की रचना यह बताती है कि आप व्यवस्था के प्रति विद्रोह को तत्पर रहते हैं । यह सुनकर सुकरात के शिष्यों को बड़ा बुरा लगा पर सुकरात ने ज्योतिषी को पुरस्कार देकर विदा किया । शिष्यों ने पूछा - यह क्यों ? सुकरात ने कहा - ये दुर्गुण मुझमे है किन्तु ज्योतिषी ने विवेक वाली बात नहीं बताई जो कि मुझमे है । उसी विवेक से मैं दुर्गुणों पर नियन्त्रण किये रहता हूँ ।

सचमुच विवेक के जाग्रत होने पर ही सारे दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं । अपने जीवन में इसे पैदा कीजिए । आत्मकल्याण पथ के पथिक बनकर सम्यक् साधना की ओर अग्रसर होने का प्रयास कीजिए । इसी से आपका जीवन श्रेयस्कर बनेगा । आपका यह जीवन भी कल्याणमय होगा और इससे संसार का भी कल्याण होगा ।

* * *
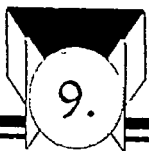
सत्य का संसार : जीवन दे संवार

धर्मप्रेमी आत्मबन्धुओ ।

आचारांग सूत्र में कहा है कि 'पुरिसा । सच्चमेव समभिजाणाहि' अर्थात् हे पुरुष । तू सत्य को पहचान । यह सत्य एक ऐसा शब्द है जिसमें बहुत गहराई छिपी हुई है । जो मनुष्य अध्यात्म की ओर कदम बढा रहा है वह सत्य की ही तलाश में बढ रहा है । बडे-बड़े वैज्ञानिक अनुसन्धानों में अपनी ऑखे गडाये हुए सत्य की ही खोज कर रहे है। मुझसे यदि कोई यह प्रश्न करे कि महाराज श्री जी । सत्य क्या है ? तो मेरा यही उत्तर होगा कि भाई । अपने मूल स्वभाव को जान लेना ही सत्य है । सत्य कोई वस्तु तो है नही जो दी या ली जा सके, यह तो जीवन की अनुभूति है - जीवन का सुमधुर सगीत है ।

आज का मनुष्य सत्य से दूर जा रहा है । इसी कारण वह दु:खो के महातिमिर मे भटकने लगा है । गर्म दूध मे नीबू का रस डालें और वह फटे नही, यह कैसे हो सकता है । मानव सत्य का परित्याग करके असत्य का आचरण करे और फिर दु:खी न हो, ऐसा कभी नही हो सकता । आज के युग में संसार की बाहरी चकाचौध ने मनुष्य के भीतर ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न कर दी है । वह सकल्प-विकल्प के चौराहे पर खडा होकर सोच रहा है कि किधर जाऊँ । जो शाश्वत सुखो की ओर जाना चाहता है, चिर-सुख की जिसे तलाश है, वह सत्य की ओर ही बढेगा लेकिन जो क्षणिक सुखों की, मात्र दैहिक सुखों की तलाश मे है वह सत्य से भटक सकता है ।
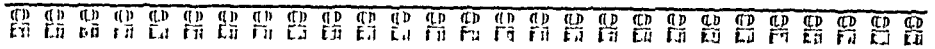
हमे इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि आकाश मे घिरी घटाओं के मध्य चमकने वाली बिजली की टेढ़ी मेढ़ी चमक से एक क्षण के लिए उजाला हो सकता है, मगर वह बिजली आपके लिए पथ प्रदर्शक नहीं हो सकती । अन्धकार मे सही रोशनी तो दीपक से ही प्राप्त की जा सकती है । संसार का बाह्य वैभव क्षणिका के समान है तो आत्मिक वैभव दीप स्तभ है । जिसका आलोक न सिर्फ यहाँ इस लोक में ही मिलता है बल्कि परलोक में भी प्राप्त होता है ।

सत्य स्वयं में पूर्ण शक्तिमान है । 'त सच्चं खु भगवं' के आधार पर तो सत्य ही भगवान है । सभी के मन मे यह भावना होती है कि उसे भगवान के दर्शन हो । भगवान उस पर प्रसन्न होकर वरदान प्रदान करें ताकि उसका जीवन वैभव से परिपूर्ण बन जाये । जो अपने आत्म-स्वरूप को जानने मे लगा है वह सत्य के दर्शन की ही तलाश में है। आज सत्य को मात्र वाणी तक ही सीमित कर दिया है, यह अन्तिम पड़ाव नही है । सत्य और भी आगे तक जाता है । इस सत्य को जीवन के प्रत्येक क्षण में, आचरण में उतारने की आवश्यकता है । महात्मा गांधी ने अपने जीवन के प्रत्येक कार्य, चाहे वह आजादी का आन्दोलन हो या हरिजनों की सेवा, कोढ़ियों की सुश्रुषा हो या नमक आन्दोलन उन्होने सभी कार्य सत्य के प्रयोग मानकर ही किये । सत्याग्रह का उन्होने अहिंसक हथियार की भांति उपयोग करके सफलता को प्राप्त किया । सत्य की प्रतिष्ठा प्रत्येक युग में रही है और आगे भी रहेगी । यह ऐसा आन्तरिक वैभव है जिसके समक्ष विश्व के सारे वैभव फीके पड़ जाते हैं । जिसने सत्य को अपने जीवन का एक मन्त्र बना लिया वह सत्य के विपरीत अर्थात् असत्य का आचरण नहीं कर सकता । सत्य मानव मन का उत्कृष्ट शृंगार है । आचारांग सूत्र में प्रभु महावीर कहते हैं -

सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाए ।

अर्थात् सत्य-निष्ठ साधक सब ओर दुःखों से घिरा रहकर भी घबराता नहीं है और न विचलित होता है क्योंकि वह जानता है कि जहाँ सत्य है वहीं पर परमात्मा का निवास है । जो व्यक्ति, मन, वचन एवं कर्म से सत्य का आचरण करता है वह परमात्मा के समीप स्वयं को खड़ा पाता है ।
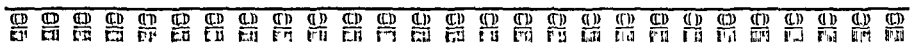
संसार के सभी धर्मो मे सत्य को महत्त्वपूर्ण सम्मान दिया गया है । सनातन धर्म में भी सत्य को स्वीकार करते हुए कहा है :-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं ।
प्रियमपि नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ॥

इस श्लोक में सत्य को उद्घाटित करते हुए नीतिकार ने कहा है कि सदैव सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य मत बोलो एवं प्रिय लगने वाले असत्य को कभी मत बोलो यही सनातन धर्म है । इस जगत में अनेक लोग हाँ में हॉ करने वाले होते है । उनकी आँखों पर स्वार्थ का चश्मा चढ़ा होता है । वे सत्य को न तो देख पाते हैं और न उस का आचरण करने का प्रयास करते है । वे अपने लाभ के लिए दूसरे का भला सोच ही नही पाते हैं । चापलूसी पसन्द लोगों को तो सदैव असत्य ही प्रिय लगता है । आपातकाल को आप लोग भूले नहीं होंगे। जब देश में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई थी । तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाधी ने सम्पूर्ण राष्ट्र की सत्ता को हस्तगत कर लिया था । विरोधियों को जेलों मे डाल दिया गया । चारों ओर भय का वातावरण छा गया वह काल अनेक कार्यो के लिए अच्छा भी था तो अनेक कार्यो के लिए भारतीय लोकतन्त्र के लिए बदनुमा दाग भी सिद्ध हुआ । कुछ चापलूसों ने इंदिरा जी को सत्य से परिचित ही नहीं होने दिया । जिधर जाओ उधर जयकारे गूंजते । फूलमालाओं से स्वागत होता देश में शान्ति छा गई। देश मे शान्ति समझकर के लोकतन्त्र बहाल करके चुनाव कराये गये और उन चुनावों मे इंदिरा जी को वास्तविकता का ज्ञान हुआ कि उन्हें सत्य से कितना दूर रखा गया था ।

बन्धुओ ! मधुर शब्दों में बोला गया झूठ वैसा ही हानिकारक होता है जैसे गुड़ के अन्दर विष मिलाकर किसी को दे दिया जाय । इसलिए प्रत्येक मानव को अपने मन पर संयम रखते हुए सदैव सत्य का ही अनुसरण करना चाहिए सत्य की आराधना करने वाला व्यक्ति संसार की किसी भी शक्ति से भयभीत नहीं होता है । वह अनादि काल से चल रही अपनी विराट यात्रा को मुक्ति की ओर मोड लेता है । मुमुक्षु को चाहिए कि वह अपनी जिह्वा से सदैव सत्य संभापण ही करे । सत्यालंकार
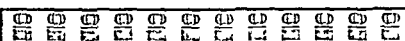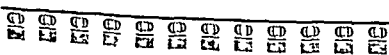
को जिसने अपनी जिह्वा से उतार दिया वह शिखर से गिरकर गर्त मे आ जाता है । सत्य का अनुसरण करने वालों के लिए कहा गया है -

सच्चेण देवदावो णवंति पुरिसस्स ठंति व वसम्मि ।
सच्चेण य गहगहिदं मोएइ करेंति रक्खं च ॥

अर्थात् सत्य के प्रभाव से देवता भी मनुष्य को वन्दन करते हैं और उसके वश मे होते हैं । वे उसका रक्षण करते हैं और पिशाच उससे दूर ही रहते है । सत्य में ही श्रेष्ठ गुण समाहित रहते हैं । जो सत्य को धारण किए रहता है वह दिव्य गुणों से युक्त वनकर पाप कर्म का नाश कर देता है । जो आदर्श के पथ पर चलता है वह सत्य के पथ का ही पथिक होता है । वह आत्म-स्वरूप को जानकर भीतर ही भीतर लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है । सत्य की उपासना धर्म की उपासना ही है । जब तक हम स्वयं को नही जान जाते तब तक सत्य को जानना संभव नही है ।

स्वामी विवेकानन्द जिनका पूर्व नाम नरेन्द्र था, वह जब सर्वप्रथम स्वामी रामकृष्ण से मिले तब उन्होंने पूछा - क्या आपने भगवान को देखा है ? रामकृष्ण ने कहा - हॉ जैसे तुम्हे देखा है वैसे ही भगवान को भी अपने आप में देखा है । अपने आप को देख लेना कोई सामान्य बात नहीं है । एक बार जो भीतर उतर गया जिसने भीतर की यात्रा शुरु कर दी वह फिर बाहर की ओर नहीं भटक सकता । जिसमें क्रान्ति के बीज का वपन हो जाता है वह मनुग्य ही भीतर की यात्रा के लिए तैयार हो सकता है । वह आत्म साक्षात्कार करके परमात्म स्वरूप के दर्शन कर सत्य को जान सकता है ।

स्वामी मुक्तानन्द जब अमेरिका की यात्रा पर थे तब एक महिला ने उनसे प्रश्न किया - स्वामीजी ! क्या वास्तव में ईश्वर है और यदि है तो उसका स्वरूप क्या है ? चूकि मै तो नास्तिक हूँ, इसलिए उस परमात्मा के बारे में कभी सोच ही नही पाती हूँ ।

स्वामीजी ने कहा - बहिन ! व्यर्थ ही परेशान क्यो होती हो ? तुम अपने आपसे ही प्रश्न करो और पूछो कि मै कौन हूँ ? जिस दिन इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा उसी दिन तुमको परमात्मा का दर्शन हो जायेगा - उस शाश्वत सत्य का दर्शन हो जायेगा ।
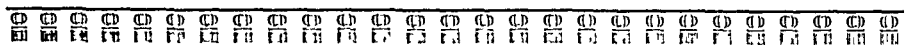
स्वार्थ के वशीभूत होकर ही मनुष्य सत्य का त्याग कर असत्य को स्वीकार कर लेता है, असत्य बोलने को उद्यत होता है । बढती भौतिक लालसाओं ने मानव को असत्य के आंगन में खड़ा कर दिया है। आज राजनीति तो असत्य का महा घट बन चुकी है । नेतागण कदम-कदम पर असत्य का आचरण करते है । कभी भी पूरे न होने वाले आश्वासन देकर जनता को भ्रमित कर उनका मत अपने पक्ष में लेने हेतु सब्ज बाग दिखाते है । क्या यह उचित है ? पचास वर्ष पूर्व के नेताओं की छवि और आज के नेताओं की छवि में भेद किसी से छुपा हुआ नहीं है । किसी व्यंग्यकार ने कहा भी है -

जनता की हर मांग पर
हाँ कहना सही है ।
क्योंकि वे जानते हैं कि
जो ना कहे
वह नेता ही नहीं है ।

क्यो भाई । ऐसा कौनसा पहाड़ टूट रहा है कि जिसके लिए सत्य से दूर जा रहे हो । क्यों स्वार्थ की हाट पर अपनी बोली लगाकर जीवन को नरक का रास्ता बता रहे हों । कई भाइयो से बात करती हूॅ तो कुछ कहते हैं महाराजश्री । आजकल झूठ बोले बिना काम ही नही चलता । मैं तो कहती हूॅ भाई ! आप यहॉ पर भी झूठ का ही सहारा ले रहे हैं । संसार का सारा कार्य तो सत्य के आधार पर ही चल रहा है । कुछ लोगो के मति-भ्रम के कारण ही आज यह स्थिति बनी है कि लोग सत्य के प्रति शिथिल होने लगे है । लेकिन इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि जिस क्षण सत्य जाग्रत होता है उसी क्षण असत्य के पांव लडखड़ाने लगते है । वर्तमान युग का सुविधाभोगी मानव अनन्त शाश्वत सुखो को भूलकर क्षणिक सुख हेतु असत्य का साथ कर लेता है । छल-छद्म के सहारे ऊपर चढने वालों को गिरने में समय नही लगता है । जो असत्य का आचरण करते हैं, वे सत्य को छुपाने की चेष्टा करते है ।

एक दिन छलनी ने सुई से कहा - अरे सुई । तेरे मुख पर तो छेद है । इस छेद के कारण तेरा स्वरूप ही बिगड़ गया है । सुई ने कहा - बहिन । मुझे देखने से पहले एक दृष्टि अपनी ओर भी डाल

लेती तो ठीक रहता । मेरा एक छेद तो तुमको दिखाई दे रहा है मगर तुझमें जो अनेक छेद है उन पर तुम्हारी दृष्टि नहीं टिकती है । वास्तव में स्वप्रशसा व परनिन्दा असत्य के ही रूप है । जीवन में सत्य को जानना एव उसे समझना मानव के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । मानव को चाहिए कि वह स्वयं पर दृष्टि रखे । वर्तमान दौर में विश्व के समक्ष भारतीयो की साख में आई कमी का मुख्य कारण इस धर्मगुरु राष्ट्र मे सत्य के प्रति घटती आस्था ही है । अरे ! सत्य तो धर्म का रूप है । सत्य की राह पर चलने वाले विपत्तियो से घबराकर सत्य का परित्याग नहीं करते है । वे जानते है कि सत्य का मार्ग कटीला अवश्य होता है मगर वह सुमनो के सुरम्य उद्यान में जाकर खत्म होता है ।

जो सत्य के अन्वेपण में लगा है वह आचरण एवं वाणी द्वारा कभी भी मिथ्यात्व का सहारा नहीं लेता । गुजरात का एक व्यापारी दक्षिणी अफ्रीका में रहकर अपना कारोबार करता था । दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने उस व्यापारी पर कर चोरी का मुकदमा लगा दिया । उस व्यापारी ने गांधीजी को अपना वकील बनाया । गाधीजी ने कहा - मै तुम्हें जेल की सजा से बचा लूगा, तुमने जो जो कर चोरी की है उसकी सूची बनाकर न्यायधीश को दे दो और क्षमा मांग करके कर चुका दो । व्यापारी को पहले तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसा वकील है जो मुझे सत्य प्रकट करने को कह रहा है । मै सत्य को छुपाकर अपना लाभ कमाना चाहता हूँ । गाधींजी ने बार-बार उसे सत्य की शक्ति से परिचित कराकर उससे अब तक हुई कर चोरी की सूची बनवाकर न्यायाधीश के समक्ष रखवा दी । न्यायाधीश ने ऐसे सत्यवादी वकील की प्रार्थना सुनकर व्यापारी को क्षमादान दे दिया । गांधीजी के जीवन मे यह सत्य की प्रथम विजय थी। जो सत्य का साथ छोड़ता है वह अपने गौरव का ही परित्याग कर देता है । कवि ने चार पंक्तियों में ठीक ही कहा है -

सत्य को पहले दुःख फिर सुख ही सुख मिलते हैं,
झूठ को पहले सुख फिर दुःख ही दुःख मिलते है ।
सत्य को अपनाने से जीवन महक जायेगा -
सत्य के चमन में तो सुख के सुमन ही खिलते हैं ॥

महाराज हरिश्चन्द्र का जीवन इसका उदाहरण है । विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र की पग-पग पर कठिन परीक्षा ली मगर उन्होने सत्य का साथ नहीं छोडा । आखिर में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के समक्ष विश्वामित्र को झुकना ही पडा । जहॉ सत्य है वहॉ पर छल, कपट, ईर्ष्या, मिथ्याभाषण एवं अनीति का ठहराव नहीं हो पाता । जो दृढ़ संकल्प लेकर सत्य की आराधना करता है, उसके जीवन के सारे दुर्गुण उल्टे पांव पलायन कर जाते है । सत्य का स्थान केवल वचन मे ही नहीं होना चाहिए अपितु मन एवं काया मे भी उसे स्थान देना चाहिए । मन में सत्य का जागरण हो, वाणी में सत्य का उच्चारण हो और कर्म में सत्य का अनुसरण होगा तो जीवन चहक उठेगा - अन्तर्मन महक उठेगा ।

जरा अपने मन में विचार कीजिए कि आप जीवन मे कहॉ तक सत्य का परिपालन कर रहे हैं । अपने पूर्वजों की आन बान और शान को कहॉ तक बनाये हुए हैं । हमने इस जीवन में क्या खोया है और क्या पाया है ? भारतवर्ष के पतन का सबसे बडा कारण यहाँ पनपता असत्य ही है । जो राष्ट्र कल तक असभ्य थे आज वे दूसरों से सीख-सीखकर सभ्य हो गये । सत्य-धर्म का आचरण करने लगे । मगर एक हमारा देश है जो पुनीत परम्पराओं को तोड़कर असत्य की ओर उन्मुख हो रहा हैं । एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है । एक असत्य आचरण करने वाला सारे राष्ट्र को बुरा बना देता है । इंग्लैण्ड में समाचार पत्रो को चौराहे पर रखकर वहॉ एक पात्र रख दिया जाता है । शाम को हॉकर (समाचार पत्र वितरित करने वाला) शेष बचे समाचार पत्र एवं पात्र में रखी धन राशि ले जाता है । वहॉ उसे अधिक ही धन राशि मिलेगी, लेकिन कम का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । यदि आज हमारे देश में यह प्रयोग किया जाये तो क्या यह प्रयोग शत प्रतिशत सफल हो पायेगा! इसमें मुझे ही नही बल्कि आपको भी सन्देह है । आज विश्व-गुरु कहलाने वाले भारत की दशा अत्यन्त दयनीय है । क्षुद्र स्वार्थो से घिरा यहॉ का नागरिक धर्म के मार्ग से विचलित हो गया है । देश के बाजारों मे असली के स्थान पर नकली माल भरा है । औषधियों में, खाद्य पदार्थो में, मशीनों के कलपुर्जो में मिलावट का बाजार गर्म है । जो मनुष्य धर्म का साथ छोडता है वह सत्य से भी दूर चला जाता है । संसार मे जितने भी महापुरुष

कहलाये है, उन्होंने अपने जीवन में सत्य और ईमानदारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । पण्डित जवाहरलाल नेहरू जो कि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे - अपने राजसी वैभव को ठोकर मारकर जिन्होंने भूखे-प्यासे रहकर जेलों की कोठरियो में अपना यौवन बिताया था । उन्होने अपने भाषण में कहा था - कमजोरी को मैं बुरा नही मानता, मूर्खता को मैं माफ कर देता हूँ, मगर बेईमानी मुझे तीर-सी चुभती है । असत्य मुझसे सहन नहीं होता है ।

स्वार्थ-लोलुप, असत्य् आचरण कर्ताओं ने वैज्ञानिकों के समक्ष भी समस्या खडी कर दी । वैज्ञानिक इसके फलस्वरूप ही झूठ को पकड़ने की मशीन बनाने में सफल हुए हैं । आज कल न्यायालयो में इस प्रकार की मशीनों का उपयोग होता है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति यदि झूठ बोलता है तो वह पकड़ में आ जाता है । सत्य बोलने वाला निर्भय होता है अत: उसके शब्दो का जो ग्राफ मशीन मे बनता है वह समानान्तर बनता है मगर असत्य बोलने वाले का ग्राफ ऊँचा नीचा बनकर सत्य का दर्शन करा देता है ।

जीवन को उन्नत बनाना है तो सत्य को ढूंढो, सत्य को जानो और सत्य को ही अपनाओ । सत्य के लिए तो मानव को तपना पड़ता है, खपना पड़ता है तभी वह आलोक के ऑगन में उतर सकता है, सत्यं, शिवम् एवं सुन्दरम् से साक्षात्कार कर सकता है । असत्य की भावना आत्म सुख कभी नही दे सकती । सत्य की प्राप्ति को परमात्म स्वरूप की प्राप्ति मानकर ही तो कहा गया है -

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप ॥

उस आप तक पहुँचने के लिए हमारे कृत्य मे सत्य का सहयोग अपेक्षित है । शुद्ध भावना से सत्य पल्लवित होता है असत्य जीवन को पीड़ाओ से भर देता है ।

कहते है एक गडरिया बालक जगल में भेड़ें चराने जाता था । उसके मन मे गाँव वालो को मूर्ख बनाने का भाव जागा । उसने एक दिन दोपहर मे जोर-से आवाज लगाई - दौडो, दौडो भेड़िया आया, भेडिया आया । ग्राम

पास मे ही था, कई ग्रामीण लाठियॉ ले लेकर आ गये । उसने बालक से पूछा- भेडिया कहॉ हैं तो वह हॅसने लगा और बोला मैं तो मजांक कर रहा था । लोग वापिस लौट गये । दो तीन दिन बाद उसने फिर वही बात दोहराई कि भेडिया आया, भेडिया आया, लोग फिर दौड-दौड़कर आये । वह उन पर हॅसने लगा और बोला - मै तो मजाक करता हूॅ । कुछ दिन बाद अचानक भेडिया आ गया । भेडिये को देखकर गडरिया घबराकर जोर जोर से चिल्लाने लगा कि भेडिया आया भेड़िया आया, दौड़ो-दौडो, भेड़िया भेड़ों को मार रहा है । ग्राम वालो ने समझा - यह तो मूर्ख है हमको भी मूर्ख बनाता है । उस दिन कोई भी दौड़कर नहीं गया । अपनी अनेक भेड़ो के मारे जाने पर वह मुॅह लटकाता हुआ ग्राम मे पहुॅचा और सारी बात बताई तो लोगो ने कहा - भाई! असत्य बोलने का फल तो तुझे मिलना ही था । हमने एक नही दो बार तुझ पर विश्वास कर लिया और तेरी सहायता करने पहुॅच गये । तीसरी बार यह सत्य था कि भेड़िया आया होगा मगर तेरी बात पर असत्य की छाप थी हम कैसे सत्य मान लेते ? असत्य बोलने का परिणाम तुझे भुगतना ही पडा ।

असत्य का आचरण करने वाला सुकृत्यो को त्याग देता है । जिसने सुकृत्य त्याग दिये उसे दुष्परिणाम भोगने पडते है । वह पाप कर्मो का बन्ध करता है । जिन्हें धर्म पर विश्वास है पाप-बन्ध से छूटकर जो मुक्ति का अभिलाषी है वह कठिन से कठिन परिस्थिति में भी सत्य का साथ नही छोड़ता । मुक्ति के अभिलाषियो को अन्त मे यही कहॅूगी कि -

सदा सत्य ॰ पथ पर पाँव बढ़ाता चल,
दीप सत्य के हर पल यहाँ जलाता चल ।
सत्य स्वयं भगवान यदि पाना है तो -
सुमन सत्य के मन में नित्य खिलाता चल ॥

यदि इस मानव जीवन में, आप सत्य के पथ पर चलेगे सत्य के दीप प्रज्वलित करेगे और मन में सत्य के सुमन खिलायेंगे तो आपका यह वर्तमान भी अच्छा होगा और भविष्य भी सुनहरा बनेगा । बस आज इतना ही । जय महावीर ।
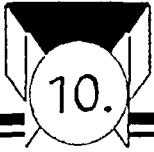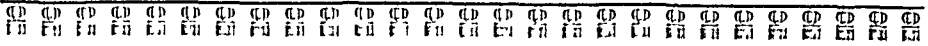
धर्म का मर्म : तज दो दुष्कर्म

धर्मप्रेमी सज्जनो ।

मैं आज सूत्रकृताङ्ग सूत्र की गाथा से अपनी बात प्रारम्भ करना चाहती हूँ । उसमें लिखा है -

जमिणं जगई पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो ।
सयमेव कडेहिं गाहई, नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं ॥

अर्थात् इस विश्व मे जितने भी प्राणी है, सब अपने कृत कर्मो के कारण ही दुःखी या सुखी होते हैं । उन्होंने जो कर्म किये हैं, जिन संस्कारों को ग्रहण किया है उनका फल भोगे बिना या अनुभव किये बिना उनका छुटकारा नहीं है । हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण हैं, जिन्हें जानकर हम अपने कर्मो की अनदेखी नहीं कर सकते !

हिन्दू पुराणों के अनुसार श्री कृष्ण एक पैर पर दूसरा पैर चढ़ाये हुए जंगल में एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे । उनके पैर में आभूषण चमक रहा था । एक बहेलिए ने उसे हिरण की ऑख समझकर बाण चला दिया । बाण सीधा उनके पॉव के अगले भाग मे लगा और खून के फव्वारे छूट गये । बहेलिया बाण चलाकर उस वृक्ष के पास पहुँचा तो वहॉ श्री कृष्ण को देखकर हतप्रभ रह गया । बहेलिया श्री कृष्ण के पॉवों में गिरकर क्षमा मागने लगा । वह अपने दुष्कर्मो पर रोने लगा। श्री कृष्ण ने कहा - भाई । मन मे दुःख मत लाओ । मैं द्वारकाधीश
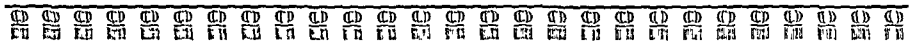
हुआ तो क्या हुआ ? कर्म-फल से संसार में कोई नही बच सकता । पिछले जन्म में मैं राम था और तुम बालि थे । तुम्हें मैंने छिपकर मारा था । इसी कर्म का फल मुझे अब मिल रहा है । इस संसार में कर्म फल से कोई भी नहीं बच पाया है । प्राणियों को उनके कर्मो का फल तो कभी न कभी मिलता ही है ।

जब तक कर्म पूरी तरह से नष्ट नहीं हो जाते जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती । इसी कारण ज्ञानियों ने कहा है – 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं' बार-बार जन्म लेना, बार-बार मृत्यु को प्राप्त करना, यह क्रम अनादि काल से चल रहा है । जीवात्मा को मोहदशा के कारण बार-बार जन्म-मरण के दौर से गुजरना पड़ता है । जो आत्मा अपने विवेक को जाग्रत कर लेती है वह धर्म की शरण में जाकर अपनी मुक्ति हेतु प्रयास करती है । मलिन वस्त्रों को जिस प्रकार जल के संयोग से निर्मल किया जा सकता है उसी प्रकार शुभ कर्मो से इस आत्मा पर चढ़े कर्मो के मैल को उतारना संभव है । यह आत्मा विभिन्न रूपों में जन्म लेकर चतुर्गति रूप संसार मे एक प्रकार से अभिनय कर रही है । कहा भी गया है-

कभी नरक में हुआ नारकी कभी स्वर्ग में देव रे,
कभी गया तिर्यच गति में कभी मनुज भवमेव रे,

काल अनादि से भूला चेतन निज स्वरूप पहचान रे।
ना जाने किस वेश में बाबा मिल जाये भगवान रे ॥

इस मानव-भव में चेतन को जगाने की जरूरत है । आत्म-स्वरूप को न जान पाने के कारण ही यह जीवात्मा विभिन्न योनियों मे परिभ्रमण कर रही है । इस लोक मे सुन्दर-असुन्दर सुखद-दुःखद, रूप-कुरुप कुछ भी नहीं है । परिस्थितियों का कर्त्ता और भोक्ता यह आत्मा ही है । मन और इन्द्रियो पर हमारा अकुश नही है । इस कारण इस जीवात्मा को कष्ट के मध्य परिभ्रमण करना पड़ता है । अपने कर्मो से छुटकारा पाने वाली आत्मा ही परमात्म-स्वरूप को पा सकती है । आत्मा का स्वरूप बताते हुए भगवान ने फरमाया है –

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥

अर्थात् स्वय आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूट-शाल्मली वृक्ष है । आत्मा ही स्वर्ग की कामदुधा-धेनु और नन्दन-वन है । आत्मा से भिन्न परमात्मा की सत्ता नहीं है यदि आत्मा सद्पुरुपार्थ का सहारा ले ले तो वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकती है - परमात्मा बन सकती है । भगवान महावीर का धर्म एवं दर्शन इस आत्मा की मुक्ति का-सबसे अधिक सरल मार्ग बतलाता है मगर वर्तमान युग का मानव दर्शन से प्रदर्शन मे अपने समय की बरबादी कर रहा है । प्रदर्शन से अन्य भले ही प्रसन्न हो जायें आत्मा कभी भी प्रसन्न नही हो सकती । प्रदर्शन से आत्मा का कल्याण सभव नही है । जब तक कर्म मैल काटने जैसा आचरण नहीं होगा तब तक कुछ भी लाभ नही है । धर्म करना और धर्म करने का अभिनय करना दोनो अलग-अलग स्थितियां है । आत्मा को अभिनय की आवश्यकता नही है ।

आज आत्मा का ध्यान कौन कितना रखता है यह हमारे सबके लिए विचारणीय बिन्दु है । आज हर ओर अभिनय हो रहा है । देश के नेता दंगा भडका कर जनता के सामने मगरमच्छी आसू बहाते है । शराब की घूट लेकर नशाबन्दी अभियान के दीप जलाते है । मनुष्य ऊपर से तो क्या दिखाई देता है और उसके भीतर के भाव कौनसे है ? ऐसा विपरीत आचरण करने से कुछ भी भला होने वाला नहीं है । मानव की संवेदनाएं आज कमजोर हो गई है । अर्थी को कंधा देने वाला सोचता है कि अन्तिम संस्कार पूरा होते ही मुझे पहले विद्युत बिल भरने जाना है, आज अन्तिम तारीख है । इसे भी आज ही मरना था । कल जाता तो कितना अच्छा रहता । आज आदमी जीवित है मगर स्वार्थभाव के कारण उसकी संवेदनाएँ टूट रही है । हर आदमी अपनी भावना में डूबा है । दूसरो के दर्द का उसे खयाल नहीं है । किसी ने ठीक ही कहा है -

कौन किसका दर्द बाँटे, सब यहाँ बीमार है ।
पत्थरों का शहर है, यहाँ खिड़कियाँ बेकार है ॥

हमे मानव जीवन मिला है तो अधिक से अधिक इसका लाभ उठाने की चेष्टा करनी चाहिए । साधना के पथ पर चलने वाला राही अपनी साधना से कर्म मुक्त होना चाहता है। वह ज्ञान, दर्शन व चारित्र

की आराधना करते हुए अपने आत्म-कल्याण की चाह रखता है । उसे सासारिक तुच्छ पदार्थो के प्रति तनिक भी ममत्व नहीं होता । साधारण मानव जिसमे विवेक की कमी होती है वह सासारिक पदार्थो मे ही उलझकर रह जाता है । वह नश्वर पदार्थो मे इतना लीन और फिर इतना दीन हो जाता है कि आत्म स्वरूप की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा पाता । वह धनी बनने के लिए भाग दौड़ करता है, जब धन इकट्ठा हो जाता है तो उसकी रक्षा हेतु चिन्ता मे पड़ा रहता है । ऐसा धन किस काम का जिसे पाने के लिए भी दु:ख उठाना पड़े रक्षा करने मे भी दु:ख उठाना पडे तथा आर्थिक हानि होने पर तो दु:ख उठाना ही पडे । ज्ञानी इस धन को तुच्छ समझकर ही आत्मधन की सुरक्षा पर ध्यान देते है ।

धन पाकर कोई स्वयं को धन्य समझता है तो वह उसका अज्ञान है । भगवान महावीर ने तो राज्य का वैभव ठुकराकर आत्मधन पाने हेतु साधना का सुमार्ग अपनाया था धन से सुख नही मिलता है । सुख बाहर की नही बल्कि भीतर की पूंजी है । उसे देखने की आवश्यकता है । आजकल कई धन-सम्पन्न व्यक्ति ऐसे आते है जिनके पास धन तो प्रचुर मात्रा में है मगर आत्म-शान्ति नही है । वे शान्ति चाहते है । पश्चिमी राष्ट्रों के निवासी धन से उकता गये है । वे भारतीय धर्मशास्त्रों में शान्ति की तलाश करके आनंदानुभूति प्राप्त करते हैं । जीवन में धन से फोम के बिस्तर खरीदे जा सकते हैं मगर धन से नीद नहीं खरीदी जा सकती। धन से दवा खरीदी जा सकती है मगर स्वास्थ्य नही खरीदा जा सकता। एक विद्वान् ने बहुत अच्छी बात कही थी कि इस संसार मे वही गरीब है जिसके पास केवल धन है, धैर्य एव सतोष नही ।

इस संसार मे कुछ लोग सन्तान में सुख देखते है । पुत्र होने पर समारोह करते है । जन्मोत्सव मनाते है । वही पुत्र बडा होने पर यदि योग्य नहीं निकला, सस्कारहीन हो गया हो तो उस समय माता-पिता की क्या स्थिति होती है । आज ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे जहॉ पिता पुत्र के मध्य न्यायालय मे मुकदमे चल रहे है । जो पत्नी जीवन सगिनी बनकर ससुराल पहुॅचती है वही मन-मुटाव होने पर पति को जेल की हवा खिला देती है । यह सब कर्मो का खेल है जो जैसे कर्म करता है उसे वैसा फल तो भोगना ही पडता है । किसी ने ठीक ही कहा है-

कर्म यदि शुभ है, शुभ फल ही मिलेगा,
शूल अगर बोओगे फूल कैसे खिलेगा ।
शुभ कर्म से जिन्दगी को नई महक दो तुम -
आग में धरा पांव भला कैसे नहीं जलेगा ॥

कर्मो का फल अल्पकाल में मिले या दीर्घ काल के बाद, लेकिन उनका उदय अवश्य होता है । एक महिला के विवाह के तीन वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी सन्तान नहीं हुई । वह ओझा के पास पहुॅची । ओझा ने उस स्त्री को बहका दिया कि यदि तुम अपने पड़ौसी के घर मे आग लगा दो तो तुम शीघ्र ही सन्तान को प्राप्त कर सकोगी । उसने यह बात अपने पति से कही तो पति ने कहा - यह तो मूर्खता भरा कदम है । किसी के घर में आग लगाने पर यदि सन्तान मिलती है तो मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है । स्त्री चुप हो गई मगर वह समय की प्रतीक्षा करने लगी । एक दिन मौका देखकर उसने अपने पडौसी के घर में आग लगा दी । आग से उस घर में बॅधे पॉच पशु जीवित ही जल मरे । दैवयोग से कुछ समयोपरान्त उस महिला के एक-एक कर के पाँच सन्तान हुई। बच्चे बड़े होने लगे । परिवार में आनन्द का वातावरण था । पति-पत्नी अपने बच्चो के मध्य बडे प्रसन्न थे । एक दिन तेज बरसात में अचानक मकान ढह गया पॉचों बच्चे उसमें दबकर मर गये । माँ के मानों दोनों हाथ टूट गये । वह रो-रोकर घर को गुंजाने लगी । पाँच बच्चों की लाश को देखकर पति ने कहा - यह तेरे दुष्ट कर्मो का ही फल है कि हमारे पाँचों युवा बेटे एक साथ मृत्यु को प्राप्त हुए हैं । ये वही पाँच जीव थे जिन्हें तूने आग लगाकर जला दिया था । ये तो चले गये मगर अब तू अपने कर्मो को भोगती जा । पत्नी अपने पति की बातों को चुपचाप सुनती रही । उसकी ऑखों के सामने ही उसकी बगिया उजड चुकी थी। यह सब कर्मो का ही खेल है । जाने या अनजाने मे किये कर्मो का फल तो भोगना ही पडेगा । कोई अनजान बनकर अंधेरे में विष-भक्षण करे तो क्या विष का प्रभाव नहीं होगा ? अवश्य होगा, वैसे ही किए गए कर्मो का फल-भोग अवश्य करना पड़ेगा । मनुष्य के कर्म ही उसको हॅसाते एवं रुलाते है । कर्मो को भोगे बिना उनसे छुटकारा नही मिल सकता । कहा भी गया है -

ईश्वरं मानवञ्चापि कञ्चिदन्यन्न दूषयेत् ।
स्वार्जितं स्वेन भोक्तव्यमवश्यं कर्मणांफलम् ॥

अर्थात् मनुष्य ईश्वर को या मनुष्य को या किसी भी दूसरे को दोष न दे, अपने कर्मो के अर्जित फल को तो अवश्य भोगना ही पड़ेगा । इस आत्मा ने शुभ अथवा अशुभ जैसे भी कर्म किए हैं उन्ही के अनुसार शुभ अथवा अशुभ फल इसे अवश्य भोगने पड़ेंगे । मनुष्य के कृत कर्म अनेक जन्मों में भी उसका पीछा नहीं छोडते है । कर्म कर्त्ता का ही अनुगमन करते हैं, यह जीवात्मा कर्मो के कारण ही विभिन्न योनियों में दुःख उठाती रहती है । यह जीवात्मा कभी देवलोक की तो कभी नरक की यात्रा करती है, कभी तिर्यच में तो कभी मनुष्य योनि मे उत्पन्न होती है । उसके पीछे उसके कर्म ही कार्य करते है । कर्मानुगोगच्छति जीव एकः ।

इन कृत कर्मो से यहाँ कौन बच पाया है । इन कर्मो के आगे तो बड़-बड़े चक्रवर्ती, ऋषि-मुनि भी हार जाते हैं । रघुकुल भूषण श्री राम का उदाहरण हमारे सामने हैं । उनके क्या कमी थी । अवध के राजा दशरथ के घर में जन्म पाया । जनक नन्दिनी से विवाह हुआ । गुरु वशिष्ठ ने शुभ मुहूर्त निकालकर राज्याभिषेक की तैयारियाँ शुरु कर दी मगर आप कर्मो का प्रभाव देखिये कि उन्हें वनवास भोगना पड़ा । पिता की असामयिक मृत्यु हो गई । सीता का हरण हुआ । उन्हें वन-वन में भटकना पड़ा । इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र का राज्य छूटा, उनकी पत्नी को दासी का जीवन व्यतीत करना पडा । स्वय चाण्डाल के घर पर दास बनकर रहे । श्मशान में भी उन्हें परीक्षा की घड़ियों में गुजरना पडा ।,यह कर्मों का ही खेल था । उत्तराध्ययन सूत्र में भी लिखा है-

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

अर्थात् किये हुए कर्मो को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है । शेखसादी ने अपनी जीवनी में एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा हे -

मैंने अरब देश के एक देहाती को देखा जो अपने पुत्र से कह रहा था - 'ऐ पुत्र । तुझने कयामत के दिन यह पूछा जायेगा कि तूने
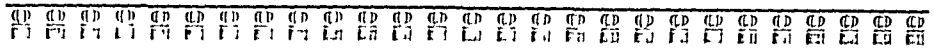
क्या किया ? यह नहीं पूछेंगे कि तू किस खानदान से है । तेरे कर्मो का हिसाब तुझसे लिया जायेगा, तुझसे कोई यह नहीं पूछेगा कि तेरा बाप कौन है। कितना कमाया, कितने महल बनाये ?

बृहत्कल्प भाष्य मे कर्मबन्ध पर बहुत ही सुन्दर बात कही हैं -

कम्म चिणंति सवसा, तस्सुदयम्मि उ परवस्सा होंति ।
रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइ स परवस्सो तत्तो ॥

अर्थात् जीव कर्मो का बन्ध करने मे स्वतंत्र है, परन्तु उस कर्म का उदय होने पर फल भोगने में उसके अधीन हो जाता है । जैसे कोई पुरुष स्वेच्छा से वृक्ष पर चढ़ तो जाता है किन्तु प्रमादवश नीचे गिरते समय परवश हो जाता है । जो धर्म से विमुख है वह अधार्मिक बनकर पापकर्म करता जाता है । वह पागलपन में शुभ अशुभ कर्मो को भूल जाता है । मानव मन के भीतर का अन्धकार इतना सघन हो जाता है कि मनुष्य बिना सोचे समझे अधर्म के पथ पर चल पड़ता है । जब तक आत्म-दीप प्रज्वलित नही हो जाता भीतर का अन्धकार नहीं मिट सकता। जिन्होंने धर्म का मार्ग चुन लिया वे ही आत्म दीप को प्रज्वलित करने की क्षमता पैदा कर सकते है । जिसने आत्म दीप जला लिया वही शुभ और अशुभ का भेद कर सकता है, और वह अशुभ कर्मो से बचने का मार्ग ढूंढ लेता है ।

यदि व्यक्ति अशुभ कर्मो से बचने का एव शुभ कर्मो की ओर बढ़ने का प्रयास करता रहे तो अवश्य ही एक दिन वह परम गति को प्राप्त करने मे सक्षम हो जाता है । इस हेतु आवश्यकता है सतत प्रयत्नशील बने रहने की । मोक्ष प्राप्ति करना बच्चो का हॅसी खेल नही है । इस हेतु कई वर्ष तो क्या कई जन्मो का समय भी लग जाये तो इसे सस्ता सौदा ही समझना चाहिए । कई जन्मों की साधना के पश्चात् ही आत्मा सिद्धि प्राप्त करती है । इस हेतु जीवात्मा को घोर से घोर उपसर्ग भी सहने पडते हैं । उपसर्गो से घबराने वाला अपने उद्देश्य को प्राप्त नही कर सकता है । अत: प्रत्येक मुमुक्षु को चाहिए कि वह शुभ कर्मो के उपार्जन का प्रयास करे । जो काम आत्मोन्नति मे सहायक हो उन्हे करने मे उसको विलम्ब नही करना चाहिए । यहॉ अच्छे का मतलब पुण्यकार्यो-

शुभ कार्यो से है । स्वार्थयुक्त कार्य को भी मनुष्य स्वयं के लिए अच्छा ही समझता है ।
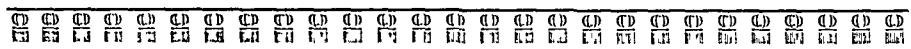
एक घर मे कुछ मेहमान आने वाले थे । पिता बाजार से घर आते हुए कुछ मिठाई लेकर आया । घर पहुँचकर मिठाई की थैली पुत्र को देकर कहा - इसे रख दो । पुत्र ने कक्ष में जाकर थैली को खोल कर देखा तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । अरे । इसमें तो मिठाई है । उसने उस थैली को अपने कक्ष में ले जाकर रख दिया । घूमते-फिरते जब भी अपने कमरे मे जाता मिठाई का एक टुकड़ा मुँह मे रख लेता। शाम तक थैली की मिठाई साफ हो गई । अगले दिन घर में मेहमान आ गये। जब वे भोजन करने बैठे तो पिता ने पुत्र से मिठाई लाने को कहा । पुत्र ने कहा - कौनसी मिठाई की बात कर रहे है । पिता बोले - बेटे! मैंने कल तुम्हें थैली दी थी उसमे मिठाई ही तो थी । पुत्र ने कहा आप कल की बात आज कर रहे है, वह मिठाई तो मै कल ही खा गया था। पिता को कुछ बुरा लगा वे बोले - क्यो ? अरे । आप तो नाराज हो रहे हैं । आपने ही तो मुझे बताया था कि बेटे अच्छे काम में देर नहीं करनी चाहिए । अच्छे काम को कल पर मत छोड़ो ! अच्छे काम जितनी जल्दी कर लिए जायें उतना ही जीवन के लिए कल्याणकारी है । इसलिए मैंने वह मिठाई कल ही चलते फिरते साफ कर दी थी ।

बन्धुओं ! आत्मा के लिए अच्छे कार्य खाना, पीना, पहनना नही है । अच्छे कार्य वे हैं जिनसे हमारे कषाय मंद पडें । वीतराग वाणी के अनुसार तप और त्याग से ही पुण्य का उपार्जन व पाप का विनाश होता है । ये शुभ कर्म ही मनुष्य को मोक्ष की ओर प्रवृत्त करते है । आजकल तो देखने में यह आ रहा है कि मनुष्य जानवरों से भी गया बीता होने लगा है । मैं तो चेतना भरी चार पक्तियों में कहती रहती हूँ -

हो गई है भोर मानव कब तलक सोता रहेगा,
पाप अपने शीश पर कब तलक ढोता रहेगा ।
शुभ कर्म से ही आत्म का उद्धार होता है -
दुष्कर्म करके तू अरे ! कब तलक रोता रहेगा ॥
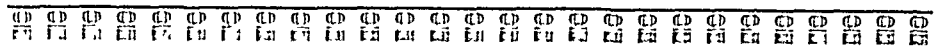
दुष्कर्म करने वाले को - अशुभ कर्म करने वाले को तो आखिर मे रोना ही पडता है । ये राग-द्वेप, विपय-वासनाएँ, अशुभ कर्मो मे वृद्धि करते है । इन्ही के वशीभूत होकर जीवात्मा जन्म जन्मान्तर तक पाप फल भोगती रहती है । कामनाओ एव तृष्णाओ के जाल मानव को मुक्ति से परे धकेल देते है । कृत कर्म तो भोगने ही पड़ते हें । कर्म केवल मनुष्य को ही सताते हो ऐसी बात नही है । एक ही मॉ के गर्भ से जन्म लेने वाले घोडों में से एक किसी रईस के घर पर दाना-पानी खाता है, सईस के हाथो मालिश करवाता है तो दूसरा तागे मे जोता जाता है । बार-बार चाबुक की मार खाता है । चलिये जीवो की बात छोड़िये कुम्हार की चाक पर बनने वाले घड़ो में एक घड़ा पनिहारिन के सिर पर शोभा पाता है, एक मन्दिर मे ।..व पर जल की बूंदे गिराता है तो एक श्मशान मे जाकर रखा जाता हैं । कर्मो के फल से संसार मे कोई बच नहीं पाया है ।

प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव को देखिये, उनको भी वर्ष भर तक आहार पानी के लिए घूमना पड़ा । जिनकी सेवा मे देवता रहते हों उन्हे ही अन्न-जल न मिले यह कितनी आश्चर्य की बात है । भगवान महावीर को क्या कम उपसर्ग झेलने पड़े । बॉधे गये कर्म तो अपना फल प्रदान करते ही है । जीवात्मा समभाव रखकर निष्काम भाव से निर्जरा करे तो यह जीवन की सार्थकता है । ज़ब तक जीवन धर्ममय नहीं बनता, पाप कर्मो का क्षय नही हो सकता । शुभ कर्मो का संचय ही मोक्ष का द्वार खोलता है । पुण्य कर्म जीवन को उर्ध्वगामी बनाते है वहीं पाप कर्म अध:पतन की ओर ले जाते है । पुण्य का परिणाम ही सुख है और पाप का परिणाम ही दु:ख है । मनुष्य तो सबसे अधिक बुद्धि-सम्पन्न प्राणी है उसे इस बात का ज्ञान है कि अच्छे कर्म उसके जीवन को सुखमय बनायेंगे फिर भी वह अशुभ कर्मो की ओर उद्यत हो जाता है तो यह उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है । जिस डाल पर बैठे है यदि उसी को काटेगे तो गिरने से हमें कोई नही बचा पायेगा । कहा भी गया है -

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला हवन्ति ।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला हवन्ति ॥
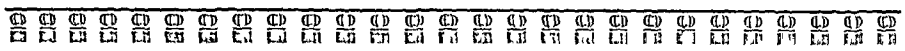
अर्थात् शुभ कर्म का फल शुभ है और दुष्कर्म का फल अशुभ है । हम ऐसा कार्य करें ही क्यों, कि जिससे अशुभ कर्म का उदय हो और हमे दुःख उठाना पड़े । हमें इस बात को कभी नही भूलना चाहिए कि पाप का सम्बन्ध हमारे मनोभावों से हैं । जब पाप मूलक क्रिया हो जाती है तो वह अपराध बन जाती है न्यायालय अपराध की सजा देता है - पाप की नहीं ! पाप की सजा तो अन्तरात्मा को ही मिलेगी और अन्तरात्मा ही कर्मो की निर्जरा करके स्वयं को शुद्ध बुद्ध बनायेगी । रोग को छुपाने पर वह भयानक रूप ले लेता है उसी प्रकार छिपाये गये पाप भी अपना उग्र रूप दिखाते हैं ।

जीवन-मरण के चक्र से यदि निकलना है तो प्रत्येक क्षण स्वयं को देखते रहिये । जिससे अशुभ कर्मो की निर्जरा हो वैसे ही भाव मन मे जगाते रहिये । यदि अनजाने मे भी कोई भुल हो गई हो तो प्रायश्चित करके उससे मुक्त होने की चेष्टा करें । यही इस मानवभव मे आने की सार्थकता है । संसार के रंगमंच पर मात्र अभिनय ही करते रहे तो एक दिन पर्दा गिर जायेगा ।

इसके लिए आवश्यक है कि हम अपनी आत्मा को ज्ञान के धरातल पर खड़ा करके देखें । ऑखे बन्द करके रहने से कभी खतरा नही टलता है । क्या अच्छा है, क्या बुरा है ? क्या शुभ है, क्या अशुभ है यह हमे मात्र बाहर की आँखो से ही नहीं भीतर की ऑखों से भी जानना होगा । प्रतिकूल परिस्थिति में भी समभाव को जगाये रहना है । धार्मिक बनकर के जीवन को धर्ममय बनाना है । करुणा, प्रेम, मैत्री, अपरिग्रह, नैतिकता से जीवन का उत्थान करना है । हमारी मंजिल हमे आवाज लगा रही है मगर न तो हमारा ध्यान है और न उसका ज्ञान है तो फिर इस जीवात्मा को भटकना ही पड़ेगा ।

जो वीतराग के पथ पर आगे बढ गया वह कर्मों को अवश्य तोडने का कार्य करेगा । धर्म जिसके जीवन मे उतर गया वह न तो पाप का बध करता है, न पुण्य का । जो बन्धन से मुक्त हो गया वही अपने लक्ष्य पर पहुँच पाया । उसे ससार की कोई शक्ति मुक्ति महल मे जाने

से नही रोक सकती । मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव उत्तम कर्म करें, सत्य मधुर बोले और हितकर ही सुने । इसमे ही उसका कल्याण है । कहा भी है -

> कर्मणा भुक्ति वेलां तु नैव जानाति मानवः ।
> भवितव्यमतः सर्वैः सुशिक्षा श्रवणेत्सुकैः ॥

अर्थात् मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मो के फल भोग के समय से अपरिचित रहता है अतः उसे सदैव अच्छी शिक्षा सुनने के लिए उत्सुक रहना चाहिए । न जाने किस समय कैसी शिक्षा का क्या प्रभाव हो ।

मैं अन्त में आपसे यही कह कर अपने शब्दों को विराम दूंगी कि धर्म को अपने जीवन से जोडिये कर्म अपने आप उत्तम होगे । उत्तम कर्म से आपका भी कल्याण है और इस संसार का भी कल्याण है । आप अपने शुभ कर्मो से दुखियो को सुखी बना सकें तो उनका आशीर्वाद कभी भी निरर्थक नही जायेगा । आप हाय न ले बल्कि उनका आशीर्वाद ले इसी में जीवन की सार्थकता है ।
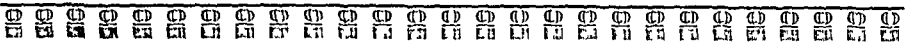
11. पुरुषार्थ जगायें : जीवन महकायें

धर्मप्रेमी आत्म बन्धुओं ।

यदि मुझसे कोई यह प्रश्न करे कि मानव जीवन मे सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु क्या है तो हो सकता मेरा चिन्तन कुछ अलग हो और आपका चिन्तन कुछ अलग । कुछ धन-सम्पत्ति को जीवन में मूल्यवान समझ सकते है तो कुछ का ध्यान अपने बेटे-पोतों पर जा सकता है । कुछ उच्च पद की प्राप्ति को भी मूल्यवान मानकर उसकी प्राप्ति के लिए जी तोड़ परिश्रम करने का विचार कर सकते है । यदि आप इन सबसे हटकर विचार करें तो जो मेरी धारणा है वही आपकी भी हो सकती है । मेरे विचार से मानव जीवन मिला है जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक का समय हमारे पास है । मृत्यु कब किस रास्ते से हमारे पास आ जाये उसका कोई ठिकाना नहीं है । मृत्यु के हजार बहाने एवं उसके आने के हजारों रास्ते हो सकते हैं । जीवन मे यदि कुछ बनना है, कुछ कर गुजरना है तो समय का मूल्य हमे पहचानना पड़ेगा । समय नदी की धारा का बहता हुआ जल है जो प्रतिक्षण आगे से आगे बढ़ता रहता है । एक बार जो बूंद आगे बढ गई वह पुनः पीछे की ओर नहीं बह सकती, जो पल निकल गया वह फिर कभी लौटकर नहीं आ सकता । मानव जीवन मे यदि चमक पैदा करनी है तो हमें समय का मूल्य जानना होगा । जो व्यक्ति समय की उपेक्षा करता है, उसे प्रमाद में खो देता है तो समझो उसने स्वयं को ही नहीं, इस अमूल्य जीवन को ही खो दिया है ।
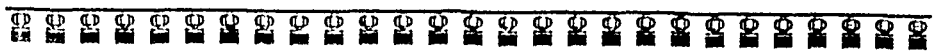
बचपन चला गया, जवानी बीत रही है वृद्धावस्था द्वार खटखटाकर तन-मन में प्रवेश करने को आतुर हैं इसके बावजूद भी हम यदि जाग्रत नहीं है तो यह जीवन निरर्थक हो जायेगा ।

राजा भोज का नाम तो आपने सुना ही होगा । धारा नगरी के राजा थे । प्रजावत्सल राजा का यह धर्म होता है कि वह प्रजा के सुख-दुःख का भागीदार बने । राजमहलों का ऐश्वर्य भोगने वाले राजा महाराजा तो हजारों हुए हैं मगर ऐसे कितने राजा हैं जो हजारों वर्षों के पश्चात् भी पीढ़ी दर पीढ़ी जनता की जिह्वा पर अपनी छाप छोड़े हुए हैं । राजा भोज सचमुच प्रजावत्सल राजा थे । दिन हो या रात सदैव प्रजा हित में उनका समय व्यतीत होता था । राज्य की वास्तविक स्थिति का पता लगाने हेतु, वे वेश बदलकर निकल जाते थे । एक दिन अपने मित्र माघ पण्डित के साथ निकल गये । राजा था तो क्या हुआ, आखिर था तो मानव ही, एक वृद्ध महिला को देखकर उससे मजाक करने की सूझी! वृद्धावस्था के कारण उस महिला की कमर झुकी हुई थी । वह कमर झुकाये रास्ते पर चल रही थी । भोज ने उस वृद्धा से पूछा अधः पश्यसि किं वृद्धे ! किं च ते पतितं भुवि । माँ । इतनी झुककर नीचे देखती हुई चल रही हो, क्या तुम्हारी कोई वस्तु खो गई है ! वृद्धा ने अपना सिर उठाकर कहा - बेटा ! वस्तु मत कहो मेरा तो बहुमूल्य रत्न खो गया है और इस जन्म में तो दुबारा कभी नहीं मिलेगा ! राजा भोज आश्चर्य में पड़कर स्वयं भी इधर-उधर देखने लगे कि शायद वृद्धा के नेत्र कमजोर होने से नहीं मिल रहा हो मैं प्रयत्न करता हूँ । उन्होंने अपने साथी माघ को भी संकेत दिया । वे दोनों इधर उधर देखने लगे । कुछ देर बाद माघ ने कहा - माँ अब छोड़ो हमारे राजा को सब प्रजा-हितैषी मानते है । मै उनसे कहकर तुम्हें दूसरा रत्न दिलवा दूंगा ।

वृद्धा बोली बेटा ! लगता है तू भी मेरी तरह ही मूर्ख है । 'अरे, मूढ़ ! न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥' तेरी भी स्थिति मेरी जैसी ही है। मेरा वह रत्न तो मेरी जवानी थी, युवावस्था थी, क्या तुम्हारा राजा मुझे दे सकेगा । कुछ वर्षो बाद तुम्हारी स्थिति भी मेरी तरहं हो जायेगी तब तुम्हें भी लोग यही प्रश्न पूछेंगे तब क्या कहोगे ?
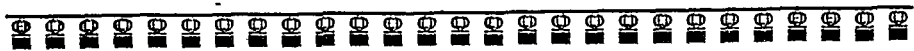
वृद्धा की बात सुनकर भोज और माघ निरुत्तर हो गये । वे समझ गये कि यह रत्न एक बार आता है और मुट्ठी से रेत की भांति खिसकता चला जाता है । जो कुछ करने की भावना है वह जवानी के समय में ही करने की क्षमता जगाना चाहिए ! इस जवानी को अच्छे काम में लगाओ इसका तिरस्कार करोगे तो पछताना पड़ेगा । यह जवानी वृक्ष पर लगे नव पल्लव के सदृश है जो पतझड़ आते आते सूखकर जीवन डाली को अपत्र बना देगा । यह युवावस्था, यह यौवन जब आता है तो जीवन की हर शाखा पर मानो बसन्त बहार का आगमन हो जाता है । रोग रोम में कोयल कुहुकने लगती है । ऐसे महत्त्वपूर्ण समय का यदि कोई सदुपयोग नहीं कर सका तो फिर भविष्य में वृद्धावस्था से क्या उम्मीद की जा सकती है ।

कुछ लोग जवानी के जोश में होश भूल जाते हैं । उन्हें यह पता ही नही रहता कि इस जागृति की वेला में हम क्या कर रहे हैं। घड़ी की सुइयों की भांति समय आगे बढ़ रहा है खाने पीने एवं मौज मस्ती में इस यौवन रूपी रत्न को खो दिया तो आत्मकल्याण कब करोगे! जवानी को कुछ लोग अधी मानते हैं मैं कहती हूँ भाई अंधी जवानी नहीं, बल्कि आप स्वयं है जो जानबूझकर आँखें बन्द किये हुए हैं । जवानी के लिए तो किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

जवानी बुझी छार नहीं, जलता अंगार है,
जवानी कोरी सितार नहीं, जीवन झंकार है ।
यथार्थ के झरोखे से झांककर देखा तो -
जवानी विकार नहीं प्रकृति का उपहार हैं ॥

यह अमूल्य उपहार है - अद्‌भुत रत्न है जो मानव जीवन मे एक बार आता है और चला जाता है । यह जवानी ही है जो जीवन का स्वर्णिम द्वार खोलती है । इस जवानी में यदि मानव संयम का पथ चुने तो उसकी मुक्ति का पथ खुल जाता है । इस जवानी मे यदि गुनाहों के पथ पर चल पड़े तो दुःखों की शृंखला मे आबद्ध होने से कोई नहीं रोक सकता । यह यौवन रूपी रत्न एक बार चला गया तो ढूंढ़ते ही रह जाओगे । जिसका चेतन जाग्रत है, जो प्रत्येक कार्य करने से पहले एक क्षण के लिए विचार

करता है उसे जीवन में असफलता का मुँह नहीं देखना पड़ता । जिसने अपनी इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया वह कभी भी भटक नहीं सकता । इन्द्रियों के लगाम नही है तो मन रूपी सारथी भला क्या कर सकता है । आज की इस भौतिक चकाचौंध मे- जीवन के महत्त्वपूर्ण समय में किसी नौजवान को भटकते देख एक कवि ने लिखा हैं -

सावन में मरुस्थल भी चहक जाते हैं,
बसन्त में पतझाड़ भी महक जाते हैं ।
इस उम्र को दोप न दो यारो -
इस उम्र में अकसर लोग बहक जाते हैं ॥

लेकिन जो सजग है जिन्हें जीवन के प्रत्येक क्षण के महत्त्व को जानने की समझ है वे यौवन के समय को व्यर्थ नहीं जाने देते । आदमी मे - स्वय मे यदि बोध का अभाव है तो वह कम से कम दूसरों से तो सीख ले ही सकता है । बुद्ध ने वृद्ध व्यक्ति के जर्जरित शरीर को देखकर ही चिन्तन शुरु कर दिया था । मैथिलीशरण गुप्त ने वृद्ध की मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखा है -

देखी मैंने आज जरा ।
हो जायेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ।

बुद्ध को अपना ध्यान नहीं बल्कि पत्नी का ध्यान आया कि क्या वृद्धावस्था में यशोधरा भी ऐसी वृद्ध हो जायेगी । आखिर में वे विचार करते है कि धिक्कार है मुझे यदि समय रहते मैं जाग्रत नही हुआ। जो तैरता है वह सागर के पार हो सकता है । वृद्धावस्था में तो हमारी इन्द्रियॉ शिथिल हो जायेगी । हाथ पाँव में कार्यक्षमता नहीं रहेगी । अभी जो उत्साह है वह फिर नही रहेगा । हिरन की भॉति कुलॉचें भरने की क्षमता समाप्त हो जायेगी । बहकने एव चहकने की स्थिति नही रहेगी। समय की चोट तुम्हें तोड़ देगी । परिवार वालों की उपेक्षा, पुरानी यादों के सहारे जिन्दगी के शेष दिन बिताने को विवश कर देगी । उस समय क्या स्थिति होगी । अंग्रेजी में एक कहावत है -

Youth lives on hope
old age lives on rememberance.
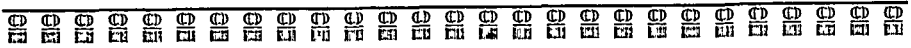
यादों को, बीती घटनाओं को स्मरण करके सुख कम दुःख ही अधिक होगा । यह जवानी ऐसी अवस्था है, जो जाने के बाद वापिस नही आती है । कहा भी गया है -

जिन्दगी आनी ,जानी देखी,
पल पल में यहाँ, रवानी देखी ।

आके न जाये वो बुढ़ापा देखा,
जाके न आये वो जवानी देखी ॥

ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में है कि जीवन को सत्पुरुषार्थ द्वारा सार्थक करने वाला कदम उठाया जाये । ज्ञानियों ने भी कहा हैं- 'जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु।' नष्ट होना प्राणियों के शरीर का धर्म है। मृत्यु एक स्वाभाविक घटना है जो प्रत्येक प्राणी के जीवन में होती है। संस्कृत मे एक श्लोक की पंक्ति है-'कालो न यातो वयमेव याताः ।' अर्थात् काल नही आता है, वरन् हम स्वयं काल के मुँह में चले जाते है । जैसे ही आयुष्य पूरा होता है हर प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । महापुरुषो ने जितना जीवन के लिए कहा है उतना ही मृत्यु के लिए भी कहा है। एक स्थान पर लिखा है - 'परिवर्तिनि हि संसारे मृतः को वा न जायते' अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता है । कौन जन्म नही लेता है ? अतः कहने का अभिप्राय यह है कि जन्म और मृत्यु तो एक साधारण घटना है जो इस संसार में प्रतिक्षण घटती रहती है । प्रतिदिन हजारों लोग मरते हैं और हजारों पैदा हो जाते हैं । वर्तमान युग में बीमारियों की रोकथाम एवं समुचित उपचार के कारण मृत्युदर में कमी आ गई है। इसका मतलब यह नहीं है कि जिनके पास कारगर उपाय अच्छे चिकित्सक एवं औषधियों के भण्डार है वे मृत्यु को प्राप्त नही होगे । मृत्यु तो आयेगी ही उसे कोई रोक नहीं सकता है । यह घण्टी तो समय होते ही बजेगी । किसी न किसी बहाने से वह आत्मा को इस नश्वर देह से अलग कर देगी । मृत्यु की नींद में तो एक दिन सभी को सोना है। जब तक आपकी ऑखे खुली हैं तब तक आप जीवित है, ऑखे बन्द होते ही आप किसी अन्य गति में होंगे कवि ने ठीक ही कहा है -

न जिन्दगी है न मौत है,
बस इतनी सी बात ।
किसी को नींद आ गई,
किसी की आँख खुली रह गई ॥

हमने अपनी आँखें खोल रखी है । इन ऑखों का काम है देखना आप अपने आप से पूछिये कि हम क्या देख रहे हैं । सच पूछो तो हम इन खुली ऑखों से अभी भी सत्य को नहीं देख पा रहे हैं । जानते हुए भी अनजान बनने की कोशिश कर रहे हैं ।

एक सेठ था । घर में पुण्य योग से अपार धन था । अनुचर हर समय हाथ बाँधे आदेशों की प्रतीक्षा मे रहते थे । उस अपार वैभव को देखकर सेठ का पड़ौसी मन ही मन ईर्ष्या में जलता रहता । उसका समय ईर्ष्या में ही बीत रहा था । एक दिन उसने सोचा इतना वैभव तो हमारे राजा के पास भी नहीं है । यदि उनको शिकायत की जाये तो वह सेठ का धन अपने अधिकार मे कर लेगा ! आखिर उसे राजा के पास जाने का मौका मिल ही गया । नमक मिर्च लगाकर सेठ के वैभव की बात बताई और कहा कि उतनी सम्पत्ति तो आपके राजकोष में भी नहीं है । राजा चिन्ता में डूब गया कि उसके राज्य में उससे बढ़कर भी कोई अपार वैभव का स्वामी है । वह सेठ की सम्पत्ति को हडपने की योजना बनाने लगा कि कैसे उसकी सम्पत्ति पर अधिकार किया जाये । उसे उपाय सूझ ही गया । एक दिन सेठ को राज सभा में बुलाकर कहा कि तुमको मेरे चार प्रश्नों के उत्तर एक सप्ताह में देने होंगे । यदि समुचित समाधन नहीं दे पाये तो तुम्हारी सम्पत्ति छीन कर देश निकाला दे दिया जायेगा!

सेठ ने कहा महाराज । मुझसे ऐसी क्या भूल हो गई है जो आप मुझसे ही प्रश्न पूछ रहे हैं । राजा ने कहा - यह हमारा सोच है हम किसी से भी कोई प्रश्न कर सकते हैं । तुम बहुत योग्य हो, सोचा तुमसे ही पूछा जाये । एक सप्ताह मे तुम्हे मेरी समस्या का समाधान करना है।

सेठ ने कहा - ठीक है बताइये कौनसे प्रश्न है ?

राजा बोला - ऐसी कौनसी वस्तु है जो घटती ही घटती है ? दूसरा प्रश्न यह है कि ऐसी क्या चीज है जो बढ़ती ही बढ़ती है ? तीसरा
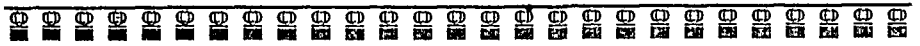
प्रश्न - वह कौन है जो घटती भी है और बढ़ती भी है ? एवं चौथा प्रश्न यह है कि वह क्या है जो न घटती है और न बढ़ती है ।

सेठ ने प्रश्न सुने और घर आ गया । रात भर प्रश्नों का हल सोचता रहा । चिन्ता के मारे नींद भी नहीं आई । समय निकला जा रहा था । सेठ का मन खाने-पीने में भी नही लगता । सम्पत्ति छिनने का भय उसे खाये जा रहा था । सेठ की पुत्रवधू बड़ी विचक्षण बुद्धि की महिला थी । अपने श्वसुर की चिन्ता उससे छुपी नहीं रही । चिन्ता को तो चिता से भी ज्यादा भयानक माना गया है क्योंकि चिन्ता की आग में से तो धुवां भी नहीं निकलता और आदमी जलता जाता है । पुत्रवधू ने पूछ ही लिया । पिताश्री ! आप जबसे राजा से मिलकर आये हैं आपको उदासी ने घेर लिया है । इसका क्या कारण है ? सेठ ने सारी बात से अपनी पुत्रवधू को अवगत कराया । पुत्रवधू ने कहा - आप चिन्ता छोड़े एक सप्ताह पश्चात् मैं स्वयं आपके साथ चलकर इन प्रश्नों के उत्तर दूंगी।

आखिर वह दिन आ ही गया । सेठ अपनी पुत्रवधू के साथ राजसभा में पहुँचा । राजा ने उत्तर देने के लिए कहा तो सेठ बोला - राजन् ! ऐसे प्रश्नों के उत्तर तो मेरी पुत्रवधू ही दे देगी । राजा बोला - ठीक है, बताइये - वह क्या है जो घटती ही घटती है ?

पुत्रवधू बोली - राजन् ! आयुष्य घटती ही घटती है । मनुष्य सोचता है कि उसकी उम्र बढ़ रही है, समय आराम से निकल रहा है, उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि शरीर रूपी इमारत को कालरूपी तूफान एक दिन ढहा देगा । कहा भी जाता है 'आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलम्' मनुष्य की आयु जल में उत्पन्न बुलबुलों के समान है जो बनते हैं और शीघ्र ही समाप्त हो जाते है । जीवन में समय मिला है इसे व्यर्थ मत जाने दो । आपकी आयु प्रतिपल घटती ही जा रही है ।

राजा ने कहा - मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ । अब दूसरा प्रश्न यह है कि वह क्या है जो बढ़ती ही बढ़ती है ? पुत्रवधू बोली - राजन् तृष्णा हमेशा बढ़ती ही बढ़ती है । वह कभी भी कम नहीं होती हैं । कहा भी जाता है - 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।' अर्थात् तृष्णा कभी वृद्ध या कमजोर नहीं होती किन्तु हम तृष्णा की पूर्ति करते-करते स्वयं
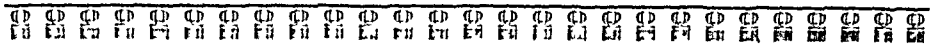
वृद्ध या कमजोर हो जाते हैं । तृष्णा के कारण ही आज हाय-हाय बढ़ रही है । जिसके पास एक बंगला है वह दूसरा बनाने की सोचता है एक फैक्ट्री है फिर भी दूसरी एक और लगाने का विचार करता है । उसकी इच्छाएं बढ़ती जाती है । इच्छा तो अनन्त आकाश की भांति होती है । आकाश का कोई ओर छोर नहीं है, तो इस तृष्णा की भी यही स्थिति है । एक की पूर्ति होने पर दूसरी वस्तु पाने की इच्छा बढ़ जाती है । जीवन में यदि शान्ति चाहते हो तो सर्वप्रथम इस तृष्णा को शान्त कर दो । किसी ने पूछा कि संसार में दरिद्र कौन है ? ज्ञानी ने उत्तर दिया - जो तृष्णा से ग्रसित है वही दरिद्र है । यह तृष्णा सदैव अमर बेल की भॉति बढ़ती ही रहती है । राजा ने अब पूछा - वह क्या है जो घटता भी है, और बढ़ता भी है । सेठ की पुत्रवधू ने कहा - राजन्! यह जगत ऐसा ही है । यह घटता भी है और बढ़ता भी है । अनेक आत्माऍ शरीर धारण कर यहॉ आती है और पुन: काल के मुँह में चली जाती है । जो अविवेकी आत्माएं होती है वे मोहग्रस्त होकर धर्म के पथ से विचलित हो जाती है, विमुख हो जाती है, वे गिरते गिरते मिथ्यात्व दशा को प्राप्त हो जाती है । उसका संसार तो बढ़ता ही बढ़ता है, किन्तु कुछ भव्य-आत्मायें ऐसी होती है जो इस संसार रूपी रंगभूमि पर अपने जीवन नाटक में पुरुषार्थ के बल पर कर्मो का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त हो जाती है उसका संसार घटता जाता है । इसे जानकर मैं कह सकती हूँ कि यह संसार घटता भी है और बढ़ता भी है ।

राजा उस नारी रत्न से प्रश्नों के उत्तर सुन अत्यन्त प्रभावित हो रहा था बोला - बेटी वह कौनसी वस्तु है जो न घटती है और न बढ़ती है ? सेठ की पुत्रवधु ने कहा - राजन् ! विधि का विधान न तो घटता है और न बढ़ता है । जो होने वाला है वह तो होकर ही रहता है । मनुष्य सोचता कुछ है एवं होता कुछ और है । यह सब कर्मो का विधान है । इसमें किसी का वश नहीं चलता । जीवन में यही सोचकर मानव को धर्म में मन को लगाना चाहिए । संकल्प-विकल्प को त्यागकर समभाव से जीवन को व्यतीत करने की चेष्टा करनी चाहिए । सत्कर्म में समय लगाते हुए आत्मस्वरूप को पहचानना चाहिए । इस दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करके भव बन्धन से मुक्ति का प्रयास करना चाहिए । प्रत्येक

प्राणी एक स्वतंत्र आत्मा है । यही आत्मा अपने कर्मबन्ध से मुक्त होकर सिद्धत्व को प्राप्त होती है । जैसे सूर्य पर बादलों का आवरण आने पर अंधेरा दिखाई देता है उसी प्रकार आत्मा पर कर्मो का आवरण होने पर उसका परमात्म स्वरूप दिखाई नही देता । उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा भी है -

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूड सामली ।
अप्पा काम दुहाधेणु, अप्पा में नंदणं वणं ॥

अर्थात् आत्मा वैतरणी नदी एवं कूटशाल्मली वृक्ष के समान दुःखदायी है और यही आत्मा कामधेनु और नन्दन वन के समान सुखदायी भी है । यदि आत्मा पाप में प्रवृत्त है तो वह जीवन के लिए कष्टदायी है और सत्कर्म में प्रवृत्त है तो वह सर्वसुख प्रदाता है । यह भौतिक चकाचौंध चार दिन की चांदनी है । यह यौवन थोड़े दिनों का है इसमें यदि आत्मबल को जगाकर परमात्म स्वरूप को प्राप्त नहीं किया तो फिर वृद्धावस्था में कुछ भी नहीं कर पाओगे । आत्मबल से बढ़कर दूसरी शक्ति नहीं है। निर्वासित राम के पास वन में क्या था ? उनका आत्मबल । महात्मा गांधी शरीर से बहुत ही कमजोर थे मगर आत्मबल के धनी थे ! इस आत्मबल के कारण ही राम ने रावण पर और गाधी ने अंग्रेजों पर विजय प्राप्त की । उस आत्मबल के कारण ही उनका नाम इस संसार मे अमर है।

अभी आपके पास समय है । इस समय का उपयोग जीवन-निर्माण मे करने की जरूरत है । इस शरीर रूपी मन्दिर की बाहर से तो हम सफाई कर रहे है । सुगन्धित साबुनों, क्रीम, इत्र, फुलेल का उपयोग कर चमकाने का प्रयास कर रहे है मगर अन्दर इस तन रूपी देवालय में जो देव विराजमान है, उसकी ओंर हमारा ध्यान नही है । यदि यही स्थिति रही तो अन्त में पछताने के अलावा आपके पास कुछ भी नहीं रहेगा ।

यौवन के इन सुनहरे अवसर को खोने से क्या मिलेगा ? थोडा विचार करो । आपकी आत्मा पर मोह की चादर ढकी है । मन और इन्द्रियो पर आपका वश नही चल रहा है । कामना और वासना ने आपके जीवन में डेरा जमा लिया है । पाप और ताप से आप पीड़ित है । सांसारिकता ने आपके आध्यात्मिक द्वार बन्द कर दिये हैं । आप अंधकार में भटक
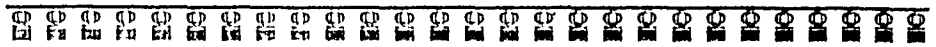
रहे हैं । इतना सब कुछ होते हुए भी स्वाध्याय के लिए आप पुस्तकों को छूते है । आपके पाँव धर्म स्थानों की ओर बढ़ते हैं । सन्त-सतियों को देखकर आपका हृदय कमल खिल उठता है । इसका मतलब यही है कि अब भी आपमें जीवन निर्माण की, आत्मकल्याण की अभिलाषा है - क्षमता है । इस क्षमता का समय रहते उपयोग करना आप पर निर्भर है । मानव जीवन पाया है, आत्म कल्याण का शुभ समय मिला है, इसे व्यर्थ नही जाने दें । यही श्रेयस्कर है ।
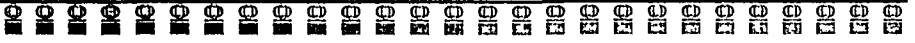
स्वार्थ हटायें : पुण्य जगायें

धर्मप्रेमी बन्धुओं !

मैं अपनी भावोर्मियाँ आपके समक्ष प्रस्तुत करूं इससे पूर्व मेरे स्मृति पटल पर एक प्रसङ्ग उभर रहा है । चार आदमियों ने मिलकर एक गाय खरीदी । उन्होंने आपस में निर्णय किया कि यह गाय एक-एक दिन सबके पास रहेगी और हम सब इससे दूध प्राप्त करेंगे । प्रथम दिन जिसके पास वह गाय रही, उसने उसका दूध निकाल लिया । दूध को प्राप्त करके वह अति प्रसन्न था ! अगले दिन वह गाय दूसरे साथी के पास पहुँचनी थी एवं दूध भी उसी को मिलना था । उसके मन मे यह विचार पैदा हुआ कि कल इस गाय का दूध तो मुझे मिलना नहीं है तो मैं क्यों इसे दाना-चारा डालूं ! गाय रातभर भूखी रहकर सवेरे दूसरे मित्र के घर पहुँचा दी गई । दूसरे मित्र ने भी खुशी-खुशी दूध निकाला । कल की अपेक्षा आज दूध की मात्रा कम हुई । दूध निकालने के पश्चात् उसके मन मे भी वही भाव पैदा हुआ कि यह गाय तो आज के लिए ही मेरे पास है कल तो तीसरे साथी के पास चली जायेगी तो मैं क्यों इसे घास डालूं। गाय दूसरे दिन भी भूखी रह गई । उसके लिए चारे-पानी की चिन्ता उसने बिल्कुल नहीं की । भूखी प्यासी गाय तीसरे के पास पहुँची । थोड़ा बहुत दूध निकला । उसने भी वही सोचा जो दो साथियों ने सोचा । आखिर चौथे दिन वह चौथे साथी के पास पहुँच गई । गाय की स्थिति बिगड़
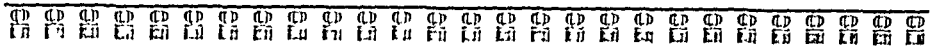
चुकी थी । गाय से जबरदस्ती दूध निकाला गया । शाम होते-होते गाय की दशा बिगड़ गई और रात मे उसने प्राण त्याग दिये । अगले दिन पहला आदमी चौथे के पास गया तो गाय को मृत देखकर आग बबूला हो उठा और बोला - तुमने यह क्या किया, गाय को भूखा रखकर मार दिया है। अब तक दूसरा और तीसरा साथी भी आ गया । सभी एक दूसरे का मुँह ताकने लगे ।

बन्धुओं ! इस संसार की यही स्थिति हो रही है । जहाँ सब लोग अपना स्वार्थ पूरा करने में लग जाते हैं वहाॅ प्रेम व दया का स्रोत सूख जाता है । मन में स्वार्थ का भाव जागने पर लोग अपनो से भी हाथ खींच लेते हैं । जहाॅ स्वार्थ सिद्ध होता है, उसकी पूर्ति होती है - वहाॅ लोग समर्पण का भाव प्रदर्शित करते है । उसके पश्चात् कोई किसी को नही पूछता ।

इस युग में स्वार्थ की भावना कुछ अधिक ही बढ गई है । स्वार्थी व्यक्ति अपनी स्वार्थ-सिद्धि तक ही किसी का साथ निभाता है । ज्यों ही उसका स्वार्थ पूरा हुआ वह उसका साथ छोड़ देता है । ऐसा व्यक्ति कभी किसी का मित्र नहीं हो सकता । जिस दिन स्वार्थी व्यक्ति का उद्देश्य पूरा नहीं होता वह अपने मित्रों का साथ इस प्रकार त्याग देता है जैसे वृक्ष के सूखने पर पक्षी उसका साथ छोड़ देते है । ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों के आचरण को देखकर ही रहीम जी ने कहा है -

काम पड़े कुछ और है, काम सरे कुछ और ।
रहिमन भंवरि के भए, नदी सिरावत मोर ॥

अर्थात् स्वार्थी व्यक्ति का जब किसी से कोई काम पड़ता है तो बडा मधुर व्यवहार करता है, चरणों में गिर पड़ता है मगर काम पूरा हो जाने के पश्चात् उसका व्यवहार ही बदल जाता है । वह इस प्रकार व्यवहार करने लगता है, मानो सामने वाले को जानता ही नहीं हो । लोग विवाह के समय दूल्हे के लिए मोड़ लाते हैं, उसे सिर पर बॉधते है । मोड़ से दूल्हे को सजाते हैं । विवाह की रस्म पूरी हो जाने पर उस मोड की कोई पूछ नही रहती । उसे नदी में बहा देते हैं । सोचते हैं कि
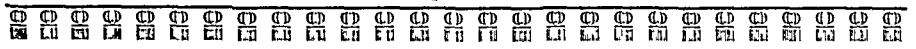
अब हमारा इस मोड़ से क्या लेना, हमारा काम तो हो गया । फेको इसे किसी नदी में जाकर ! यह सब स्वार्थी वृत्ति के कारण ही होता है । हर व्यक्ति अपने स्वार्थ मे लगा है । आकाश में बादलों को उमड़ता हुआ देखकर माली यह विचार करता है कि हे भगवान ! वर्षा हो जाये तो मेरे बाग में हरियाली हो जायेगी । धोबी सोचता है कि वर्षा हो गई तो मेरे धुले हुए कपड़े सूख नहीं पायेंगे ।

एक पिता ने अपनी तीन पुत्रियों की शादी एक ही ग्राम में की। एक दिन वह पुत्रियों से मिलने का विचार करके उनके ग्राम में पहुँचा। तीनो पुत्रियो के घर में अलग-अलग कार्य होता था । एक के घर खेती का काम था, दूसरी के घर पर कुम्हार का एवं तीसरी के घर पर जुलाहे का काम था । पिता सबसे पहले कुम्हार वाले घर मे पहुँचा । पुत्री ने पिताजी का स्वागत करके बैठाया और बोली - देखो हमारे मिट्टी के बर्तन बनकर तैयार पड़े है उन्हें पकाना है । आकाश मे बादल हो रहे है भगवान से आप भी प्रार्थना करो कि वह वर्षा ना करे वरना हमारी सारी मेहनत मिट्टी हो जायेगी । पिता ने कहा - ठीक है, मैं तुम्हारी दूसरी बहिन से मिल आता हूँ । वह किसान के घर पर गया । पुत्री बोली - पिताजी बहुत अच्छा किया जा आप आ गये । देखिये, वर्षा नही होने से हमारे तो खेत सूखते जा रहे हैं । वर्षा के लिए हम अखण्ड जाप कर रहे है, आप भी बैठकर भगवान से प्रार्थना कीजिए कि जल्दी वर्षा करें । पिता ने कहा - पुत्री ! मै तुम्हारी बहिन से मिलकर आता हूँ । वह तीसरी के घर पहुँचा । वहॉ पर जब वर्षा की बात चली तो वह बोली - पिताजी हमें तो कपड़े रगने थे, वे रंग लिए है । अब वर्षा हो या न हो हमारे क्या फर्क पड़ता है । पिता ने अपना सिर थाम लिया और सोचने लगा कि सब अपने-अपने स्वार्थ में लगे है । एक दूसरे की चिन्ता यहॉ किसी को भी नही है ।

जो स्वार्थी है वे स्वार्थवश गहरे कर्मो का बन्ध करते है । अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञ होना ही मनुष्यत्व है । जो स्वार्थी है वह कृतज्ञ न होकर कृतघ्न होता है । लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि काठ की हंडिया दूसरी बार नहीं चढ़ती है । आज चारो ओर स्वार्थ का शंखनाद

सुनाई दे रहा है । स्वार्थ को पूरा करने के लिए कुत्ता भी भौंकना बन्द कर दुम हिलाने लगता है । अवगुण भी उस स्वार्थी को गुण दिखाई देने लगते है। मूर्ख की प्रशंसा करते हुए जिह्वा नहीं थकती । स्वार्थी व्यक्ति भरोसे के योग्य नहीं होते हैं । जिस प्रकार अंधकार होने पर स्वयं की परछाई साथ छोड़ देती है उसी प्रकार स्वार्थी विपत्ति के समय मित्र को पहचानने से भी मना कर देते हैं । इस स्वार्थ-भाव के कारण ही संसार में विद्रूपता बढ़ रही हैं । इसे देखकर मन बोल उठता है -

छली हो गये हैं मनुज पाखण्डी हो गये हैं,
राग, द्वेष, प्रपंच की एक मण्डी हो गये हैं ।

महाभारत रचने में अब देर नहीं दिखती,
भीष्म के सामने खडे शिखण्डी हो गये हैं ।

वर्तमान युग में दुर्योधनों से ज्यादा शकुनि और शिखण्डियों की संख्या है । उन्हें तो सिर्फ अपना भला करना है । अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं । दूसरों के शकुन बिगाड़ने हेतु स्वयं का घड़ा फोड़ने में भी लोग नहीं चूकते हैं । आजकल मित्र बनाने में समय नहीं लगता । जिसके पास धन है उसके सैकड़ो मित्र मिल जायेंगे। किसी को चाय की प्याली पिलाकर, किसी को थियेटर में ले जाकर तो किसी को पान खिलाकर मित्र बनाया जा सकता है । जिन्हें मुफ्त में खाने को मिल रहा है वे भी खिलाने वाले के प्रति बड़े दंभ से मित्रता की दुहाई देते मिल जायेंगे । ऐसे मित्रों से कोई लाभ होने वाला नहीं है । ये बनावटी मित्र आपके सुख में ही आपका साथ निभायेंगे जब इन्हें लगेगा कि अब तिलों में तेल नहीं है तो आपको खल की तरह उतारकर दूर फेंक देंगे ।

हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं । इस शरीर को सुबह शाम आप अच्छा खिला रहे हो तभी तक यह प्रफुल्ल रहेगा । यदि एक दिन के लिए भी इसकी उपेक्षा हो गई तो यह स्वार्थी हो जायेगा । मन कार्य करने का विचार करेगा पर हाथ-पॉव मना कर देंगे । यह शरीर भी आपका साथ निभाने वाला नहीं है । जिसके मन में स्वार्थ है वे मित्रता का निर्वाह भली प्रकार से कभी नहीं कर सकते।

किसी को भी अपना मित्र बनाते समय बहुत धैर्य की जरूरत है । चौराहे पर खड़े होकर चाय की चुस्कियाँ लेने वाले या पान की पीक थूकने वालों को आप अपना मित्र मान रहे हैं तो बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं । अरस्तू ने तो कहा है - जिसके बहुत से मित्र हैं, निश्चय जानों उसके एक भी मित्र नहीं है ।

जो मनुष्य स्वार्थ भाव से दूर हैं वे ही मित्रता का निर्वाह कर सकते हैं । आज घर, परिवार, समाज में स्वार्थ भाव की वृद्धि का कारण ढूँढ़ा जाये तो यह बात ही सामने आयेगी कि मनुष्य में राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढ़ गई है । राग-द्वेष से जो दूर हैं वही निःस्वार्थ भाव से रह सकता है । राग-द्वेष तो स्वर्ण एवं लोहे की बेड़ियाँ है । इनसे आबद्ध आत्मा दीन बनकर रह जाती है । बेड़ियॉ तो बेड़ियाँ ही होती है चाहे वह लोहे की हो या सोने की । लोहे की बेड़ियॉ पहनने पर मनुष्य स्वयं को अपमानित हुआ समझता है, लेकिन सोने की बेड़ी भी तो बन्धन ही है । मुक्ति चाहते हो तो दोनों बेड़ियों को तोड़ना होगा । ऐसा नही करने पर आत्मा दीन-हीन स्थिति में संसार का परिभ्रमण करती रहेगी । यह संसार तो एक महावृक्ष की भाँति है । राग और द्वेष इसकी जड़ें हैं, आठ कर्मदल इसकी शाखाएं हैं एवं किंपाक फल के कटु रस के समान इसका परिणाम भी कटु है । स्वाद की मधुरता के कारण मन इसका लोभी बनकर स्वयं को लुभा रहा है, वह आत्मभाव को भूल रहा है । यदि इससे मुक्त होना है तो सर्वप्रथम निःस्वार्थ भाव अपनाकर इस संसार वृक्ष की जड़ों को सुखाओ, पहनी हुई बेड़ियों को काट डालो । यह राग-द्वेष से उत्पन्न स्वार्थ भाव ही तमाम प्राकृतिक एवं नैतिक पापों का मूल है । सारे पाप स्वार्थ के वशीभूत होकर ही किये जा रहे है । स्वार्थी सदैव यही विचार करता है कि मुझे किसी प्रकार की हानि नहीं होनी चाहिए । दूसरे का नुकसान होता है तो होता रहे मुझे उससे क्या लेना ?

एक माली और कुम्हार मे मित्रता हो गई । एक साग-सब्जी एवं दूसरा घड़े बेचने शहर में जाता था । एक दिन दोनो ने विचार करके ऊँट खरीद लिया । एक तरफ उसके मटके और दूसरी तरफ सब्जियॉ रखकर दोनों शहर की ओर चल दिये । आगे-आगे माली बीच में ऊँट और ऊँट

के पीछे-पीछे कुम्हार चल रहा था । ऊँट को अपने एक ओर रखे हरे-हरे पत्ते दिखाई दिये तो वह गर्दन घुमाकर चलते-चलते ही पीठ पर रखी सब्जियों को खाने लगा । कुम्हार पीछे चल रहा था अतः यह सब देख रहा था । वह मन ही मन खुश भी था कि ऊँट माली का ही नुकसान कर रहा है । अपने मटके तो वह खा भी नही सकता । वह निश्चिन्त होकर चलने लगा । कुछ दूर चलने के पश्चात् ऊँट की पीठ पर रखे बोझ का संतुलन बिगड गया । सब्जियों का बोझ कम होते ही मटके वाला हिस्सा नीचे झुककर जमीन पर गिर गया । माली ने पीछे मुड़कर देखा तो उसे आश्चर्य हुआ कि उसकी आधे से अधिक सब्जियाँ ऊँट खा चुका है । माली ने कहा - भाई ! तुम तो पीछे थे ध्यान क्यों नही दिया ? कुम्हार बोला- ध्यान तो था मगर स्वार्थ की दीवार खड़ी होने के कारण मैं देखे को अनदेखा करता रहा । तुम्हारा तो आधा ही नुकसान हुआ मगर मेरा तो सब कुछ नष्ट हो गया है ।

स्वार्थ मनुष्य को अधा बना देता है । सभी प्रकार के प्राकृतिक व नैतिक पाप का मूल स्त्रोत स्वार्थ ही है । वर्तमान युग को स्वार्थी युग ही कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । राजनीति प्रशासन में जो भ्रष्टाचार हो रहा है, खेल प्रतिस्पर्धाओ मे मैच-फिक्सिंग का जो स्वर सुनाई दे रहा है, यह सब स्वार्थ के कारण ही है । इस स्वार्थ के कारण ही लोग राष्ट्रद्रोही बन रहे हैं । अपने सौ रुपयों के लिए दूसरों के हजारों का नुकसान करते हुए नहीं हिचकिचाते है । वह मित्रता, वह साझा व्यापार नहीं चल सकता जो स्वार्थ के आधार पर जुड़ा है । वह व्यक्ति आपका मित्र कैसे हो सकता है जो सामने आपकी प्रशंसा करे एवं पीठ पीछे निन्दा करे । ऐसा मित्र, मित्र नहीं बल्कि आस्तीन का साप ही होता है । यहाँ अनेक लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों की बुराई करके किसी के प्रिय होने की चेष्टा करते हैं । याद रखना चाहिए कि जो तुम्हारे सामने दूसरों की बुराई करता है वह तुम्हारी बुराई भी दूसरो के सामने अवश्य करेगा । ऐसे लोगों के लिए नीतिकारों ने कहा है -

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रिय वादिनं ।
वर्जयेत्तादशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

अर्थात् मुँह के सामने मीठी बातें करने वाले किन्तु पीठ पीछे छुरी चलाने वाले मित्र को विष के घडे के समान त्याग देना चाहिए ।

स्वार्थी व्यक्ति मानव जीवन के महत्त्व को भूलकर अपने हित साधन में लगा रहता है । स्वार्थ की पूर्ति करते हुए वह बाहर से फैलता जाता है । उसकी खुशी बढ़ती रहती है मगर वास्तविकता का पता लगने पर उसे पश्चाताप करना पड़ता है । किसी को अपना मित्र बनाने से पहले उसे अच्छी तरह परखने की जरूरत है ।

स्थानांग सूत्र मे चार प्रकार के घड़े बताए हैं ठीक उसी प्रकार इस ससार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं । जैसे - विष भरे घडे पर अमृत का ढक्कन, विष भरे घड़े पर विष का ढक्कन, अमृत भरे घडे पर विष का ढक्कन और अमृत भरे घडे पर अमृत का ढक्कन । इन घडों में चौथी श्रेणी का घडा ही उपयुक्त होता है । वह जैसा अन्दर होता है वैसा ही बाहर भी होता है । स्वार्थी एवं कपटी व्यक्ति विष से भरे घड़े पर अमृत के ढक्कन की भांति होते है । विपत्ति के समय उनसे कोई लाभ होने वाला नहीं होता है ।

इस स्वार्थ की आँधी मे आज भाई भी भाई को नही पहचानता है तो मित्र की तो बात ही दूसरी है । मित्रता यदि करनी है तो कृष्ण और सुदामा जैसी करनी चाहिए । मित्र को दुःख में देखकर कृष्ण का हृदय भर उठा, उसे अपने आसन पर बिठाकर के वे मित्र की दशा देखकर पश्चाताप करने लगे । नरोत्तमदास जी ने लिखा है -

देखी सुदामा की दीन दशा,
करुणा करके करुणानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुओ नहीं,
नैनन के जल सों पग धोये ॥

सच्चा मित्र तो अपने मित्र के लिए प्राणों तक की आहुति देने को तत्पर हो जाता हैं ।

एक मंत्री का राजा के साथ मन मुटाव हो गया । मंत्री ने तत्काल राज्य का त्याग कर दिया । वह वेश बदलकर दूसरे नगर मे रहने लगा।
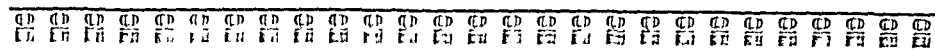
उधर राजा ने घोषणा कर दी कि जो मंत्री का सिर काटकर लायेगा उसे दस हजार स्वर्ण मुद्राए दी जायेगी । यह घोषणा सुनकर एक निर्धन व्यक्ति के मन में मंत्री का सिर काटकर राजा को सौंपने का भाव जागा । वह मंत्री को ढूंढता एक नगर में पहुॅचा । वहॉ उसे रात हो गई । एक साधारण से घर का उसने द्वार खटखटाया । भीतर से एक अधेड़ व्यक्ति ने द्वार खोला । आगन्तुक ने रात्रि विश्राम की वात कही तो उसे सस्नेह अन्दर बुलाकर उसका आतिथ्य सत्कार किया । नगर मे आने का कारण जानना चाहा तो वह व्यक्तिगत कार्य कहकर चुप हो गया । मेहमान का स्वभाव जानकर उस मेजबान ने कहा कि आप इसे अपना घर मानकर जव तक इस शहर मे रहे यहीं निवास करे । दोनों की उम्र समान ही थी । अत: शनै: शनै: दोनो में प्रगाढ मैत्री हो गई । आगन्तुक जिस उद्देश्य से यहाँ आया था उसकी पूर्ति नही हो पाई । मंत्री का पता नही लग पाया । एक दिन उसने अपने मित्र से विदा मांगकर अपने नगर लौटने की बात कही तो दूसरे ने कहा - मित्र ! तुम ऐसा कहकर मेरे हृदय को ठेस पहुॅचा रहे हो । तुम जिस कार्य से यहॉ आये हो वह तो अभी तक हुआ भी नही है । मुझको बताओ शायद मैं तुम्हारी कोई मदद कर सकूं । आगन्तुक मित्र ने कहा - भाई । मैं अब तुमसे क्या छिपाऊं ? मै बहुत ही निर्धन व्यक्ति हूॅ । मुझे अपनी पुत्री का विवाह करना है । हमारे राजा ने अपने पूर्व मंत्री का सिर काटकर लाने वाले को दस हजार स्वर्ण मोहरें देने की घोषणा की है । यह पाप कर्म है । मगर विवशता के कारण मैं मंत्री का सिर काटना चाहता हूॅ लेकिन अभी तक उसका पता नही लगा पाया । हमारे पूर्व मंत्री बहुत ही नेक पुरुष थे । मेरा स्वार्थ ही यह अनुचित कदम उठाने को मुझे विवश करता रहा है । मैं वर्ष भर आपके यहॉ रहा, आपने जो स्नेह दिया वह मै कभी भी भूल नहीं पाऊॅगा।

अरे । बस इतनी-सी बात के लिए तुम परेशान हो गये और एक वर्ष इस नगर मे निकाल दिया । मैंने तुमको अपना मित्र बनाया है । सच्चा मित्र तो वही होता है जो मित्र के दु:ख मे काम आये । तुमको धन की आवश्यकता है यह बात तुम मुझे पहले ही बता देते तो प्रतीक्षा नही करनी पडती । मंत्री का पता तो मुझे मालूम है । आगन्तुक ने कहा - भाई अब मेरी भावना ही बदल गई है । मै धन के लिए उस देवता सदृश

मंत्री की हत्या कैसे कर सकता हूँ । तुम मत्री को जीवित ही पकड़कर अपने राजा को सौप सकते हो, मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ । आगन्तुक मित्र ने कहा - सच कह रहे हो भाई ? कहाँ है वह मंत्री ?

अरे भाई । पहचानने की कोशिश करो । तुम जिसे ढूंढने आये थे वह मंत्री और कोई नही, तुम्हारा मित्र ही है । क्या तुम ही हो मंत्री? मुझे क्षमा करो भाई । मैने तुम्हारे लिए क्या-क्या सोचा था । यह कहकर वह अपने मित्र मत्री के पांवों में गिर गया और बोला - मित्र ! तुम महान् हो । मुझे क्षमा कर दो । दोनों मित्र गले मिल गये । अच्छे मित्र का साथ मिलना भी पुण्य को जाग्रत करने वाला होता है ।

जो स्वार्थी है वह अपने ही भले के अलावा कुछ भी नही सोचता है । जीवन का उद्देश्य तो सभी का हित करना होना चाहिए । वेदव्यास जी से पूछा गया कि आपने अठारह पुराण लिखे है इनका सार क्या है तो उन्होने कहा - 'परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम्' अर्थात् दूसरों की भलाई करना सबसे बडा पुण्य है एव दूसरों को पीड़ा पहुँचाना सबसे बडा पाप है । पुण्य की कमी के कारण यदि कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते है तो उनको चाहिए कि वे ज्ञानी पुरुषो, दीन-दु:खियो, अभावग्रस्त लोगों की सेवा करे । सेवा से भी अनन्त पुण्यो का उपार्जन होता है । पुण्य उपार्जन के नौ कारणों में सेवा भी एक है उसके लिए कुशाग्र बुद्धि एवं अगाध ज्ञान की आवश्यकता नहीं है । स्वार्थी व्यक्ति को छोडकर सभी व्यक्ति इस कार्य को कर सकते है । जो सेवा और परोपकार मे लगे है उनका जीवन तो उस मोमबत्ती एवं अगरबत्ती की तरह होता है जो स्वयं जलकर दूसरो को प्रकाश एवं सुगन्ध देती है ।

नि:स्वार्थ भाव से की गई सेवा ज्ञान प्राप्ति मे सहायक होती है। इससे यश की प्राप्ति होती है । सेवाभावी व्यक्ति अपमान एवं दुर्वचन को भी हँसते हुए सह लेता है । वह भगवान की भक्ति मानकर सेवा कार्य मे लगा रहता है । महात्मा गांधी हरिजनोद्धार के लिए उनकी बस्तियों मे जाकर सेवा कार्य करते थे । जो निर्धनो अपाहिजो, रोगियों की सेवा में लगते है वे मानव जीवन को सफलता की ओर अग्रसर करते हैं । जीवन मे पुण्य के सुमन खिलाने हैं तो स्वार्थ को त्यागकर नि:स्वार्थता
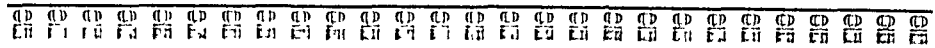
का भाव जाग्रत करना होगा । ससार में सभी से मित्रवत् व्यवहार करते हुए उनकी सेवा एव सहयोग हेतु तत्पर रहना होगा । मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि -

मन में ज्ञान के दीपक जलाते रहिये ।
सेवा के सुमन हर पल खिलाते रहिये ।
स्वार्थ के भाव तो बढ़ाते हैं पापों को -
जग का विप पीकर, अमृत पिलाते रहिये ॥

इस जीवन को सफल करना है तो बुराइयो के विष को शंकर बनकर स्वीकार कर लें और जग में सेवा का अमृत फैलाते रहे । ऐसा करने वाले का जीवन ही धन्य होता है । नि:स्वार्थभाव से संसार की सेवा करने वाले ही आत्मिक गुणों को प्रकट कर सकते है । जो साधु वेश धरकर भी स्वार्थसिद्धि में लग गया वह आत्मसिद्धि का अधिकारी न वनकर धिक्कारी ही बनेगा । स्वार्थी व्यक्ति मे गुण कम अवगुण ही अधिक होने से वे गुण भी ऐसे छिप जाते हैं जैसे नदिया सागर में जाकर अपना अस्तित्व खो देती है - वहाॅ जाकर छिप जाती है । स्वयं की एवं संसार की भलाई चाहते हो तो स्वार्थ को त्यागकर परमार्थ का पथ चुन लो । जो नि:स्वार्थ भाव से आगे बढ़ता है, वही मानव अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करता है । अन्त मे मै यही कहूँगी कि -

त्याग स्वार्थ की सकड़ी गलियाँ, राजमार्ग मैत्री का पाओ ।
सेवा और सहयोग बढ़ाकर, मानव भव में पुण्य कमाओ ॥
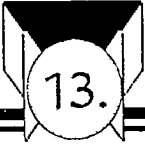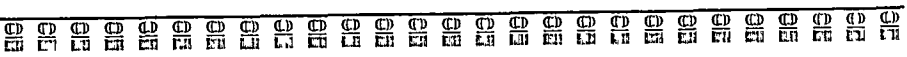
13. आत्मोन्नति : शुभ जीवन गति

बन्धुओं !

एक छोटी सी घटना याद आ रही है । एक बार तीन मित्र घूमने निकले । रास्ते में वे बीमार हो गये । तीनों को वही अस्पताल मे भर्ती कराया गया । उनकी हालत देखकर डॉक्टर ने कहा - भाई ! आप लोगों को एक भयंकर बीमारी हो गई है । आप अब कुछ ही दिनो के मेहमान हैं । ऐसी बीमारी वाला व्यक्ति कभी नही बचता है । तीनो मित्र एक दूसरे का मुँह देखने लगे । एक युवक ने कहा - ओह ! यह बात है अब मरना तो है ही । मै शेष बचे दिनो को खूब खाने-पीने, मौज मस्ती मे व्यतीत करूँगा । मैंने तो चार्वाक का सिद्धान्त पढा है कि 'यावज्जीवेत् सुख जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृत पिबेत् ।' अर्थात् जब तक जीना है, तब तक सुख से - मौज-शौक से जीओ ।

दूसरे साथी ने कहा - भाई ! मेरे पिताजी का जब अन्त समय आया तो वैं हरिद्वार में जाकर बैठ गये । मै भी आज वही जाकर बैठ जाऊँगा ! मै कल ही यहाँ से निकल जाऊँगा ! वह निराश भाव से वही पर बैठ गया ।

तीसरे साथी ने डॉक्टर को पुन: बुलाकर पूछा - क्या इस शहर मे और भी अस्पताल है ? डॉक्टर ने कहा - क्यो क्या बात है ? वह बोला मैं किसी अच्छे डॉक्टर से राय लेना चाहता हूँ । वह डॉक्टर उस रोगी का मुँह देखने लगा ।
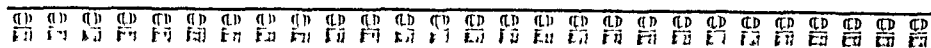
यह दृष्टान्त जीवन के एक बहुत बड़े सत्य को उद्घाटित करता है । प्रथम रोगी जीवन के प्रति भोगवादी प्रवृत्ति का हिमायती है वहीं दूसरा निराशावादी है जबकि तीसरा रोगी आशावादी दृष्टिकोण को जगाने वाला है । चाहे भोग हो या रोग हो दोनों ही प्रकृति जीवन को नष्ट करने वाली होती है । निराशावादी व्यक्ति तो जीवन के अंधकारमय पक्ष को ही देखता है । भोगवादी मौज-मस्ती में जीवन के सुनहले क्षणों को व्यर्थ मे ही नष्ट कर देता है । वही आशावादी सदैव जीवन के उज्ज्वल पक्ष को देखता है । आशा को जीवन का लगर कहा है जिसका सहारा यदि व्यक्ति छोड़ दे तो वह भव-सागर में डूब जायेगा । आशावादी जीवन को यूँ ही खोना नही चाहता । यह जीवन तो अल्पकाल के लिए मिला दिव्य उपहार है । इसको सार्थक करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है ।

हम सोचते है कि समय के साथ-साथ हमारी उम्र मे वृद्धि हो रही है । यह धारणा ही गलत है । जिस प्रकार शिव मन्दिर में शिव प्रतिमा पर रखे कलश मे से बूद बूंद जल गिरता है और वह कलश दिन भर में खाली हो जाता है, उसी प्रकार यह जीवन भी क्षण-क्षण रीत रहा है । ज्यों ज्यो समय निकलता जाता है, त्यो त्यों सांसो का भण्डार कम होता जाता है । एक बार जीवन चला गया तो यह जीवात्मा न मालूम किस-किस योनि मे भटकेगी । सूत्रकृताग सूत्र मे लिखा है –

नो हूवणमन्ति राइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं ।

अर्थात् जैसे बीती रात्रियॉ कभी नहीं लौटती, वैसे ही मनुष्य जीवन पुनः पाना कठिन है । हम जानते हैं कि गौतम स्वामी के जीवन का तो प्रत्येक क्षण आत्मा की उच्चतम आराधना में व्यतीत हो रहा था । वे चवदह पूर्व के ज्ञाता एवं चार ज्ञान के धारी थे । उनको भी भगवान महावीर ने चेतावनी देते हुए कहा – गौतम ! जीवन का एक-एक पल बीत रहा है । अतः क्षण भर का भी प्रमाद मत करो । गौतम स्वामी के समक्ष हम कहाँ ठहर पाते हैं ? उनके समक्ष हमारी साधना तो नगण्य है । आज हमको चेतावनी की अधिक आवश्यकता है । हमारा जीवन तो कषायों में उलझकर समाप्त होता जा रहा है । कषायो की गहरी नीद से जागकर उठना होगा । मुक्ति प्राप्त करना है तो पहले अपने आप को कषायों से मुक्त बनाना होगा। भोग को त्यागकर योग की ओर बढ़ना होगा । ये कषाय ही कर्म बन्ध के कारण है ।
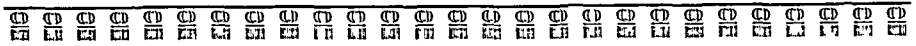
जो आत्मज्ञ होते है वे कषायों के जाल मे नहीं उलझते । वे उनके वशीभूत न होकर उन्हें जीतने की क्षमता रखते हैं । अपने ही बनाये जाल मे उलझकर मकड़ी तड़फती हुई मृत्यु को प्राप्त कर लेती है उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी इस संसार मे आकर मोह-जाल मे उलझकर जीवन को नष्ट कर देता है । अतः समय रहते हमें जागना होगा । शुभ कर्म करके जीवन का उत्थान करने की आवश्यकता है ।

एक स्थान पर तीन विकलाग खड़े होकर भगवान को दोष दे रहे थे । भगवान ने ही हमें इस दशा में पहुँचाया है । वे हमारी प्रार्थना नहीं सुनते हैं । एक सिद्ध पुरुष उधर से निकल रहे थे । उन्होंने कहा - भाई ! भगवान को दोष मत दो, यह तो अपने-अपने कर्मो के कारण हुआ है । तब तीनों ने कहा - ऐसी स्थिति में हम कैसे अच्छे काम करें ? अन्धे ने कहा - मेरे ऑखे होती तो जहाँ भी पाप-ताप देखता उसे ठीक करता । लॅगडा बोला - मै दौड़-दौडकर पीड़ितों की सेवा करता? बहरा बोला - किसी दुःखी की आवाज सुनते ही मैं उसके दुःखो को दूर करने पहुँच जाता । सिद्ध ने कहा - तुम्हारे विचार तो उत्तम है । मै तुम्हें अपने तप के प्रभाव से ठीक कर देता हूँ फिर देखता हूँ तुम क्या करते हो ! कुछ ही क्षणो में तीनों चंगे हो गये । शारीरिक कमियॉ दूर होते ही अन्धा सिनेमा हॉल मे चला गया । बहरा रेडियो के गीत सुनने लगा और लंगडा नगर को देखने के लिए चल दिया । तीनों शाम को एक स्थान पर मिले तो तीनों बहुत प्रसन्न थे । सिद्ध ने पूछा - आज आपने क्या कार्य किया ? सबने अपनी-अपनी बात बताई । सिद्ध बोला भाई ! तुम्हारी लोक-कल्याण की भावना का क्या हुआ ? तुमने तो आत्म-कल्याण भी नही किया है । तुम जैसे हो वैसे ही ठीक हो । सिद्ध उन्हे वैसा ही बनाकर आगे बढ़ गया ।

हमें अपने जीवन का समय रहते लाभ उठाना चाहिये । कपायो से मुक्त हुए बिना मुक्ति सभव नहीं है । एक कवि ने कहा है -

जो मन विपै-कपाय में, बरतै चंचल सोइ ।
जो मन ध्यान विचार सौं, रुके सो अविचल होइ ॥

तातैं विपै-कपायसौ, फेरि सु मन की वांनि ।
सुद्धातम अनुभौ विपै, कीजै अविचल आनि ॥
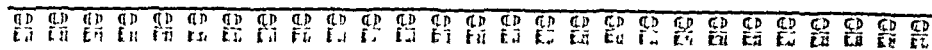
अर्थात् जो मन विपय-कपाय आदि में वर्तता है वह चंचल रहता है और जो आत्म स्वरूप के चिंतवन में लगा रहता है वह स्थिर हो जाता है । अत: मन की प्रवृत्ति को विपय-कपाय से हटाकर उसे आत्मानुभव की ओर लगाकर स्थिर करो ।

आत्मा की स्थिरता में ही उसका कल्याण है । हमें जो समय उपलब्ध हुआ है उसे सार्थक करने के लिए आगम वाणी एवं वीतराग भाव से जीवन व्यतीत करें । जीवन की समाप्ति निश्चित है । यह जीव हंस अवधि पूरी होने पर नश्वर देह में निवास नहीं कर पाता । आप तो जानते ही है - हंस मान सरोवर मे पाये जाते हैं । सामान्य जलाशयो मे बगुले मिलते है । श्वेत रंग के होने के कारण ये हस से मिलते जुलते ही होते हैं लेकिन वे हस नहीं होते हैं । हमारी यह जीवात्मा भी हंस के समान है जो संसार सागर में भटक रही है । इसका स्थान तो सिद्ध लोक रूपी मान सरोवर है, वहाँ पहुँचना हमारा कर्त्तव्य है । यह हंस अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा। कवि ने कहा भी है -

सुन सुन रे म्हारा लोभी जीवड़ा,
एक दिन हंसो उड़ जासी ।
आयो अकेलो जाये अकेलो,
साथ न कोई जा पासी ॥

यह आत्म-हस कभी भी उड़ सकता है । इस शरीर रूपी पिंजरे के सब द्वार खुले हैं । आयुष्य पूरा होते ही इसे जाना पड़ेगा यह जीवन तो डोर से जुड़े पतंग की भाँति है । धागा टूटा नही कि पतंग हाथ से गई । पतंग है तब तक धागा भी ऊपर उठता है । धागा टूटने पर पतंग भी नीचे आ जाती है और धागा भी गिर जाता है । हम इस जीवन में शरीर को पुष्ट बनाने के लिए - उसे ताकतवर बनाने के लिए, कसरत करते हैं, योग क्रियाएँ व आसन करते हैं, पौष्टिक पदार्थो का सेवन भी करते हैं मगर आत्मा को पुष्ट करने की ओर हमारा ध्यान नही जाता है। जो नाशवान है उसकी ओर तो हम पूरा-पूरा ध्यान देते हैं मगर आत्मा की ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है । इस मानव-भव में ही हम आत्मा का खयाल कर सकते हैं । आत्मा को पुष्ट करने के लिए धन-

सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है । मेवे-मिष्ठान्न की जरूरत नही है । आत्मा को शुद्ध बनाने हेतु कोई महगे साबुन या सर्फ भी नही चाहिए। इसे तो जरूरत है धर्म-साधना, गुरु-उपदेश, शास्त्र-श्रवण, त्याग व तप की। साधना का मार्ग तो बहुत ही सरल है । सरल मार्ग को टेढ़ा बनाने की आवश्यकता नहीं है । भगवान महावीर ने फरमाया है -

जहा सागड़ियो जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भगम्मि सोयइ ॥

एव धम्मं विउकम्मं, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ ॥

अर्थात् जिस तरह कोई गाड़ीवान जानबूझकर समतल राजपथ को छोडकर विषम मार्ग में पड जाता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने से शोक-पश्चाताप करता है उसी तरह धर्म को छोड़कर अधर्म मे पडने वाला अज्ञानी व्यक्ति जीवन की धुरी टूट जाने पर मृत्यु के मुख मे पडा हुआ पश्चाताप करता है ।

यह जीवन तो प्रतिपल परिवर्तनशील है । कल तक जिन्हे हम अपना मानते थे । एक पल भी उनसे दूर रहने की हमारी इच्छा नहीं होती थी वे हमें यहा छोड़ गये है । हम भी मेहमान है, एक दिन सबको छोडकर जाना है । हमें मृत्यु के बारे में चिन्ता नही करनी है बल्कि जीवन के चिन्तन की ओर आगे बढ़ना है । जीवन के रहते हुए ही आत्म विकास किया जा सकता है ।

स्वामी रामतीर्थ जापान की यात्रा पर जा रहे थे । जिस जहाज मे वे यात्रा कर रहे थे उसमे एक जापानी जिसकी अवस्था नब्बे वर्ष के करीब थी, चीनी भाषा सीख रहा था ! रामतीर्थ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होने उस जापानी से कहा - यह भापा आपके कब काम आयेगी, आपकी उम्र तो अब बहुत ही कम शेष है ! वह बोला भाई ! मै मरने के दिन से पहले नहीं मरना चाहता । कुछ नया सीखूंगा तो नया चिन्तन कर पाऊँगा। मै इस अमूल्य जीवन का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहता हूँ। मैं मृत्यु की चिन्ता करते हुए नही बल्कि आत्म चिन्तन करते हुए आगे बढना चाहता हूँ ।
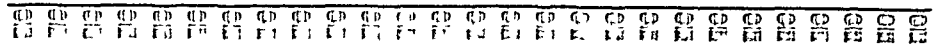
मृत्यु तो आयेगी, हमे उसकी चिन्ता न करके इस जीवन की ओर ध्यान देना है । जो जीवन की चिन्ता नही करता वह धर्म से दूर चला जाता है । हम बडे सौभाग्यशाली हैं कि हमको मानव शरीर मिला है। इस जीवन में ही आत्मा की सम्यक् आराधना संभव हो सकती है । कुछ लोग साधना के नाम पर वृक्षो पर उलटे लटक जाते हैं और जाप करते है । कुछ अपने चारो ओर आग जलाकर उसके मध्य बैठकर साधना करने की कहते हैं । कुछ दिसम्बर की कड़कडाती ठंड मे जलाशय मे उतरकर आराधना का स्वाग करते हैं । यह धर्माराधना नहीं हो सकती, यह तो काया को कष्ट देना मात्र है । ऐसा करने से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता । जब तक शरीर स्वस्थ रहेगा तब तक धर्माराधना भी सम्यक् गति से चलती रहेगी । हमारा शरीर स्वस्थ है, जीवन मे शान्ति है, चारों ओर सुखमय वातावरण है ऐसे समय का हमको त्वरित लाभ उठाने की चेष्टा करना चाहिए । कल के भरोसे रहने की आवश्यकता नहीं है । जिसने वर्तमान को नहीं संवारा उससे भविष्य को संवारने की क्या कल्पना की जा सकती है ।

हम इस संसार मे मेहमान बनकर आये है, इस संसार रूपी घर को छोड़कर जाना ही होगा । सरदार पूर्णसिंह ने बहुत ही सुन्दर बात अपने निबन्ध मे कही है - यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से गुजर जा, यहॉ पर घर बनाने का विचार न कर । किसी शायर ने भी कहा है -

इतनी न कर बेरूखी से ए जमाने ।
हम मेहमां है चंद दिनों के यहाँ रहने नहीं आये हैं ॥

इस संसार में आना-जाना लगा ही रहता है । इस संसार सराय में मुसाफिर आता है और चला जाता है । स्थायी रूप से कोई नही रहता। जो इस समय का सदुपयोग कर लेता है वह जीवन को सफल बना लेता है ।

एक पत्थर पर्वतों से नदी की धार में लुढ़कता हुआ आ रहा था। उसे देख किनारो ने कहा - अरे । इधर आकर कुछ विश्राम कर ले । किन्तु पत्थर चलता ही रहा, टकराता, संघर्ष करता । पत्थर कुछ दिन पश्चात्

घिसते-घिसते चिकना व गोलमटोल हो गया । एक दिन एक चिन्तक नदी मे स्नान कर रहा था कि उसकी दृष्टि उस गोल पत्थर पर पड़ी । उसने उसे उठाकर देखा और अपने घर ले आया । घर लाकर उसने उसे अपने कक्ष मे रख दिया । घर में जो भी आते वह उस पत्थर को देखकर कहते- यह पत्थर बहुत सुन्दर है, कहॉ से लाये हो ? इसे इतना सुन्दर आकार किसने दिया है । वह व्यक्ति बोला भाई ! यह प्रकृति का वरदान है। मैं इसे नदी में से उठाकर लाया हूँ । जल के और चट्टानों के थपेड़े खाते हुए इसने यह रूप पाया है । यह प्रकृति की अनुपम देन है ।

हमारा जीवन भी प्रकृति का अनुपम प्रसाद है । यदि इसे समय रहते संवार लिया किसी किनारे के बहकावे में नही पडे और आगे बढते रहे तो यह ससार की शोभा बन जायेगा । हमारे जाने के बाद भी हमारी स्मृति इतिहास के सुनहरे पृष्ठों में दिखाई देगी । जो यहाँ घर बसाने के चक्कर मे पड़ गया वह माया-मोह में उलझ कर आत्मा को बन्धन में डाल देता है । वह केवल शरीर तक ही सीमित रह जाता है । उसको नहलाता है, धुलाता है, अच्छे वस्त्र पहनाता है किन्तु आत्मा की ओर से उसे प्रकाश आता दिखाई नही देता है । इसीलिए तो मैं कहती हूँ भाई-

यह घर, गली, दुकान सब यहीं रह जायेंगे,
भोर के होते ही सब सपने ढह जायेंगे ।
इस संसार में सभी मेहमान हैं दो दिन के -
सबने कहा यही सच, हम भी कह जायेंगे ॥

ज्ञानी जिस सत्य को बता गये उस सत्य से ऑख मूंद लेना बुद्धिमानी नही है । मृत्यु कभी धोखा नही खाती है । आप चाहे चेहरे पर लाख चादर डाल ले इस संसार रूपी धर्मशाला का किराया पूरा होते ही यहा से निकाल दिये जाओगे । उत्तराध्ययन सूत्र मे लिखा भी है -

जहेह सीहो व मियं गहाय,
मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तम्मंसहरा भवंति ।
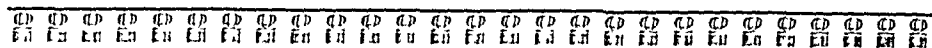
अर्थात् निश्चय ही अन्तकाल में मृत्यु मनुष्य को वैसे ही पकड़ कर ले जाती है, जैसे सिंह, मृग को ले जाता है । अन्त समय में माता-पिता या भाई-बन्धु कोई उसके भागीदार नहीं होते - उसे मौत से जरा भी नहीं बचा सकते ।

इस जीवन को संवारने मे, चरित्र को उज्ज्वल करने में हम जितनी देर करते जायेगे मृत्यु का पंजा उतना लम्बा होता जायेगा । चरित्र का जब तक विकास नहीं होगा, उसमें शक्ति नहीं आयेगी तव तक आत्म विकास नहीं हो पायेगा । चरित्र केवल व्यक्ति का ही नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र का भी विकास करता है । फ्रान्स के सम्राट ने अपने पड़ौसी देश हॉलैण्ड पर आक्रमण कर दिया । हॉलैण्ड की जन-धन-क्षमता फ्रान्स से बहुत कम थी । फ्रान्स सम्राट लुई को विश्वास था कि हॉलैण्ड एक ही दिन में आत्म समर्पण कर देगा । मगर बात विपरीत हो गई । फ्रान्स की सेना को पराजय का मुँह देखना पड़ा । सम्राट को बडा आश्चर्य हुआ। उसने अपने प्रधानमंत्री कालवर्ट से पूछा - हम इतने सम्पन्न और महान् राष्ट्र के निवासी है, मगर हम उस छोटे से देश को भी नहीं हरा सके।

सम्राट का प्रश्न सुनकर कालवर्ट ने कहा - महाराज ! किसी देश की महानता उसकी लम्बाई-चौड़ाई धन-सम्पदा, विशाल जन संख्या पर निर्भर नही है । यह तो उस देश के नागरिकों के चरित्र पर निर्भर है ।

चरित्र मानव को महान् बनाता है । जो समय हमको मिला है उसे चरित्र के उत्थान में लगाने से ही जीवन की सार्थकता है । जीवन को खाने, पीने एवं कमाने मे ही पूरा कर दोगे तो आत्म-जागृति कब करोगे, आत्मा की आराधना कब करोगे ? समय रहते अध्यात्म की नौका का सहारा लेने वाला ही संसार सागर से पार हो सकता है । अन्त समय में कोई साथ जाने वाला नही है । हमारे सत्कर्म ही हमारे साथ जायेगे। अपने आपसे पूछो कि मै जो कार्य कर रहा हूँ वह सत्कर्म है या दुष्कर्म है ? जिस कार्य को करते हुए हम निर्भय रहते हैं वही सत्कर्म है । जो व्यक्ति सत्कर्म में लगा है वह दुष्कर्म की ओर नही जाता । उसकी आत्मा जाग्रत हो जाती है । वह प्रमाद को त्यागकर हर पल चारित्र के उत्थान में सलग्न रहता है ।

जाना सबको है । इस संसार में तो सारे ही मेहमान है, मेजबान कोई नहीं है । बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट, बड़े-बड़े दानी, ज्ञानी, वैज्ञानिक, कवि, दार्शनिक, नीतिज्ञ आये और समय पूरा करके चले गये । उन्होने अपने जीवन मे समय का उपयोग किया । जनहित के कार्य किये । लाखों लोगो मे अपना आदर्श स्थापित कर प्रेरणा के स्रोत बने इसीलिए उनका नाम श्रद्धा से लिया जाता है । भगवान महावीर को ढाई हजार वर्ष से भी अधिक हो गये मगर आज भी जन मन की श्रद्धा के केन्द्र बने हुए हैं । उन्होंने समय का सदुपयोग किया । उन्होंने जीवन मे आत्मोन्नति की । आत्मोन्नति ही मानव जीवन की सच्ची प्रगति है । जो प्रमाद मे पड़ जाता है वह आत्मोन्नति नहीं कर पाता । भगवान महावीर ने गौतम से कहा -

दुम-पत्तए पंडुरए जहा, णिवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अर्थात् जिस प्रकार रात्रि व दिन के व्यतीत हो जाने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर झड़ जाता है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन है, अतः हे गौतम ! एक समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

दो दिन की जिन्दगानी में प्रमाद करने वाला पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता है । मनुष्य जीवन मिला है तो ज्ञान की साधना-आत्मा की आराधना को इस जीवन का उद्देश्य बनाने की आवश्यकता है । ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य की बुद्धि निर्मल तथा पवित्र भाव से युक्त बनती है । भगवद्गीता में भी लिखा है कि -

ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुनः ।

अर्थात् ज्ञान रूपी दिव्य अग्नि सभी कर्मो को भस्म कर देती है। जीवन का हर क्षण महत्त्वपूर्ण है इसलिए इसे ज्ञान की प्राप्ति में लगाना श्रेयस्कर होता है । मनुष्य के कर्म ही उसको ऊपर उठाते है और कर्म ही पतन के गर्त मे पहुँचाते है । जो व्यक्ति ज्ञान-सागर मे अवगाहन कर लेता है वह संसार सागर से भी पार उतरने की क्षमता अर्जित कर लेता है । हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने वाला मनुष्य इस लोक को तो बिगाड़ता है ही परलोक को भी बिगाड़ देता है ।
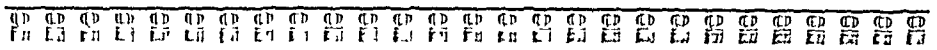
जीवन में सदैव आगे बढ़ने की भावना रखे । आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करना है । धर्म के प्रति आस्था और विश्वास जगाना है । यह आस्था एव विश्वास ही जीवन मे उल्लास को निमंत्रण देते है । आप आस्था एवं विश्वास को जाग्रत रखोगे तो जो भी चाहोगे वह स्वत: पूरा होता जायेगा । साहस के साथ, हिम्मत के साथ इस जीवन को सवारोगे तो जीवन महक उठेगा । कवि ने कहा भी है -

हिम्मत कीमत होय, बिन हिम्मत कीमत नहीं ।
करे न आदर कोय, रद कागज ज्यूं राजिया ॥

बन्धुओं हिम्मत के साथ आगे बढ़ो आत्मोन्नति करते चलो । वरना रद्दी कागज की भॉति फेंक दिये जाओगे । विभिन्न योनियो में भटकते फिरोगे । कोई पूछने वाला नही मिलेगा । जीवन को सॅवारने मे ही आत्मा का कल्याण है ! जय महावीर ।

खोल हृदय का द्वार:कर जीवन-उद्धार

धर्मप्रेमी महानुभावों ।

एक घटना से मै अपनी बात शुरु करने जा रही हूँ । किसी नगर में एक वैद्यराज जी ने चिकित्सालय खोलने का विचार किया । नगर के भीडभाड वाले क्षेत्र में दूसरी मजिल पर उन्होंने एक कमरा लिया । उसका उद्घाटन भी कराया गया ताकि नगरवासियों को पता चल सके । वैद्यराज जी ने चिकित्सा कार्य में सहयोग देने के लिए एक सहयोगी भी नियुक्त कर दिया । उस दिन सहयोगी ने कक्ष की अच्छी तरह सफाई कर दी। स्वय भी कमरे के बाहर ही अपना स्टूल लगाकर बैठ गए । वैद्यराज जी ने अपना निवास भी ऊपर ही बना रखा था । दिनभर बैठे रहने के पश्चात् भी उनके पास एक भी बीमार नहीं आया । वैद्यराज जी विचार मे पड़ गये । कमरों का किराया भी लगता है, एक सहयोगी को वेतन भी देना पडेगा ! ऐसे कैसे काम चलेगा । वैद्यराज जी उदास हो गये । शाम का समय होने वाला था । वैद्यराज जी ने अपने सहयोगी से कहा - शाम के भोजन की व्यवस्था हेतु तुम बाजार से सब्जी ले आओ । देखो, जाते समय नीचे सीढियों का द्वार बन्द करते जाना । सहयोगी ने कहा - सीढियो का द्वार तो आज खोला ही नही । वैद्यराज जी को आश्चर्य हुआ कि आज बीमारो के न आने का क्या कारण रहा । उन्होने सहयोगी से कहा- द्वार तो तुम्हे सवेरे ही खोल देना चाहिए था । सहयोगी बोला - मैं कैसे खोल देता, आपने कहा था कि जो मैं कहूँ वही कार्य करना । अपनी

मनमर्जी मत लगाना । आपने द्वार खोलने के लिए नहीं कहा था इसलिए मैंने नही खोला है ।

जिस प्रकार घर का द्वार वन्द होता हे तो कोई घर में प्रवेश नहीं कर सकता । यही स्थिति मन की भी है । जब तक मन के कपाट बन्द है अच्छे विचार अन्दर प्रवेश नही कर सकते । आप वर्षो से धर्म प्रवचन सुन रहे हैं । जिनवाणी का मधुर नाद आपके आस पास गूंज रहा है । जरा विचार कीजिए, आपने कितना अपने मन में उतारा है । आपने अपने मन का द्वार खोला भी है या ज्यो का त्यों बन्द ही रख रखा है । जिसने मन का द्वार खोल दिया वह जीवन मे वदलाव ला सकता है - आत्मस्वरूप को पा सकता हैं । भाषा के कवि ने कहा है -

जौ लगि या मन-सदन में हरि आवे किहि बाट ।
विकट लगे जौं लगि निपट, खुले न कपट-कपाट ॥

आपके मन पर भी जो कपट के किवाड़ लगे हुए हें उन्हे खोलना है तभी अपने ईश्वरीय स्वरूप को देख सकोगे । खोलने का मतलब यह नही कि आप द्वार खोलकर निश्चिन्त हो जायॅ । आजकल घर के मुख्य द्वार पर एक छोटा फाटक भी लगा रहता है जिसे कुत्ता फाटक कहने का प्रचलन है । इसके कारण मुख्य द्वार खुला भी रहे, तो भी अन्य जानवर आदि प्रवेश नहीं पा सकते । आजकल तो लोग अपने द्वार को बन्द ही रखते है, घर के बाहर घण्टी लगी होती है उसे बजाने पर घर का स्वामी पहले आगन्तुक को देखता है और उसके पश्चात् द्वार खोलता है । सजगता के होने पर अवाछित लोगो का प्रवेश घर में नहीं हो पाता है । आपको भी द्वार तो खोलना है साथ ही सजगता भी रखनी है । जीवन में यदि सजगता है तो अवांछित विचार मन में नहीं आयेंगे ।

मन पर नियन्त्रण बहुत आवश्यक है । जिस प्रकार लाड़ला बच्चा जिद्दी हो जाता है, वही स्थिति इस मन की भी है । यह स्वयं नहीं बदलना चाहता, इस पर नियंत्रण की जरूरत होती है । मन के कपाट ज्ञान के श्रवण एवं विवेक के जागरण से ही खुल सकते है । मन के कपाट पर सांकल नहीं है जो सहज ही खुल जाये । इसके कपाट तो धागे की गाँठ से बँधे हुए हैं । यदि मन की गॉठ खुल गई तो द्वार स्वय ही खुल जायेगा।

यह मन बहुत चंचल है । जिस प्रकार हिलती हुई सुई में धागा पिरोना असंभव है उसी प्रकार चंचल मन में ज्ञान का प्रवेश भी मुश्किल है । यदि मन में ही गांठें लगी हुई हैं तो फिर बात ही दूसरी है । आवश्यकता यह है कि शान्त भाव से मन की गॉठे खोली जाय । कहा भी गया है-

जह मक्कडओ खणमवि, मज्झत्थो अच्छिउं न सक्केइ।
तह खणमवि मज्झत्थो, विसएहिं विणा न होइ मणो ॥

अर्थात् जैसे बन्दर क्षण भर भी शान्त होकर नहीं बैठ सकता, वैसे ही मन भी संकल्प-विकल्प से क्षण भर के लिए भी शान्त नहीं हो सकता। शान्ति के लिए ज्ञान की जरूरत है । मन की गॉठ नहीं खुलेगी तो मस्तिष्क भी कुछ नहीं कर सकता । वह भी मन के ही नियन्त्रण में है !

एक सेठ प्रतिवर्ष अपने घर पर श्रावणमास में भागवत कथा का आयोजन करता था । इस हेतु विद्वान् पण्डितों को आमंत्रित करता । कथा के समय सेठ पण्डित के ठीक सामने बैठ जाता । घर में कथा चल रही थी अचानक सेठ के कुछ विशेष काम आ गया । उसे पाँच दिन के लिए बाहर जाना जरूरी था । सेठ ने कहा - पण्डित जी ! मैं तो बाहर जा रहा हूँ, आप पाँच दिन तक मेरे बच्चे को कथा सुना दे ताकि कथा का क्रम नहीं टूटे । कथा के बीच-बीच हुंकारा ही तो भरना है, वह भर देगा । मैंने उसे कल अच्छी तरह समझा दिया है कि कथा में हुंकारे के अलावा और किसी बात पर ध्यान नहीं देना है । पण्डितजी ने कहा सेठजी ! आप वर्षो से यह कथा सुन रहे हैं आप नहीं बदले तो आपका बच्चा पॉच दिन मे कैसे बदल सकता है । सेठ ने कहा - पण्डितजी मैं तो गांठ लगाना सीख गया था, मैं गांठ बॉधकर ही कथा सुनता था। लेकिन बच्चे को अभी गांठ लगाना पूरी तरह आया नहीं है आप थोड़ा ध्यान रखें । कथा के मार्मिक प्रसंगों पर ज्यादा चर्चा न करें ! मन की गाठे खुल गई तो फिर बॉधना मुश्किल हो जायेगा ।

सज्जनो ! जिसके मन की गांठ खुल गई वह फिर गांठ नही लगाता! जिसने एक बार मन का द्वार खोल दिया वह फिर कभी उसे बन्द नहीं करता है । आप यह क्यों भूल जाते हैं कि शरीर रूपी मकान आपका अपना नहीं है । यह तो किराये का है । इस पर रंग रोगन कराने की

आपको कहाँ जरूरत है ? कभी भी आपसे यह मकान खाली कराया जा सकता है । यह जीवात्मा कभी भी इस मकान को छोडकर जा सकता है, आप अपना ध्यान उस पर लगाइये ताकि वह भव्य-भवन मिले जिसको कभी भी मरम्मत की आवश्यकता ही नहीं होती । यह तव होगा जब आप वीतराग प्रभु की वाणी को अपने मन में स्थान देंगे मात्र श्रवण करने से कुछ नहीं होगा । जो श्रवण किया है उसे आत्मसात् भी करना आवश्यक है ।

मन की गांठ खुल गई तो आप जीवन के यथार्थ को जान लेंगे। एक ज्योति जो बाहर है वह और उससे भी अधिक प्रकाशमान ज्योति आपके अन्तर में प्रकट होने लगेगी । आपका जीवन ज्योतिर्मय हो जायेगा। इस जग मे जो कुछ अच्छा या बुरा है यह सव मन के कारण ही है। मन पर नियन्त्रण हो गया तो इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण हो जायेगा । आप वीतराग-वाणी को कान से ही नहीं मन से भी सुनोगे तो कुछ बदलाव आयेगा । दोनो कर्ण-कपाट के साथ मन को भी खुला रखो पर सावधानी रखो, चौकसी रखो । श्रद्धा के साथ परम पवित्र वाणी को सुना मगर आत्मसात् नहीं किया है तो फिर यही कहा जा सकता है -

चार कोस के मांडले, बहे वाणी के धोरे ।
भारी कर्मा जीवड़ा, रहे कोरे के कोरे ॥

एक योजन की सीमा तक चलने वाले तीर्थङ्करों के समवसरण में इस जीव ने भगवान की वाणी का श्रवण किया है, किन्तु जिस प्रकार ऊँट की चमड़ी से बना हुआ सींदड़ा, जो कि तेल भरने के काम आता है उसमें तेल भरा होने के बावजूद भी वह तेल को ग्रहण नहीं करता। वह कोरा का कोरा ही रह जाता है । यदि वीतराग-प्रभु की वाणी को सुनकर भी हमने जीवन में नहीं उतारा तो यह जीवन उस सींदड़े के समान ही है । हम जीवन-निर्माण की बातों को मन मे ग्रहण नहीं करते है तो फिर उन्हें सुनने का क्या प्रयोजन है । व्यक्ति अपने कानों से यदि वीतराग-वाणी को सुनकर उस पर अमल नहीं करते हैं तो उसके कान भुजंग की बांबी के समान है । प्रभु की वाणी को सुनकर उसे आत्मसात् करने का प्रयास करो । यदि उसके अनुरूप जीवन को ढालोगे तो जैसे
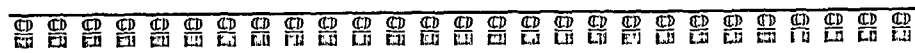
बरसने वाले मेघ की संसार प्रशंसा करता है उसी अनुरूप आपकी भी प्रशंसा करेगा, आपके गुणों का गुणगान करके यश प्रदान करेगा ।

जीवन मे आध्यात्मिक पूंजी बढ़ानी है, पुण्यों का सचय करना है, मुक्ति के द्वार तक पहुँचकर उसमे प्रवेश करना है तो मन का द्वार बन्द मत रखो । जिनवाणी-श्रवण का सार यही है कि हम मुक्ति को प्राप्त करें । कवि ने ठीक ही कहा है -

इस जीवन का ध्येय नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना।
हमें पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं ॥

यह अन्तिम सीमा मोक्ष महल तक ही पहुँचती है । जिसका अपने मन पर नियन्त्रण है, वह अपने भीतर आलोक पैदा कर लेता है । लेकिन जिसने मन को नही जगाया वह आत्मानन्द को नहीं पा सकता । वह बाहर के नश्वर जीवन में ही आनन्द मानता है । वह मानव-भव को पाकर फिर भटक जाता है । अंत में उसे अपनी मूर्खता पर पछताना ही होता है । गुरु तो ज्ञान दे सकते हैं, राह बता सकते है, किन्तु ज्ञान की पवित्र राह पर तो शिष्य को ही बढ़ना होगा ।

आपने सुना होगा - एक शिष्य गोचरी के लिए बाहर गया । गुरुजी आश्रम में बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे । तीन घण्टे बाद वह आया तो गुरुजी ने पूछा कहाँ ठहर गये थे ? शिष्य ने कहा - गुरुजी ! रास्ते में नट नाच रहे थे, उनका खेल देखने लग गया । आप होते तो आनन्द आ जाता ! गुरु ने कहा - हम साधु है इस प्रकार के खेल देखने हेतु वहाँ खड़ा रहना हमारी चर्या के प्रतिकूल है । शिष्य ने कहा - मुझे क्षमा करें अब ऐसी भूल नहीं होगी । जहाँ नट नाच रहा होगा अब मैं वहाँ नहीं ठहरूँगा ।

अगले दिन शिष्य को फिर किसी काम के लिए आश्रम से बाहर जाना पडा । उस दिन भी शिष्य बाजार से लौटने मे देर कर गया तो गुरुजी ने कहा - शिष्य ! आज तुमको फिर देर हो गई, कहाँ ठहर गये थे ? शिष्य ने कहा - गुरुजी आप सोच रहे होंगे कि मैं आज भी नटो का नृत्य देखने लग गया होऊँगा मगर ऐसी बात नहीं है, आज तो नटनियाँ नृत्य कर रही थी मैं उसे देखने को ठहर गया था ।
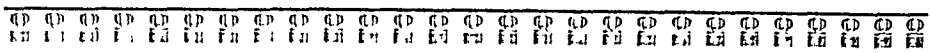
शिष्य की बात सुनकर गुरुजी ने अपना सिर पकड़ लिया । जो अज्ञानी होता है - वक्र और जड होता है, वह कोई न कोई बहाना बना ही लेता है । बहाने बनाने से आत्मा का विकास नही हो सकता । जब तक शील और सत्संस्कार पैदा नहीं होंगे तब तक यह मन अस्थिर ही बना रहेगा । मुक्ति को पाना है तो सांसारिकता की ओर उन्मुख होने के बजाय दान, शील, तप एवं भाव के द्वार खोलने होगे । इनके खुलने पर ही उत्तम संस्कारो का अन्तर्मन मे प्रवेश संभव है । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मृत्यु कभी भी आकर दस्तक दे सकती है । संसार के सभी भौतिक पदार्थ यहीं पर रह जायेगे, अन्तिम समय में जीव के साथ तो उसके शुभाशुभ कर्म ही चलेंगे । किए हुए कर्म ही फलदायी होते हैं ! हम शुभ कर्म करेगे तो शुभ का साथ होगा और अशुभ कर्म करेंगे तो अशुभ का साथ होगा । उत्तम भव प्राप्त करने के लिए जागरूकता जरूरी है ! कहा भी गया है -

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्यागृहे बन्धु जना श्मशाने।
देहश्चितायाम् परलोक मार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीवलोके ॥

अर्थात् जीव को अपने कर्मो के अनुसार यहाँ से प्रस्थान करना होगा । अतः इस जीवन में भलाई के जितने कार्य किये जा सकते हैं कर लेने चाहिए ! यह धन, भूमि भाई-बन्धुओं का साथ तो सिर्फ श्मशान तक ही है । यह बात आपको बार-बार कही जाती है । आपका मन इन बातो को जानने व समझने के लिए तैयार क्यों नही हो पाता ? कभी विचार कर देखिये । हमारे मन में शुभ को ग्रहण करने की उन्मुक्ता है तो मुक्ति पाना या सद्‌गति पाना मुश्किल नही है । यह जीवन तो क्षण क्षण परिवर्तनशील है । कवि ने कहा भी है -

बदलते हुए क्षण के साथ हमारा तन भी बदलता है,
बदलते हुए क्षण के साथ हमारा मन भी बदलता है,

बदलती हुई दुनियाँ में बदल जाता है सब कुछ -
आपका और हमारा जीवन भी बदलता है ॥

इस जीवन को बदलना आपके हाथ में है । मानव-जीवन के महल की नींव को मजबूत बनाने का प्रयत्न आवश्यक है । जीवन की अस्थिरता नींव को कमजोर बना देती है । भगवान महावीर की शिक्षाएँ गौतम के
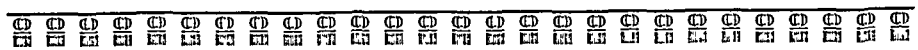
माध्यम से मानव मात्र को प्रदान की गई है । जो जाग्रत अवस्था मे है वह इस जीवन-धन की रक्षा कर लेता है ।

एक सेठ को जगल में डाकुओं ने पकड कर बन्दी बना लिया। सेठ के पास कुछ नहीं मिला तो डाकुओं ने कहा - इस सेठ से एक लाख रुपये की हुण्डी लिखवालो इसके बाद ही इसे छोड़ो । डाकुओं ने डरा धमका कर सेठ से एक कागज में लिखवा लिया कि पत्र वाहक को एक लाख रुपये का भुगतान कर दिया जाये । सेठ ने - मरता क्या न करता लिख ही दिया । लिखने के पश्चात् सेठ ने कहा - अरे भाई ! मैने तुम्हें लिखकर दिया है तो कम से कम मेरे लिखने का पारिश्रमिक एक रुपया तो मुझे दे दो । डाकू ने कहा - अभी हमारे पास रुपया कहॉ है । अच्छा, एक काम करो इस हुण्डी में तुम एक कम कर दो । सेठ ने एक लाख के अंक में से एक को हटा दिया और पत्र डाकू को दे दिया । डाकू ने वह पत्र अपने साथी को दे दिया । वह अश्व पर चढ़कर रवाना हो गया । डाकुओं ने सोचा अब इस सेठ को अपने पास रखने से क्या लाभ, उसने उसे जंगल में ही छोड दिया । सेठ जगल में आगे बढ़कर अन्यत्र पहुॅच गया । पत्रवाहक हुण्डी लेकर सेठ की दुकान पर पहुॅचा तो मुनीम ने कहा - भाई इसमें तो कुछ भी नही लिखा है । मात्र पॉच शून्य है अंक को तो काट दिया गया है । अंक होने पर ही शून्य का महत्त्व है । पत्रवाहक मुँह लटका कर लौट गया । उसे डाकुओं एवं उनके सरदार की मूर्खता पर रोना आ रहा था । साथ ही सेठ की चतुराई का भी ध्यान आ गया जिसने एक रुपये के स्थान पर अंक को ही काट दिया ।

यह एक अंक हमारा अपना मन ही है इसके पीछे ही सब शून्यो का महत्त्व है । जीवन मे इसकी महत्ता को हम भूल गये तो फिर पछताने के अलावा कुछ भी हाथ नही लगेगा । मन को मुक्ति के मार्ग में लगा लोगे तो सब कार्य ठीक ढंग से हल होते जायेंगे ! जीवन की सार्थकता इसी में है कि मन को दान, शील, तप व भावना से जोडा जाये । जीवन मे दान के भाव से कुछ देना खोना नही है, यह तो इस भव मे देकर भविष्य में पाना ही है । कहा भी गया है -

'खाया सो खो चालिया, दिया सो चलिया साथ ।'
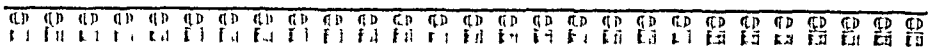
देने का भाव मन को उच्च बनाता है । गौतम बुद्ध भिक्षुओं के साथ भिक्षा हेतु निकले तो एक उद्दण्ड बालक ने उनके पात्र में मिट्टी डाल दी । बुद्ध उसे लेकर आगे बढ़ गये । बालक ने सोचा कि बुद्ध उसे दो बाते सुनायेंगे मगर वे तो 'कल्याण हो', कहकर आगे बढ़े गए । बालक को अपने कर्म पर शर्मिन्दगी हुई । बुद्ध के शिष्यों ने कहा - आपने उस बालक को कुछ कहा नहीं, उसे फटकारना चाहिए। बुद्ध बोले- उसमे देने का भाव जागा यह क्या कम बात है । भविष्य मे वह ओर अच्छा देने का भाव जगायेगा । शिष्य बुद्ध की बात सुनकर शान्त हो गये।

आप अपने मन में दान का भाव जगायेंगे तो उसमे उदारता फलीभूत भी होगी । दान के साथ मन मे शील को जगाये । उत्तम शील का भाव जाग्रत होगा तो कुकर्म से बचा जा सकता है । शील मनुष्य का उत्तम धन है, इसके तेज से जीवन मे विलक्षण सौन्दर्य आ जाता है । जीवन सद्गुणों की सौरभ से महक उठता है । मोक्षमार्ग का तृतीय सोपान तप को माना गया है । तप के कारण आत्मा शुद्ध एवं प्रकाशमय बन जाती है । इसके द्वारा अनादि काल से आत्मा पर चढ़ी कर्म-मैल की परत हट जाती है ।

एक जिज्ञासु ने भगवान महावीर से प्रश्न किया - प्रभु तप का जीव पर क्या प्रभाव होता है तो भगवान ने कहा -

तवेणं वोदाणं जणयइ

अर्थात् तप करने से जीव को व्यवदान या कर्मो का क्षय करके आत्मा को शुद्ध बना देने वाली शक्ति प्राप्त हो जाती है । जो मनुष्य तप करता है उससे उसका शरीर भले ही कृश हो जाय मगर आत्मा अत्यन्त दृढ़, निर्मल एवं सशक्त बन जाती है । जो मनुष्य मानव-भव पाकर तप का अनुष्ठान नहीं करता वह मूढ है । मुमुक्षु जीवात्मा आन्तरिक एवं बाह्य तप द्वारा अपने कर्मो का क्षय करने का प्रयत्न करती है ।

जीवन मे दानशील एवं तप के पीछे भाव को रखा गया है । यदि इन तीनों के पीछे शुद्ध भाव नहीं है तो सारे कार्य ढोंग बन कर रह जाते हैं । धर्म की प्रत्येक क्रिया के पीछे शुद्ध भाव का होना आवश्यक

है । अन्तःकरण की निर्मल भावना के साथ जो कुछ भी किया जायेगा वह आत्मा को उर्ध्वगामी बना देगा । भावकुलक में लिखा है -

मणि-मंत-ओसहीणं, जंततंवाणं देवयाणं पि ।
भावेण विणा सिद्धि, न हु दीसइ कस्स वि लोए ॥

अर्थात् मणि, मन्त्र, औषधि, तन्त्र और देवता की साधना जगत में किसी की भी भाव के बिना सफल नहीं हो सकती । भाव के योग से ही सभी वस्तुओं की सिद्धि होती है - भावना भव नाशिनी । इसलिए इस भव से पार होना है तो भावना को अपने मन में स्थान देना होगा । भावों के जागरण होने पर ही मन में परिवर्तन संभव है । भावना में ही भगवान का रूप होता है । कहा भी गया है -

जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ॥

हमारे भाव यदि परम पवित्र हैं तो हमें सभी स्थानों पर पवित्रता के ही दर्शन होंगे । अच्छे और बुरे भाव इस मन में ही पैदा होते हैं। मन यदि धर्म-कर्म की ओर प्रवृत्त है तो वह सदैव उच्च भाव ही जगायेगा। ज्ञानियों ने कहा भी है -

भवो जन्म-जरा-मृत्युः भावस्तस्य निवारणम् ।

अर्थात् जन्म-जरा-मृत्यु रूप भव का निवारण करने वाला भाव है। अतः मन में उठने वाले भावों को सदा पवित्र, निर्मल एवं शुभ रखना चाहिए । उत्तम भाव तभी जाग्रत होंगे जब मन पर आप नियन्त्रण कर सकेंगे, क्योंकि कहा गया है -

मन लोभी मन लालची मन चंचल मन चोर ।
मन के मते न चालिए पलक पलक मन और ॥

आप मन को शुद्ध बना लो । साधना के पथ पर चलते हुए मन को गांठों से मुक्त कर लो । गांठों में कुछ नहीं रखा है । गन्ने की पेड़ियों में रस होता है गांठों में नहीं । जीवन का कल्याण चाहते हो तो गांठों को त्यागना होगा । गाठों को छोड़कर आगे बढ़ेंगे तभी आत्म-रस का आनन्द प्राप्त होगा । जो आत्मानंद मे अवगाहन कर गया उसी का जीवन सफल है । आज बस इतना ही ! जय महावीर !

मन मेरे विचर : धर्म के धरातल पर

धर्म प्रेमी आत्मीय महानुभावो ।

श्रीमद् रायचन्द्र के पास एक जिज्ञासु पहुँचा । वहुत देर तक वह श्रीमद् से आत्मा-परमात्मा, जड़-चेतन के सम्बन्ध में चर्चाएँ करता रहा । आखिर में उसे समझाने के लिए उन्होने कहा - भाई ! कल्पना करो, तुम कही पर जा रहे हो, तुम्हारे पास एक हाथ में घी का भरा हुआ पात्र है और दूसरे में छाछ का भरा हुआ पात्र है । तुम चल रहे हो सड़क पर भीड़ बढ़ गई है । किसी व्यक्ति का धक्का लग गया है, तो अब बताओ उस समय तुम किस बर्तन को संभालोगे, पहले घी वाले बर्तन को या छाछ वाले बर्तन को ?

वह सज्जन मुस्कराते हुए बोला - मैं पहले घी वाले बर्तन को ही संभालूँगा, क्योंकि घी महँगा है । घी का मूल्य चुकाना पड़ता है । घी के सामने छाछ का क्या मूल्य है ?

श्रीमद् बोले - यही बात जड़ और चेतन के सम्बन्ध में है । अज्ञानी आत्माएँ छाछ को संभालने वाले के समान है जो तन, धन और परिजन रूप छाछ है - उन्हें ही संभालता है, जब कि तत्वदर्शी पहले आत्मा को संभालता है क्योंकि आत्मा से बढ़कर कोई अन्य तत्व नहीं है । पुरुषार्थ किये बिना इस आत्मा की संभाल नही हो सकती ।

संसार के समस्त प्राणियों का अज्ञान के कारण ही सारा पुरुषार्थ बाह्य पदार्थो से सुख पाने की ओर केन्द्रित रहता है । उनका यह पुरुषार्थ
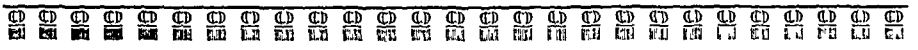
अनुकूल दिशा में नहीं होने पर वह सुखों के बदले दुःख ही अधिक प्राप्त करता है । जरा सोचें-सुख कहाँ है ? क्या अच्छा खाने पीने में सुख है ? क्या भव्य महल का निर्माण कर उसमें निवास करने में सुख है? ये सभी तो नाशवान है । जो स्वयं नाशवान है वे किसी को भी स्थायी सुख प्रदान नहीं कर सकते । उनसे मिलने वाला सुख भी क्षणिक होता है । अन्ततः उनका परिणाम भी दुःखप्रद होता है । शाश्वत सुखों की प्राप्ति तो सरलता, सन्तोष, नम्रता एवं क्षमा के माध्यम से ही हो सकती है । इन क्षणभंगुर वस्तुओं की प्राप्ति में हमारा जीवन जा रहा है । यदि हमारा पुरुषार्थ इन्हीं में पूरा हो रहा है तो वह व्यर्थ है । उत्तराध्ययन सूत्र मे रानी कमलावती राजा इक्षुकार से कहती है -

इक्को हु धम्मो नर देव ताणं ।
ण विज्जइ अण्णमिहेह किंचि ॥

अर्थात् हे राजन् ! इस संसार में निश्चय रूप से एक मात्र धर्म ही रक्षा करने वाला है, वही शरणभूत होगा । अन्य कोई पदार्थ शरण देने वाला या रक्षक नहीं है ।

जीवन में जितनी भी उपलब्धियाँ प्राप्त होती है, वे सब धर्म का ही प्रतिफल है । बल, बुद्धि व स्वस्थ शरीर - जो भी प्राप्त हुआ है उसका मूल कारण धर्म ही है । आगे हमे जो कुछ भी शुभ प्राप्त होने वाला है उसका एक मात्र कारण भी धर्म ही होगा । जिस प्रकार एक व्यक्ति जहाज के माध्यम से सागर की असीम जल-राशि को पार करके अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है, उसी प्रकार धर्म रूपी जहाज के माध्यम से संसार रूपी अथाह महासागर को पार किया जा सकता है । सिक्ख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरुनानक ने अपनी वाणी मे कहा है -

नानक नाम जहाज है,
चढ़े सो उतरे पार ।

वास्तव में एकमात्र धर्म ही ऐसी शक्ति है जो अनन्त काल से भिन्न-भिन्न योनियों में भटकती हुई आत्मा को दुःखों से छुटकारा दिलाकर मोक्ष मे पहुँचा सकती है । अतः धर्म को जानना होगा । धर्म को जानने के लिए सत्य को समझना होगा, क्योंकि धर्म का सत्य से गहरा सम्बन्ध

है । जो धर्म है वह सत्य हैं । सत्य की बात को ही ससार के लोग धर्म की बात मानते हें । महर्षि बाल्मीकि ने रामायण मे कहा है -

धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृता: प्रजा: ।
यस्माद् धारयते सर्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

अर्थात् धर्म सम्पूर्ण जगत को धारण करता है, इसीलिए उसका नाम धर्म है । धर्म ने ही समस्त प्रजा को धारण कर रखा है क्योंकि वही चराचर प्राणियों सहित संपूर्ण त्रिलोक का आधार है ।

धर्म के कारण ही मानव का मानस परिष्कृत होता हैं । उसे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का, हित-अहित का, पाप-पुण्य का ज्ञान होता है । यह कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है । कल्पवृक्ष तो भौतिक इच्छाओ की पूर्ति करता है मगर धर्म अनन्त सुखो को प्राप्त करने मे सहायक है । धर्मरूपी कल्पवृक्ष के लिए कहा गया है -

प्राज्यं राज्यं सुभगदयिता नन्दना नन्दनानां,
रम्यं रूपं सरस कविता चातुरी सुस्वरत्वम् ।
नीरोगत्वं गुण परिचय: सज्जनत्वं सुबुद्धि,
किं न ब्रूम: फल परिणति धर्मकल्प द्रुमस्य ॥

अर्थात् विशाल राज्य, सुभग पत्नी, पुत्रों के पुत्र-पौत्र, सुन्दर रूप, सरस कविता, निपुणता नीरोगता, गुणानुरागिता, सज्जनता तथा सुबुद्धि आदि ये सभी धर्मरूपी कल्पवृक्ष के फल हैं । जिह्वा से कहॉ तक वर्णन करे, यह अवर्णनीय फल का देने वाला है । जो ऐसे धर्म का पालन करता है, इस हेतु पुरुषार्थ करता है वही दिव्यगति को प्राप्त होता है । धर्म प्राप्ति के लिए बाहरी शक्ति को नहीं आन्तरिक पुरुषार्थ को जगाने की जरूरत है ।

एक साहूकार के पास सैकड़ों सिक्के इकट्ठे हो गये । आजादी से पूर्व भारत में चांदी के सिक्कों का प्रचलन था । जिस प्रकार वर्तमान में लोग कागज के जाली नोट छापकर बाजार में चला देते हैं उसी प्रकार धूर्त लोग तो हर युग में रहे हैं । उस जमाने में भी कुछ लोग चांदी के रुपयों के साथ जस्ते के रुपये बनाकर पॉलिश करके चला देते थे ।

साहूकार खोटे सिक्को को अलग करने का प्रयास करने लगा । उन सिक्को में खोटे सिक्के भी जोर से चमक रहे थे । साहूकार बार-बार उन्हें देखता मगर पहचान नही कर पा रहा था । साहूकार की लड़की बुद्धिमती थी, वह बोली - बाबा ! खरे-खोटे सिक्के की पहचान मात्र देखने से नही बल्कि पत्थर की शिला पर पटकने से होगी । साहूकार समझ गया, सिक्को को पटकना शुरु किया । जो खरी आवाज करता था वह खरा और जिसमें से आवाज नहीं होती उन्हें खोटा समझकर अलग कर देता । उसने समझ लिया कि बाहरी चमक दमक से खरे-खोटे का ज्ञान नही हो सकता । सही परख बाहर से नहीं भीतर से करनी चाहिए । भीतर से निकलने वाली आवाज ही सत्यता का बोध करा सकती है ।

धर्म मानव-जीवन का आन्तरिक तत्व है । इसकी कसौटी पर ही मानव की सही परख होती है । व्यक्ति का सही व्यक्तित्व उसके कृतित्व से ही झलकता है । इसीलिए तो मैं कहती हूँ भाई -

नेता को नहीं उसके नेतृत्व को देखिये ।
संत को नहीं उसके सम्यक्त्व को देखिये ।
किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को देखना बुरा नहीं -
व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके कृतित्व को देखिये ॥

जिसके मन-दर्पण पर कषायों की धूल जमी है तो उसे क्या देखना। वह तो मोहान्ध होकर गलत मार्ग का ही अनुसरण करेगा । वर्तमान युग के नेताओं की छवि धूमिल होने का कारण यही है कि वे मोहान्ध होकर भटक गये हैं । आजादी से पहले नेता प्रण और प्राण से राष्ट्र हित में लगे रहते थे । घर-परिवार से अधिक उन्हें समाज और देश की चिन्ता थी । राष्ट्र-धर्म की रक्षा में वे फांसी के तख्ते पर भी हंसते-मुस्कराते, गीत गाते चढ़ जाते थे । आज वह स्थिति कहॉ रही है ।

इस बढती हुई मोहान्धता का कारण सद्गुरु की शरण मे जाने का अभाव है । सद्गुरु भटके हुए मानव को धर्मोन्मुख कर, उसके आचरण को बदलने का पुरुषार्थ करते हैं । वे अपने सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक आत्मा को शुद्ध-बुद्ध बनाने की सामर्थ्य रखते हैं । जिसकी आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाती है उसी में ज्ञान-दर्शन-तप और चारित्र आदि के सद्गुणों

का प्रवेश होता है । संसार के सारे आकर्पण उसे तुच्छ लगने लगते है । उसका सारा पुरुपार्थ आत्म-कल्याण हेतु स्वाध्याय, तप एवं ज्ञान-साधना में लगता है । वाणी और व्यवहार मे विनम्रता का समावेश हो जाता है । जो ज्योतिर्मय पथ का पथिक बन जाता है उसे सांसारिक भीड़ की आवश्यकता ही नही होती हैं । वह आत्म-साधना के आनन्द-सागर में डूबा रहता हैं । उसे बाहर नहीं वल्कि अपने भीतर ही शान्ति मिलती है । वह भीड़ में नही वल्कि अकेले चलने में सुख अनुभव करता है । रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने गीत की एक पंक्ति मे यह एक ही वात कही है - एकला चलो रे, एकला चलो रे ।

अन्त समय मे तो सबको अकेले ही चलना है तो फिर उसकी तैयारी पहले से ही क्यो न कर ली जाये । सन्त-मुनिगण महापुरुप ससार में जन्म लेकर अकेले ही आगे बढ़ते हैं और चलते-चलते एक कारवा बन जाता है । महावीर अपने महल से अकेले ही उतरे थे, धीरे-धीरे उनके साथ हजारों स्त्री-पुरुप लग गये । महात्मा गाधी ने सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका मे अकेले ही सत्याग्रह का आन्दोलन चलाया, धीरे-धीरे सत्य की विजय होते देख हजारों लोग उनके अनुयायी बन गये ।

घर-परिवार के प्रति आसक्ति को विप के समान समझकर जो प्रभु भक्ति से सराबोर हो गये हैं, धर्म को अन्तर्मन में उतार उसके रंग में जीवन को रग लिया है, वे ही इस संसार-सागर से पार हुए हैं । ऐसी आत्माओं ने स्वयं के साथ-साथ पर का भी कल्याण किया है ।

धर्म को तो प्रत्येक प्राणी अपना सकता है । धनवान-गरीब, रोगी-निरोगी, स्त्री-पुरुष, भी धर्माराधना में स्वतंत्र है । धर्म के पथ पर अग्रसर होने वाले को उसका फल भी त्वरित प्राप्त होता है । याद रखो - धर्म सदैव सुख देने वाला एवं पाप सदैव दु:ख का कारण बनता है ।

अनंत-अनंत पुण्योदय से मानव भव की प्राप्ति होती है । यह ससार तो एक मेला है, जिसमें भाग लेने को चारों दिशाओं से आत्माएँ आती है । मेले में लोग एक दूसरे से मिलते हैं, कुशल क्षेम पूछते हैं और शाम को बिछुड़ जाते है । मेले में जाने वाला अपने साथ कुछ न कुछ खर्ची लेकर चलता है ताकि अपने शौक पूरे कर सके । जीवन के
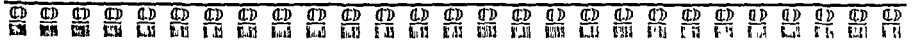
इस मेले में भी प्रत्येक जीव अपने पुण्यो को लेकर आता है । जो जाग्रत होते हैं वे जमा पूंजी में वृद्धि करके प्रसन्न होते है मगर अज्ञानी नई पुण्य रूपी पूंजी तो नही बनाते बल्कि पूर्व पूंजी का क्षय कर दुःखो मे गिर कर कष्ट भोगते हैं । वे व्यर्थ की चिन्ताओ में डूबकर धर्म-लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं । जो होना है वह तो होकर रहेगा फिर जीवन में यह मायूसी क्यों ?

एक लड़का सड़क के किनारे गेंद से खेल रहा था । गेद कभी-कभी सडक के बीच तक चली जाती थी । किसी ने उससे कहा - बेटे। सडक से दूर खेलो, सड़क पर रिक्शे, तांगे, मोटरें चलती है । कोई मोटर तुम्हारे ऊपर होकर निकल जायेगी तो क्या स्थिति होगी ? लड़का कुछ वाचाल था बोला - आप चिन्ता न करें । मेरे ऊपर रोज दस-बीस हवाई जहाज गुजर जाते है, आज तक बाल बांका नहीं हुआ तो एक दो मोटरे मेरा क्या बिगाड़ देगी । वे सज्जन लडके की बात सुनकर मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये । मन ही मन सोचने लगे, उसे चिन्ता नहीं है मगर मै उसके लिए चिन्तित हो रहा था ।

अज्ञानी व्यक्ति उस बालक के समान है जो अपना हित भी नही देखता किन्तु सज्जन व्यक्ति सदैव दूसरों की ही चिन्ता करते है । परोपकार का भाव उनके मन में जाग्रत रहता है । धर्म का उन्हें ज्ञान होता है । जैन शास्त्रों मे धर्म का जो स्वरूप प्रतिपादित हुआ है, उसके अनुसार अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म है । प्रत्येक मानव धर्म को सहज भाव से ग्रहण कर सकता है । यह प्रत्येक देश प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक मानव हेतु समान रूप से उपादेय है । दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है -

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवावि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सयामणो ॥

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मगल है । अहिंसा, सयम व तप उसके लक्षण है । जिसका मन सदा धर्म मे रमता रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं । जो मंगलकारक है वही धर्म है और वही सुख प्रदान करने वाला होता है । प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मंगल आखिर कौन है?
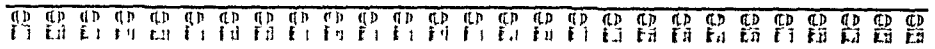
जीव के लिए मंगल क्या हो सकता है ? इस हेतु मैं एक ही बात कहूँगी कि "मम् पापं गालयति इति मंगलम्" अर्थात् पापों को जो नष्ट करे वही मंगल है । पाप नष्ट होंगे तो पुण्य में वृद्धि होगी, पुण्य-वृद्धि से सुखो मे अभिवृद्धि होती है, जिसके द्वारा जीव को सभी प्रकार की अनुकूलता प्राप्त होती है । साधना-आराधना के सहज अवसर उपलब्ध होते हैं । अहिंसा, सयम एवं तप की आराधना करने से पापों का क्षय होगा । पापो का क्षय करने वाले मानव को देव भी नमस्कार करके उसके पुरुपार्थ का अभिनन्दन करते हैं ।

जैन धर्म अहिंसामय धर्म है । इसमे हिंसा का कहीं भी स्थान नही है । हिंसा सदैव पीड़ा प्रदान करती है । उसकी चीख युगों-युगो तक सुनाई देती है । बीसवीं शताब्दी के दो महायुद्धों की पीड़ा आज भी संसार झेल रहा है । ये युद्ध विश्व शान्ति हेतु लडे गये थे । शान्ति तो हो नही पाई मगर युद्ध के बाद शान्ति समझोतो ने भविष्य के युद्ध की नींव अवश्य तैयार कर दी है । हिंसा कभी शान्ति नहीं दे सकती । अहिंसा की भावना ही विश्व मे प्रेम जाग्रत कर शान्ति का सुखद वातावरण बनाने में सक्षम है । 'आत्मवत् सर्वभूतेपु' की भावना ही विश्व हेतु मंगल कारक है । आंग्ल भाषा की एक सूक्ति याद आ रही है -

Do to others as you wish to be done to you.

यानि दूसरों के साथ वही व्यवहार करो जो तुम अपने साथ चाहते हो । 'आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' - जो अपने को प्रतिकूल लगे - अपने लिए अहितकर हो, वैसा आचरण दूसरों के साथ भी न करें । क्या इस दुनियां में ऐसा हो रहा है ? एक कवि ने ठीक ही कहा है -

आदमी की शक्ल से अब डर रहा है आदमी,
आदमी को लूटकर घर भर रहा है आदमी ।
आदमी ही मारता है मर रहा है आदमी,
समझ में आता नहीं क्या कर रहा है आदमी ?

आज आदमी को क्या हो रहा है ? उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि आकाश में उछाला गया पत्थर उसके सिर पर ही गिरेगा । जन्मजात

हिंसक प्राणी भी प्रारभ में हिंसक नहीं होता । शेर भी सर्वप्रथम माँ का दूध पीता है ! नाग भी वायु ग्रहण करता है । महापुरुषों ने तो संसार को **Live and let live** अर्थात् जीओ और जीने दो का सन्देश दिया था । युद्ध जीवन देने का नहीं बल्कि मारने का रास्ता है । क्या यह उचित है कि हम युद्ध की घोषणा कर दूसरों को मारकर स्वयं भी मारे जायॅ । भारतवासियों ने तो भगवान महावीर के सन्देश को हृदय में उतारा है इस कारण इतिहास गवाह है कि इस देश ने कभी दूसरे देश पर हमला नहीं किया । कवि के शब्दों में हम तो दुनियाँ वालों से यही कहते है –

तुम जीओ औरों को भी जीने दो,
यही तो है जिन्दगी का रास्ता ।
हमें नहीं युद्ध से है वास्ता ॥

जिन्होंने विश्व शान्ति का भाव जाग्रत किया है वे आज अहिंसा को पहचान चुके हैं । अहिंसक समाज का स्वप्न तभी सफल हो सकेगा जब संयम हमारे जीवन में उतरेगा । संयम का अभिप्राय है अपने आप पर नियंत्रण करना । मन, वचन एवं कर्म पर नियंत्रण रखना । दूसरों के नियंत्रण में रहना तो दासता है । स्वयं को स्वच्छन्दता से रोके रखना अर्थात् स्वानुशासन ही संयम का अनुसरण करना है । इसी के माध्यम से मानव धर्म के मार्ग में आगे बढ़ता हुआ लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । कहा भी गया है :

छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं ।

अर्थात् स्वच्छन्दता को रोकने से ही व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है, जिसने अपने आपको नियंत्रण में नहीं रखा है वह स्वयं परतंत्र है । आंग्ल भाषा मे भी कहावत है –

No man is free who can not command him self.

आज व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र सभी में स्वयं को नियंत्रित रखने का भाव जगना जरूरी है । यदि संसार के सभी व्यक्तियों मे संयम रूप धर्मभाव जाग्रत हो जाये तो संसार का रूप ही बदल सकता है । एक ऐसा विश्व-राज्य बन सकता है जिसकी कोई सीमा ही नहीं हो ।
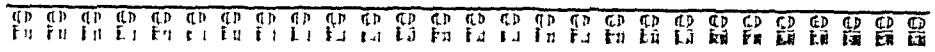
सभी एक साम्राज्य के नागरिक हों । सबका एक ध्वज और एक संविधान हो सकता है ।

इस विश्व-राज्य की कल्पना को साकार करने के लिए वर्तमान युग के बुद्धिजीवियो को, राजनेताओं को, धर्मानुयायियों को नये सिरे से तपानुष्ठान करना होगा, स्वार्थ के संसार से बाहर निकलना पड़ेगा । समाजोद्धारको को महावीर, बुद्ध एव गांधी की भाँति सुखमय संसार को ठोकर मारकर विश्व के कोने-कोने तक पहुँचकर धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रकट करना होगा । कष्टों मे तपकर ही आत्मा का कल्याण हो सकता है । कर्ममल से स्वयं को अलग रखा जाये तो आत्मा का कल्याण अवश्य ही होगा । हमें अपने मानदण्ड बदलकर स्वार्थ से बाहर निकलना होगा। विश्व में अशान्ति का कारण बढ़ती हुई स्वार्थ-भावना है ।

एक कार्यालय मे अधिकारी ने प्रवेश किया । अपनी टेबिल पर बैठते ही उसकी निगाह सामने रखे तार पर पड़ी । तार को खोलकर पढ़ा तो घबराकर खड़ा हो गया । ऑखों से ऑसू बह निकले ! पास खडे बाबू ने कहा - क्या हुआ श्रीमान् आपकी ऑखों में आँसू ?

अधिकारी ने कहा - गजब हो गया, मेरी माँ की अचानक हृदयगति रुकने से मृत्यु हो गई है । आज शाम को अन्तिम संस्कार किया जायेगा । मुझे आज इसी वक्त यहॉ से निकलना है । तीन दिन बाद वापिस आऊँगा तब तक सारा काम तुम देख लेना ।

बाबू ने अधिकारी के हाथ से तार लेकर कहा - आप चिन्ता न करें, मैं सारा काम देख लूँगा । विशेष बात होगी तो आपसे सम्पर्क कर लूँगा । यह कहकर वह तार को पढ़ने लगा तो उसकी ऑखे फटी की फटी रह गई, वह धम्म से कुर्सी पर बैठते हुए बोला - श्रीमान् ! मॉ आपकी नहीं मेरी मर गई है । यह तो मेरे भाई का तार है ।

अधिकारी ने कहा - अच्छा तुम्हारी माँ मरी है तो यह तार मेरी टेबल पर कैसे आया ?

इस पर पता आपका लिखा था । यह तो बहुत ही गजब हो गया । मुझे तो विश्वास भी नहीं हो रहा है !
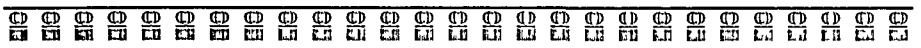
अधिकारी का चेहरा बदल चुका था । वह बोला – एक दिन सबको जाना पड़ता है । चलो, फाइलें रखो !

बाबू ने कहा – मुझे जाना पड़ेगा ।

कहाँ जाना पड़ेगा ? बूढ़ी माँ थी मर गई, देखते नहीं कितना काम पड़ा है । आज छुट्टी नहीं मिल सकती । बाबू अधिकारी का मुँह ताकने लगा ।

क्या यही मानवता है ? 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का उपदेश स्वार्थभावना मे पूरा नही हो सकता । धर्म को आचरण में उतारने पर जीवन का कल्याण है । जो स्वार्थ में डूबा है, उससे परकल्याण की कामना नहीं की जा सकती । धर्माचरण से ही आत्मा कर्ममुक्त बन सकती है ।

बन्धुओं ! अपने आपमें ऐसी क्षमता पैदा करने का प्रयास करो कि हमारा मन हर क्षण धर्माचरण में रत रहे । धर्म ही जीव का उत्तम शरण है । कहा भी गया है –

जरा मरण वेगेण बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठाय गई सरणमुत्तमम् ॥

अर्थात् जरा व मरण के प्रवाह मे डूबते हुए प्राणियो के लिए धर्म ही द्वीप है, गति है और उत्तम शरण का स्थान है । जो इस स्थान पर पहुँच जाता है वह विश्व बन्धुत्व का संवाहक हो जाता है । वह अपनी आत्मा के साथ-साथ संसार का भी कल्याण करता है । अपने विचारों को सम्बल देने के लिए एक कथा के माध्यम से प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करती हूँ –

एक विशाल जहाज में बैठकर लोग सागर-यात्रा कर रहे थे । समय गुजारने के लिए कुछ सज्जन धर्मतत्त्व की चर्चा करने लगे । एक व्यक्ति दूर बैठा चुपचाप उन तत्त्व वेत्ताओ के विचार सुन रहा था । अचानक सागर मे तूफान उठ गया । ऊँची-ऊँची लहरे जहाज को कँपाने लगी । तत्त्वचिन्तक व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ने लगे । लहरों के रूप में मौत उनके सामने तांडव कर रही थी । दूर बैठा व्यक्ति धर्म-चर्चा के प्रभाव से समाधि-युक्त हो गया । एक घण्टे बाद तूफान कमजोर हो गया । लोगों
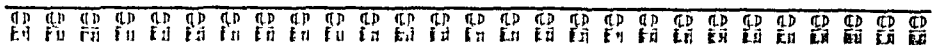
ने कहा- आज तो भगवान ने ही हमारी रक्षा की, ऐसा तूफान हमने अपनी जिन्दगी मे पहले कभी नहीं देखा !

तूफान शान्त होने पर उस भाई ने भी आँख खोलकर देखा - एक व्यक्ति ने कहा - कैसे आदमी हो ऑख वन्द करके वैठ गये । हमारे तो भय के मारे प्राण सूख रहे थे ।

वह बोला भाई । जव तक धर्म का मर्म एवं आत्म-समाधि का मुझे ज्ञान नही था तव तक मैं भी डरा हुआ था । आज आपकी तत्त्व चर्चा ने मेरा भय समाप्त कर दिया । तूफान उठते ही मैं अपने अन्दर के धर्मद्वीप पर जा बैठा । उस शान्त द्वीप तक कोई लहर नहीं पहुँच सकती, यह मैंने आज अनुभव कर लिया है । आज समाधि-भाव हेतु मेरे मन मे जगा पुरुपार्थ फलीभूत हुआ है । आपने मेरी आत्मा को अपने विचारों से जाग्रत किया, इस हेतु मै आपका आभारी हूँ ।

उसकी बाते सुनकर प्रश्नकर्त्ता लज्जित होकर इधर-उधर देखने लगा। धर्म की बातें करना सहज है किन्तु धर्म को जीवन में उतारकर उस ओर कदम बढ़ाना ही सच्चा पुरुपार्थ है । यदि मानव स्वार्थो से हटकर धर्म की राह मे गतिशील रहेगा तो वह अपना भी और विश्व का भी कल्याण करेगा । यह तभी संभव है जब मन धर्म मे स्थिर हो जाये ।
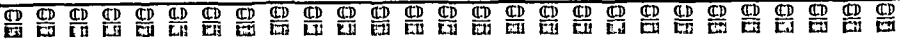
16. जगे बोध : मिटे क्रोध

धर्मप्रेमी आत्मबन्धुओ !

एक व्यक्ति जंगल मे से होकर गुजर रहा था । जगल के रास्ते में उसने एक वृक्ष के नीचे चार स्त्रियो को देखा । वह उनके समीप पहुँचकर बोला - ब्रहिनों ! आप कौन हैं ? क्या मै आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ? उन स्त्रियों ने अपना नाम क्रमशः - बुद्धि, लज्जा, हिम्मत एव तन्दुरुस्ती बतलाया । उस व्यक्ति ने पूछा - आपका निवास स्थान कहाॅ है ?

बुद्धि ने कहा - भाई । मेरा निवास तो मनुष्य के मस्तिष्क मे है । लज्जा बोली - मै लोगों की ऑखो में निवास करती हूँ । जरूरत पड़ने पर आती-जाती रहती हूॅ । हिम्मत ने गर्व से अपना सिर उठाकर कहा - मै हृदय में निवास करती हूॅ । मेरे कारण ही मनुष्य मुश्किल से मुश्किल कार्य को भी आसानी से पूरा कर लेते हैं । अन्त मे तन्दुरुस्ती की वारी आई तो वह वोली - मै तो लोगों के पेट मे रहती हूॅ । वहीं मेरा घर है । यदि मनुष्य मेरा अनुसरण करे तो उनको डॉक्टर, वैद्यों की शरण मे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

वह व्यक्ति उनका परिचय प्राप्त करके आगे वढ़ गया । कुछ ही दूर जाने पर उसे चार पुरुष मिल गये । उसने उनसे भी परिचय पूछा तो उन्होने अपना नाम क्रमशः क्रोध, लोभ, भय एव रोग वताया । पथिक

ने कहा - आपका निवास स्थान कौनसा है ? उन्होंने अपना निवास स्थान मस्तिष्क, आँख, हृदय एवं पेट बतलाया । यह सुनकर उस व्यक्ति को बडा आश्चर्य हुआ । उसने कहा - यह कैसे हो सकता है ? आपके द्वारा बताये गये स्थानों पर तो बुद्धि, लज्जा, हिम्मत एव तन्दुरुस्ती रहती हैं । यह सुनकर क्रोध ने कहा - हमारे पहुँचने पर उन्हें अपना स्थान छोड करके भागना पडता हैं । मुझे देखकर बुद्धि, लोभ को देखकर लज्जा, भय को आया जानकर हिम्मत और इस रोग को देखकर तन्दुरुस्ती नो दो ग्यारह हो जाती है ।

बन्धुओं ! इस छोटे-से दृष्टान्त में क्रोध को प्रथम स्थान दिया गया है । क्रोध बुद्धि का नाश कर देता हैं । बुद्धिहीन मनुष्य अपना ही नही बल्कि दूसरो के जीवन की बगिया में भी आग लगा देता है । बुद्धिमान मनुष्य तो क्रोध को अपने समीप फटकने भी नहीं देता । क्रोध भी कषाय का एक रूप है । जो विचार अन्तर्मन के भावों को कपैला बनाते हैं वे ही कषाय कहलाते हैं । क्रोध के आने पर मनुष्य की बुद्धि का सर्वप्रथम नाश होता है । क्रोध के कारण बुद्धि मस्तिष्क से पलायन कर जाती है । मनुष्य मनुष्यता के गुणों से वंचित हो जाता है । क्रोध मन में उठने वाली एक ऐसी चिनगारी है जो पहले स्वयं को जलाती है और उसके पश्चात् दूसरों को सन्तप्त करती है ।

जब कभी किसी मनुष्य के अहंकार पर आघात होता है तब उसके मस्तिष्क में भयंकर झंझावात उठ खडा होता है । ऐसा मनुष्य अस्थिर बुद्धि वाला भी कहा जा सकता है । जब तक बुद्धि हावी है तब तक क्रोध का प्रवेश नही हो सकता । क्रोध के आने पर बुद्धि अस्थिर हो जाती है । अस्थिर बुद्धिवाले मनुष्य अपने मनोऽनुकूल कार्य के न होने पर तत्काल क्रोध के शिकार हो जाते है । वे अपनी अपेक्षा को उपेक्षित होते नही देख पाते । इस संसार में किसी व्यक्ति के पास चाहे कितनी भी सम्पत्ति हो, वह भौतिक सुख-सुविधा से सम्पन्न भी हो, प्रतिदिन, धार्मिक क्रियाएँ भी पूरी करता हो, खूब पढा-लिखा विद्वान् भी हो किन्तु यदि वह अस्थिर बुद्धिवाला है तो वह सब कुछ होते हुए भी महादरिद्र ही है । अपनी इस अस्थिर बुद्धि के कारण ही वह अपने आस-पास मित्र कम
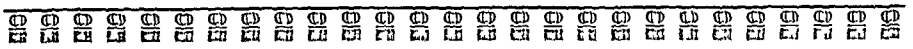
शत्रु ज्यादा बना लेता है । ऐसे व्यक्ति से सभी लोग बचकर रहना चाहेंगे। क्रोध करना वास्तव में दूसरों के अपराधों का स्वयं से बदला लेना है। अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति कब भड़ककर अपना उग्र रूप दिखा दे कुछ कहा नहीं जा सकता । ऐसे व्यक्ति से बात करते हुए भी अन्य व्यक्ति संकोच करते है ।

क्रोध मे व्यक्ति अपने आप को भूल जाता है । वह आवेश में आकर मुख से अनर्गल शब्दों का उच्चारण कर बैठता है । क्रोध मे अन्धा हुआ व्यक्ति अपने निकट खड़ी माता, बहिन और बच्चों को भी मारने लग जाता है । क्रोध आने पर इंसान-इंसान न रहकर शैतान की शक्ल में दिखाई देने लगता है । मनुष्य का मानसिक सन्तुलन समाप्त हो जाता है । मानसिक सन्तुलन समाप्त होते ही वह अन्य गुणों से भी हीन हो जाता है । कहा भी गया है -

क्रोधः कृन्तति सौहार्द्र दहति काम भावनाम् ।
उत्पादयति दुर्भावं करोत्यनवधानताम् ॥

अर्थात् क्रोध मित्रतापूर्ण सद्भावों को समाप्त कर देता है, उत्तम कर्म की भावना को जला डालता है । वह बुरी भावनाओं को पैदा करके असावधानी को जन्म देता है ।

वीतराग प्रभु महावीर ने कहा है - कुद्धो सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज। अर्थात् क्रोधान्ध व्यक्ति सत्य, शील और विनय का विनाश कर डालता है । जिसकी बुद्धि अस्थिर होती है, वह अपने आपके वश में नहीं रह पाता । उसे बात बात पर क्रोध आने लगता है । अपनी भावनाओं के प्रतिकूल कार्य उसकी सहन शक्ति के बाहर की बात होती हैं । अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने या इच्छा-पूर्ति मे किसी के बाधक होने पर उसके तन बदन में आग लग जाती है । उपर्युक्त बातों के अलावा मानसिक अस्तव्यस्तता शारीरिक कमजोरी या तामसिक भोजन भी इसका कारण हो सकता है ।

क्रोध मनुष्य की अस्थिर बुद्धि का परिचायक है । अस्थिर बुद्धि ही पागलपन को जन्म देती है । पागलपन मे मनुष्य को हिताहित का ज्ञान नहीं रह पाता है । यही विचार करके ज्ञानियो ने क्रोध के लिए कहा है कि यह मूर्खता से शुरु होता है और पश्चाताप पर जाकर खत्म होता

है । क्रोध की अग्नि में मानव की बुद्धि जलकर नष्ट हो जाती हे । क्रोध की भयंकर अग्नि मे मनुष्य अपने शुभ कर्मो का नाश कर देता है । क्रोध की इस स्थिति को जानकर के ही नीतिकारो ने कहा हे - इस ससार में घमण्डी व्यक्ति का कोई भगवान नही होता, ईर्ष्यालु का कोई पड़ौसी नही होता किन्तु क्रोधी व्यक्ति तो स्वयं अपने आप का भी नहीं होता है । कभी-कभी व्यक्ति विना किसी कारण के भी क्रोध करने लगता है । इस स्थिति मे वह अपनी शान्ति को ही नष्ट करता है । अस्थिर बुद्धि वाले को कव क्रोध आ जाये, वह कव किससे लड़ाई झगडा कर बैठे - कोई भरोसा नहीं होता । वह अपने आप से ही आक्रान्त रहता है । क्रोधी व्यक्ति यदि साधुत्व भी ग्रहण कर ले तो भी उसे आत्म शान्ति नही मिलती । इसका कारण है "क्रोधः शम सुखार्गला" अर्थात् क्रोध शान्ति एवं सुख के लिए अर्गला रूप हैं - वाधक है । क्रोध के लिए एक कवि ने कितना ठीक कहा है -

क्रोध इंसान को शैतान बना देता है,
क्रोध शान्ति को घमासान बना देता है ।
इस क्रोध से बचने में ही भला है बन्धु -
क्रोध गुलशन को वीरान वना देता है ॥

बन्धुओं । इस क्रोध ने किसी को बसाया नहीं बल्कि बसे हुए को उजाड़ा ही है । क्रोध विनाश को खुला आमंत्रण देता है । विश्व के बडे-बड़े युद्ध अहंकार जनित क्रोध के ही परिणाम है । क्रोध शरीर में तो दहन उत्पन्न करता ही है मगर यह आत्मा के गुणों का भी दहन कर देता है । स्थानांग सूत्र में क्रोध उत्पन्न होने के चार कारण क्रमशः क्षेत्र, वस्तु, शरीर एवं उपधि बताये हैं । वहीं क्रोध के चार प्रकार भी बताये है -

चउपइट्ठिए कोहे पण्णत्ते,
तं जहा - आय पइट्ठिए,
पर पइट्ठिए, तदुभयपइट्ठिए,
अपइट्ठिए ।

अर्थात् क्रोध चार प्रकार का है - आत्म-प्रतिष्ठित-अपनी भूल पर होने वाला, पर-प्रतिष्ठित- दूसरे के निमित्त से होने वाला, तदुभय प्रतिष्ठित-

दोनो के निमित्त से होने वाला और अप्रतिष्ठित - निमित्त के बिना होने वाला । जिस मनुष्य का विवेक जाग्रत है, वह इन चारो प्रकारो के क्रोध से स्वयं को बचाये रखता है ।

एक व्यक्ति के मन में यह विचार पैदा हुआ कि जीवन के कल्याण के लिए मुझे किसी अच्छे गुरु की शरण मे जाना चाहिए । वह व्यक्ति एक दिन दृढ़ निश्चय करके गुरु की तलाश में निकल गया । घूमते-फिरते एक दिन वह एक संन्यासी के पास पहुँचा । वह रात्रि विश्राम संन्यासी के आश्रम में ही करने का विचार करके वहाँ ठहर गया । सर्दी की रात थी । तेज ठण्ड जानकर उस व्यक्ति ने संन्यासी से कहा - स्वामीजी ! आपके पास कुछ आग होगी । आप कुछ कोयले-लकड़ी हमको दे दें ताकि रात्रि आग के पास बैठकर व्यतीत की जा सके । संन्यासी ने कहा - हम वैरागी है, हमारे पास आग का क्या काम ? कुछ क्षणों के लिए वहाँ सन्नाटा छा गया । थोड़ी देर बाद वह व्यक्ति बोला - स्वामीजी ! आपके पास थोड़ी बहुत आग तो होगी ही । अब तो सन्यासी की बुद्धि अस्थिर हो गई । क्रोध ने मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया । संन्यासी ने पास रखा हुआ चिमटा उठाकर उस व्यक्ति के ऊपर प्रहार करना चाहा तो उस व्यक्ति ने स्वयं को बचाते हुए हाथ जोड़कर निवेदन किया - अरे स्वामीजी ! आप तो कह रहे थे कि मेरे पास आग नही है, तो फिर आपकी ऑखों से ये चिनगारियाँ कैसे फूट रही है ? सन्यासी को अपनी भूल का अहसास हुआ तो वे शान्त होकर अपने स्थान पर बैठ गये ।

क्रोध सचमुच एक भयंकर विकार है । इसके कारण मनुष्य का शरीर विकृत हो जाता है । क्रोधावेश में मनुष्य अशुभ परमाणुओ को अपनी ओर आकर्षित करता है । क्रोध की स्थिति का चित्रण करते हुए एक विचारक ने बताया है - क्रोध के कारण मनुष्य की भृकुटि टेढी हो जाती है, इससे मुँह भी टेढा हो जाता है । चेहरा विकराल दिखाई देने लगता है । ऑखे लाल हो जाती है, दॉत होठो को चबाने लगते हैं, उसकी वेशभूषा लोक-निन्दनीय बन जाती है । क्रोध से पीडित होने पर उसका शरीर थर थर कॉपने लगता है । यह सारी स्थिति देखकर क्रोध के लिए यही निष्कर्ष निकलता हैं कि - क्रोध समझदारी को बाहर निकालकर मन के दरवाजे पर चिटकनी लगा देता है ।
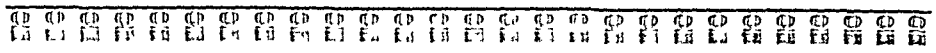
क्रोध का मस्तिष्क पर अधिकार होने के पश्चात् वह जितना शरीर पर प्रभाव डालता है उससे कहीं अधिक वह मन को प्रभावित करता है। इसके कारण क्षण-क्षण मन परितप्त होता है । इससे मनुष्य विवेक-शून्य हो जाता है । गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा भी है -

क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृति विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

अर्थात् क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है और मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त होती है । स्मृति की कमी से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से व्यक्ति स्वयं नष्ट हो जाता है ।

कुछ लोगों का क्रोध बड़ा उग्र होता है । ऐसे लोगों के पास बैठने एवं उन्हे अपने पास बैठाते हुए भी लोग सचेत रहते हैं । कुछ लोगों का क्रोध जल पर बनी लकीर की भाँति होता है जो आता है लेकिन क्षण भर बाद ही विलुप्त हो जाता है । यदि क्रोध पत्थर पर बनी लकीर की भाँति है तो उसका दुष्परिणाम ही निकलता है । इसके परिणाम स्वरूप जीवात्मा को नरक का रास्ता देखना पड़ता है । जिस प्रकार विष की एक बूंद भी प्राण-हनन के लिए पर्याप्त होती है ठीक वैसे ही क्रोध का हल्का सा भाव भी आपसी स्नेह, भाईचारा एवं अपनत्व को नष्ट कर देता है। जिस व्यक्ति में सहनशीलता का अभाव होता है वह तत्काल क्रोध में आकर उफन पड़ता है । भगवान महावीर के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में चण्डकौशिक नाग का प्रसङ्ग आता है । चण्डकौशिक नाग पूर्वभव में एक सन्त था । एक दिन वे सन्त अपने शिष्य सहित रास्ते में चले जा रहे थे । रास्ते में मरे हुए मेंढक के सूखे कलेवर पर गुरुजी का पांव पड़ गया । शिष्य ने कहा - गुरुजी आपके पांव से दबकर मेंढक मर गया है इसलिए प्रायश्चित लो ।

शिष्य बार-बार यह बात कहता रहा, गुरुजी सुनकर के आगे से आगे चलते हुए उपाश्रय में पहुँच गये । शिष्य ने वहाँ पर भी कहा - गुरुजी प्रायश्चित लो । गुरुजी ने कहा - देखो शिष्य ! वह मेंढक जीवित नहीं था । भूल से मेरा पांव पड़ गया, मैंने 'मिच्छामि दुक्कड़म्' का प्रायश्चित ले लिया । शिष्य तो रट लगाये हुए था । प्रायश्चित लो, प्रायश्चित

लो । सन्त की सहनशक्ति जवाब दे गई । चन्दन का स्वभाव शीतल होता है मगर अत्यधिक घर्षण पर उसमें भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है । यही स्थिति सन्त की भी हुई । वे क्रोध में भरकर शिष्य पर रजोहरण के डण्डे से प्रहार करने के लिए उठ गये । उनका सिर दीवार से टकराया। अत्यधिक क्रोधावस्था में ही उनकी मृत्यु हो गई । वही सन्त मरकर अगले भव में चण्डकौशिक नाग बने । मनुष्य का उग्र क्रोध आत्मा को नरक गति की ओर उन्मुख करता है । दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है - 'उवसमेण हणे कोहं' अर्थात् उपशम भाव से - शान्ति से क्रोध को जीतें । जो शान्ति का पक्षधर है वह क्रोध से बचने का प्रयास करता है । वह क्रोध के प्रतिफल से परिचित होता है । कवि के शब्दो में-

यह शाश्वत सत्य है कि क्रोध में आदमी अन्धा बन जाता है,
उनका तन-मन द्वेष के कीचड़ से गन्दा बन जाता है।
यह क्षणिक क्रोध औरों को कष्ट देता ही देता है पर-
कई बार खुद के लिए भी फाँसी का फन्दा बन जाता है॥

क्रोध के कारण कई बार ऐसे जघन्य अपराध हो जाते हैं कि उन्हें देखकर रोंगटे खड़े हो जाते है । जो शान्ति के पुजारी होते हैं, वे क्रोध से सदैव दूर रहते हैं । क्रोध का प्रसंग उत्पन्न होने पर - स्वयं को पूर्ण शान्त रखने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी ने ठीक ही कहा है - आगलो अगन है तो आप हुजौ पानी । " कहने का अभिप्राय यह है कि अग्नि जिस प्रकार पानी के प्रभाव से बुझाई जा सकती है ठीक उसी प्रकार यदि सामने वाला क्रोधाग्नि में जल रहा है तो आप शान्त हों जाइये । आपकी शान्ति उस पर पानी के समान असर करके उसकी क्रोधाग्नि को बुझा देगी!

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन की प्रेरक घटना है । वे एक सभा में अपना भाषण दे रहे थे । विपरीत विचारों का एक व्यक्ति अपना विरोध व्यक्त करने के लिए उठा और अपना जूता खोलकर मच पर फेंक दिया । भीड़ मे शोर-गुल मच गया, जनता क्रोध मे उफन पडी । नेताजी जूता अपने हाथ में उठाकर बड़े संयत स्वर मे बोले - धन्य हैं वह देश जहाँ के नागरिक नंगे पांव घूमने वाले अपने नेताओं को जूते पहनाते हैं लेकिन मुझे अफसोस है यह जूता एक ही पॉव का है कृपया दूसरे पांव
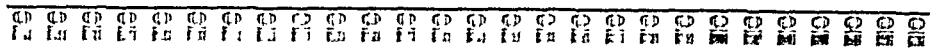
का जूता भी देने का कष्ट करें । यह सुनकर जूता फेंकने वाला व्यक्ति शर्म से पानी-पानी होकर क्षमा मांगने लगा ।

क्रोध को क्रोध से नहीं जीता जा सकता । क्रोध पर नियन्त्रण करने के लिए अच्छा तो यह है कि तत्काल कोई कदम न उठाकर प्रतिरोध मे कुछ विलम्ब करें । जिस स्थान पर क्रोध का वातावरण बन रहा है उस स्थान का ही त्याग कर दें । मौन धारण करके विवेकपूर्वक क्रोध के परिणाम पर चिन्तन करे । क्रोध की स्थिति में जल पीकर स्वयं को स्थिर बनायें । क्रोध की अवस्था में अपना चेहरा दर्पण मे देखकर विचार करे कि इस अवस्था मे मेरा चेहरा कितना कुरुप हो जाता है ।

महापुरुषो का जीवन तो सदैव ही शान्त भाव से आप्लावित रहता है । वे क्रोध करके अपनी बुद्धि का परित्याग कभी भी नहीं करते । नेताजी ने जहॉ सहनशीलता का परिचय दिया वहीं विरोधी की उद्दण्डता को सहजता से क्षमा भी कर दिया । क्रोध जीवन की अच्छाइयों का अन्त कर देता है । अत: क्रोध को हेय मानकर इससे बचना ही श्रेयस्कर है । विपरीत परिस्थितियों में ही मनुष्य की परीक्षा होती है कि वह इंसान के रूप में कहीं शैतान तो नहीं हो रहा है । जिसका विवेक जाग्रत है वह सदैव अपने आप पर कंट्रोल रखता है । एक गृह स्वामी उखड़े उखड़े से घर में प्रविष्ट हुए ! पत्नी से जाते ही कहा - मुझे स्नान करना है जल्दी पानी गर्म करो । पत्नी ने कहा - करती हूँ, बैठो । पति महाशय कुछ तेजी में थे । बोले - जल्दी करो वरना । पत्नी भला पीछे कैसे रहती वह बोली - वरना क्या ? क्या करोगे तुम ? पति अपनी पत्नी के स्वभाव से परिचित थे उन्होंने कहा - भाई ! जल्दी पानी गर्म कर सकती हो तो कर दो वरना मै ठण्डे पानी से ही नहा लूंगा । पत्नी के चेहरे पर उभरता हुआ क्रोध मुस्कान में बदल गया ।

हमारी इस आत्मा का स्वभाव क्रोध करना नही है । लेकिन जब आत्मा पर स्वार्थ का प्रभाव बढ़ जाता है तो क्रोध की स्थिति बन जाती है । इसलिए यह आवश्यक है कि क्रोध के कारणों से बचने का प्रयास करें । हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि गर्म लोहे को ठण्डा लोहा ही काट सकता है । क्रोध एवं वैमनस्य की आग क्षमा के शीतल जल से

ही शान्त हो सकती है । मधुर वचन क्रोध को शान्त करने की अमोघ औषधि है । सामने वाला यदि क्रोध में भरा है और आप ने मधुर एवं हितकर वचन बोले हैं तो उसका क्रोध शान्त हो जाता है । जिसमे धैर्य का अभाव होता है वह तत्क्षण क्रोध का शिकार हो जाता है ।

एक वृद्ध सज्जन छत पर बैठे हुए थे । उसी समय मुडेर पर कौवे की काँव-काँव सुनाई दी । वृद्ध ने दूर खड़े अपने पुत्र से पूछा-बेटे । यह कौन कॉव-कॉव कर रहा है ?

पुत्र ने कहा - पिताजी यह कौवा है ।

वृद्ध ने कुछ समय पश्चात् फिर पूछा - अरे ! यह बार-बार किस पक्षी की आवाज आ रही है ?

पुत्र ने कहा - आपसे कह तो दिया कि कौवे की आवाज है।

वृद्ध ने कहा - यह कौवे की आवाज है, क्या कौवा ऐसे बोलता है?

पुत्र अपने धैर्य को खोकर उठ खड़ा हुआ और अपने पिता के पास आकर आवेश में बोला - आपकी मति बुढ़ापे में मारी गई है । आप भी कौवे की भाँति कॉव-कॉव कर रहे है । क्या आप कौवे की आवाज भी नहीं पहचानते ? चुपचाप बैठे क्यों नही रहते है ?

वृद्ध सज्जन मुस्कराकर बोले - बेटा ! क्रोध क्यो करता है ? बचपन में तूने मुझसे कौवे को देखकर दस बार एक ही प्रश्न किया था-बाबा यह कौन है ? मैने हर बार यही कहा - बेटे यह कौवा है । आज मुझे तेरे बचपन की स्मृति आ गई थी । सोचा तुझमें धैर्य कितना है । लेकिन तूने तो दो बार में ही अपना आपा खो दिया । क्रोध तुझ पर हावी हो गया ।

पिता की बात सुनकर पुत्र को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने पिता के पॉव पकड़कर क्षमा की याचना की । क्षमा क्रोध को समाप्त करने मे समर्थ है, सक्षम है । क्षमा का पुजारी क्रोध का अन्त कर देता है । आपका भला इसी में है कि क्रोध से वचकर रहे । मधुर वाणी से दूसरो का हृदय जीतने का प्रयास करें । इन्हीं शव्दो के साथ मे अपनी बात को विराम देती हूँ । जय महावीर ।

* * *
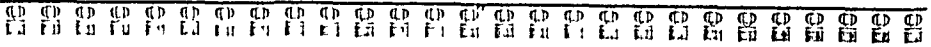
धन पाया : क्या धर्म जगाया?

बन्धुओं !

जिस मनुष्य ने अपने जीवन का कल्याण करने का मन बना लिया है, जो मुक्ति-महल पर चढ़ने को तत्पर हो चुका है जो आत्मा के अन्धकार से निकलकर ज्ञान के आलोक में आ गया है उसे जड़ पदार्थों से कोई मोह नहीं रहता । वह सदैव दुखियो की पीड़ा को हरने के लिए तत्पर रहता है । वह अपनी मेहनत एवं लगन से कमाये गये धन-वैभव को पर हित में समर्पित करने हेतु तत्पर रहता है । धर्म की ओर कदम बढ़ाने वाले मनुष्य दान की भावना को हृदयंगम कर लेते है । उन्हें लक्ष्मी के स्वभाव का ज्ञान होता है । कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है -

लच्छी दिज्जउ दाणे दया-पहाणेण ।
जा जल-तरंग-चवला दो तिण्णि दिणाइ चिट्ठेइ ।

अर्थात् यह लक्ष्मी जल में उठने वाली लहरो के सदृश चंचल है। दो-तीन दिन ठहरने वाली है । अतः इसे दयालु होकर दान दो । श्रावक-धर्म में तो दान की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कहा है - 'दाणं सावयधम्मो' अर्थात् दान देना श्रावक का धर्म है । जो मनुष्य हर्षित मन से दान-कर्म में लगता है उसे इस संसार मे तो यश की प्राप्ति होती ही है मगर परलोक में भी आनन्द मिलता है । दान का यह चक्र तो हमें प्रकृति द्वारा प्रदत्त हुआ है । सागर जल का दान आकाश को करते हैं । आकाश उसे मेघ

में बदलकर जल रूप मे धरती को दान कर देते हैं जिससे पेड़-पौधे, फल-फूल-अन्न एवं जड़ी बूटियॉ आदि प्राप्त होते है । सूर्य उष्मा एवं प्रकाश देता है । प्रकृति प्रतिपल कुछ न कुछ देती ही रहती है उसी से जीव जगत में जीवन बना रहता है । इस दानी प्रकृति का प्रभाव यदि मानव-मन पर न पड़े तो वह मानव पाषाण सदृश ही है ।

राजा भोज के दरबार में विद्वानों का अति सम्मान होता था । उनके दरबार मे याचक, पण्डित, कवि कोई भी जाते वे उनको एक बार में ही इतना प्रदान कर देते थे कि उन्हें दुबारा आकर मांगने की आवश्यकता ही नही होती थी । मंत्री राजा की उदारता देखकर चिन्तित हो उठा । उसने सोचा कि यदि प्रतिदिन यही क्रम रहा तो राजकोष रिक्त हो जायेगा। मत्री होने के नाते मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है । मुझे महाराज को सचेत करना होगा । यह सोचकर उसने राजा को सचेत करने का निर्णय किया किन्तु कुछ कहने का साहस नहीं हो पा रहा था कि वह राजा भोज को सामने जाकर अपनी बात कह सके । उसे एक युक्ति सूझी ! राजा निशदिन जिस रास्ते से निकलते थे, वहीं दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में एक पंक्ति लिख दी -

'आपदर्थे धनम् रक्षेत्'

अर्थात् आपत्ति के लिए धन की रक्षा करें । राजा सवेरे भ्रमण को निकले तो उनकी दृष्टि उस पंक्ति पर गई । वे सोचने लगे कि इसे लिखने वाला अवश्य कोई बुद्धिमान् होगा । हो सकता है, वह मुझे ही सचेत करना चाहता हो । उन्होंने मुस्कराकर उसके नीचे अपनी ओर से एक पंक्ति लिख दी -

'श्रीमतां आपदः कुतः'

अर्थात् जो भाग्यशाली पुरुष है उनके लिए आपदाये कहॉ हें ? यह लिखकर वे आगे बढ़ गये । मंत्री भी पीछे-पीछे आ रहा था उसने राजा द्वारा लिखी पंक्ति को पढ़ा और उसके नीचे तीसरी पक्ति लिख दी-

'कदाचित् कुपितो देवः'

अर्थात् कभी भाग्यदेव रुष्ट हो जाय, तो उस समय के लिए धन बचाकर रखा जाय । यह लिखकर उसने सोचा, इस बार राजा का मन
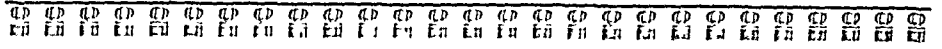
बदल जायेगा, वह अपनी उदारता पर अकुश लगा देगा । दूसरे दिन राजा फिर उधर से निकला तो पंक्ति पढकर कुछ विचार किया और उसके नीचे एक पक्ति और लिख दी -

'संचितोऽपि विनश्यति'

अर्थात् यदि भाग्य रुठ जाय तो संचित धन भी नष्ट हो जायेगा।

मंत्री ने यह पंक्ति पढ़ी तो गद्गद् हो उठा । उसे अपनी नासमझी पर पश्चाताप होने लगा । वह सोचने लगा - मै मूढमति-धर्म प्रवृत्ति की ओर बढते हाथो को रोककर अच्छा नहीं कर रहा था । मनुष्य जव तक धन का मालिक रहे तब तक तो ठीक है, मगर वह यदि उसका गुलाम बनकर मात्र पहरेदार बन जाये तो उसका सारा श्रम निरर्थक है । धन का उपयोग सदैव शुभ कार्यो मे करने से ही धन कमाने की सार्थकता है । भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक मे कहा है -

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रः गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

अर्थात् दान, भोग और नाश-धन की ये तीन गतियॉ होती है । जो न तो धन का दान करता है न उसका उपभोग करता है उसके धन की तीसरी गति यानी विनाश ही होता है ।

शुभ कर्मो से यदि आपको धन की प्राप्ति हुई है तो मात्र चौकीदार बने रहने से कुछ नहीं मिलेगा । कोषागार में खजाञ्ची के पास प्रतिदिन लाखों रुपये रहते हुए भी वह उसका स्वयं के हाथों उपयोग नहीं कर पाता, ग्वाले के पास सौ गायें होते हुए भी दूध पर उसका अधिकार नही होता है । आपके पास धन-वैभव का भण्डार होते हुए भी यदि उनका उपयोग नहीं कर पाते हैं तो आप उसके स्वामी नहीं बल्कि पहरेदार मात्र हैं । धन का सदुपयोग उसके स्वामी बनकर सद्कार्यों में व्यय करने से ही होता है । सद्गृहस्थ का यह नैतिक कर्त्तव्य होता है कि वह दान देकर अपने धन का सदुपयोग करे । दान को परिग्रह का प्रायश्चित्त कहा है । उसमें अभिमान को अवकाश नहीं है ।

सभी महापुरुषों ने धन की अस्थिरता को एक स्वर में स्वीकार किया है । कल तक जो अमीर थे, जिनके द्वार पर नंगी तलवारों के पहरे

लगते थे आज उनकी स्थिति क्या हो गई, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है । कल तक जो सडकों पर भीख मांगते थे आज वे बंगलों में बैठे हैं । यह धन तो आता जाता रहता है । इस धूप-छांव की तरह रहने वाले धन पर अभिमान करना ठीक नहीं है । इसके प्रति लगाव भी दुःखदायी होता है । पण्डित बनारसीदास जी ने ठीक ही कहा है -

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन मांहि ।
इन्हकी संगति जे लगै, तिन्हहिं कहूँ सुख नांहि ॥

अर्थात् लक्ष्मी और छाया दोनो एक समान हैं । यह क्षण मे बढ़ती है और क्षण मे घटती है, जो इनके संग में लगते है यानी नेह लगाते हैं उन्हें कभी चैन नहीं मिल पाता है । इस संसार में सबसे अधिक धनी तो वह है जो धन का अपने हाथों से सदुपयोग करता है । धन को हम हाथ मे रखे तब तक तो ठीक है यदि हम धन के हाथों कैद हो जायँ तो मुश्किल हो जाती है । इसलिए 'दोऊ हाथ उलीचिये यही सयानो काम' पर हमें ध्यान देना चाहिए ।

एक व्यक्ति गाय के गले में रस्सी डालकर उसे पकड़े-पकडे चल रहा था । आगे-आगे गाय और पीछे-पीछे वह व्यक्ति चल रहा था । रास्ते मे गुरु-शिष्य आ रहे थे । गुरु ने शिष्य से पूछा - वत्स ! बताओ कौन किसे पकड़े हुए हैं ? शिष्य ने कहा - महाराज ! यह तो प्रत्यक्ष है आदमी ने गाय को पकड रखा है । गुरु ने कहा - तू अवास्तविक को देख रहा है । आदमी ने गाय को नही बल्कि गाय ने आदमी को पकड़ रखा है । गाय स्वामिनी है यह आदमी तो सेवक है जो पीछे-पीछे चल रहा है । शिष्य गुरु की बात का रहस्य समझ गया स्वामी ही सदैव आगे रहता है ।

जीवन मे भी यदि आगे रहना है तो स्वामी बनकर दिखाना होगा। धन को अपने ऊपर आप कितना खर्च करेंगे ? वृद्धावस्था आते-आते तो आप का खाना-पीना भी कम हो जायेगा । वस्त्रो का खर्च भी कम हो जायेगा । जरूरत की सब वस्तुएँ आप पहले ही ले चुके है, उसके वाद भी आपके पास वहुत शेप है तो क्या उसे तीसरी गति अर्थात् नाश की ओर ले जायेंगे ? उत्तम पुरुप सदैव उत्तम विचार को ही प्रश्रय देता है।

वह मध्यम और निम्न क्यो सोचेगा । राजा भोज यह बात जानते थे, इस कारण उन्होने दान की प्रवृत्ति को बढ़ाया प्रतिदिन सत्कार्यो में धन को खर्च करके ही उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती थी । विचारकों ने कहा है- धनी वह नहीं है जिसके पास धन हैं, बल्कि वह है जो उस धन का सद्व्यय करता है । जिसके पास केवल धन ही है, उससे बड़ा निर्धन और कौन हो सकता है ? जो अपने धन को सद्कार्यो में लगा देता है, सभी में वह प्रिय हो जाता है । शेखसादी जैसे विचारक ने कहा है कि धनवान लोग सर्वाधिक दया के पात्र हैं । उनके पास धन के अलावा कुछ नहीं है । समाज में शान्ति एवं व्यवस्था को बनाये रखने हेतु दान की प्रवृत्ति आवश्यक है । इसके द्वारा ही सम्पूर्ण मानव जाति में प्रेम व मैत्री का भाव संचारित होता है । यह मानव के गौरव मे वृद्धि कर उसे आनंद प्रदान करता है। जो मनुष्य दान कार्य मे लगा हुआ हैं वह परलोक मे तो अपार वैभव का स्वामी बनता ही है, साथ ही लौकिक लाभ भी उसको प्राप्त होते है । दान की प्रवृत्ति के कारण वह ससार में लोकप्रियता का पात्र बनता है । वह सत्पुरुषों की संगति प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है । स्वयं के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है । किसी भी सभा में ज्ञानी के समान ही उसे आदर से बुलाया जाता है । सागर ने अब तक न जाने कितनी बार धरती को नहला दिया है, पर्वतो पर लगे वृक्षों को उसने सीचा है, क्या वह कभी खाली हुआ है ? नहीं, वह भविष्य में भी कभी खाली नहीं होगा । यही स्थिति हमारी भी है । जो मनुष्य दान देने की प्रवृत्ति रखता है वह सदैव खुशहाली को ही आमंत्रण देता है । अंगूर की शाखाओं की कटिंग करने पर उस पर ज्यादा अंगूर आते है वैसे ही देने से वैभव अधिक बढ़ता है । दान की इसी भावना को ध्यान में रखकर संस्कृत के कवि ने लिखा है -

> ब्याजे स्यात् द्विगुणं, वित्तं व्यापारे च चतुर्गुणं ।
> क्षेत्रे शतगुणं वित्तं, दानेऽनन्त गुणं भवेत् ॥

अर्थात् ब्याज से दुगुना, व्यापार से चौगुना, खेत से शतगुना किन्तु दान देने से अनन्त गुना लाभ होता है । जिन्हें शुभ कर्मो से जो शक्ति प्राप्त हुई है वह उसका अवश्य सदुपयोग करे इसी से जीवन का कल्याण संभव है । बुराइयो में धन का खर्च करने से जीवन में खुशियाँ नहीं आ

सकती, वह तो पश्चाताप ही प्रदान करेगा । गधे की पूँछ पकडने से दुलत्ती ही मिलती है ।

एक गधे को देखकर एक व्यक्ति दौड़ा और उसकी पूँछ पकड़ ली । गधा दुलत्ती मारने लगा तब एक सज्जन ने कहा भाई ! गधे की पूँछ को छोड दो, इसकी दुलत्ती तुम्हारे लिए घातक हो सकती है । दुलत्ती खाने वाला बोला - मुझे सीख देने की जरूरत नहीं, मेरा अच्छा-बुरा मैं स्वय समझता हूँ । यह गधे का और मेरा मामला है । मैं चाहे इसका कान पकडूं या पूँछ, मेरी मां ने आज सवेरे ही मुझे सीख दी थी - बेटा! या तो किसी चीज को पकड़ना मत और यदि पकड़ ले तो फिर उसे छोड़ना मत । तभी गधे ने जोर से दुलत्ती मारी वह व्यक्ति दूर जा पड़ा। सज्जन ने कहा - भाई ! कहीं तुम्हारे लगी तो नहीं ! वह मूढ बोला- लगने की मुझे चिन्ता नहीं है, मैंने गधे की पूँछ पकड़ी थी - पूछ न सही उसके बाल तो मेरे हाथ आ ही गये हैं । मुझे कुछ न कुछ प्राप्ति तो हुई है ! यह एक मूर्खता भरा विचार है । धनवान व्यक्ति यदि यह विचार करे कि धन को पकड़ने से उससे कुछ मिलेगा तो यह उसकी मूढता ही है । धन होने का लाभ तो उसे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की भलाई में त्यागने पर मिलता है। त्याग की भावना जब तक पैदा नहीं होगी जीवन में शान्ति नहीं मिल सकती । विषय-वासना में धन को खर्च करने वाले स्वयं के लिए दुर्गति का द्वार खोलते हैं । आनन्द तो इसी में है कि धन को परहित में समर्पण कर दे और इसी में अपना कल्याण समझें।

गुरू और शिष्य में धन के महत्त्व पर बहस छिड़ गई । शिष्य ने कहा गुरुजी ! धन तो पास में होना ही चाहिए । गुरुजी बोले धन का महत्त्व तो उसके त्याग में है । सुख और आनन्द चाहते हो तो धन का त्याग कर दो ! शिष्य नही माना तो गुरु ने कहा - अब आराम करो कल बात करेंगे । सबेरा होते ही गुरु-शिष्य आगे बढ़े । रास्ते मे नदी आ गई । शिष्य ने कहा - हमें उस पार जाना है । नाविक बोला एक रुपया लगेगा । शिष्य ने कहा ठीक है मेरे पास एक रुपया है, दे दूँगा- ले चलो । गुरु और शिष्य नदी पार करके तट पर उतर गये । शिष्य के मन मे अहंकार जाग गया । वह बोला - गुरुजी ! मेरे पास एक
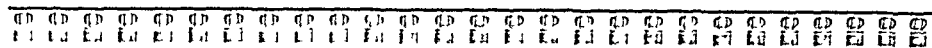
रुपया था इस कारण हम नदी पार हो गये वरना अभी उधर ही रहना पडता । गुरु ने कहा - वत्स । रुपया अपने पास होने से हम इधर नहीं आये है । हम रुपये का त्याग करने से इधर आये हे ! यदि रुपये को तुम त्यागते नही तो पास मे होने से क्या लाभ होता ! शिष्य गुरु की बात का रहस्य जानकर पॉवो मे लौटने लगा ।

बन्धुओं ! धन पास में होने से कोई लाभ नहीं जब तक कि उसका त्याग नही होता । दान के माध्यम से इसका त्याग जीवन मे खुशियॉ भर देता है । जो विषयो का गुलाम होकर धन को बर्बाद करता है वह इस अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देता है । विषयों का प्रभाव विष से भी अधिक घातक होता है । विष के प्रभाव से एक बार ही जीवन का अन्त होता है मगर विषयो मे डूबा मानव जन्म जन्म तक पापों का बोझ ढोता रहता है और हर क्षण वह मरता रहता है । विषयो का क्षणिक सुख विषाद का अन्तहीन सिलसिला शुरु कर देता है ।

हमको श्रेष्ठ मानव जीवन की प्राप्ति हुई है । हम यहाँ स्वामी बनकर आये हैं तो स्वामी जैसा ही व्यवहार करना है । सेवक बन गये तो सारी जिन्दगी आगे नहीं बढ़ पाओगे । आत्मा की पहचान स्वामी बनने से होती है । जिस घर में स्वामी की न चलकर सेवक की चलने लगती है उस घर का विनाश समीप आ जाता है । एक दिन वही सेवक स्वामी को घर से बाहर करके घर का स्वामी बन जाता है । यह सारी धन सम्पत्ति यहीं रहने वाली है । आज तुम इसके स्वामी हो, कल कोई और हो सकता है । इसका समय पर सदुपयोग करने में ही लाभ है ।

मेवाड़ की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप को धन की आवश्यकता हुई तो भामाशाह अपनी सारी सम्पत्ति महाराणा के चरणों में रखकर दानवीर बन गये । कर्ण गंगा स्नान के पश्चात् याचक को मुँह मांगा दान देता था । इन्द्र स्वयं वेश बदल कर गया और सूर्य पुत्र कर्ण ने बिना हिचकिचाहट के कवच और कुण्डल प्रदान कर दिये । ऐसे दानवीरों की गाथाओं से भारत के धर्मशास्त्र भरे हुए हैं । इतिहास उनकी कीर्ति-पताका को हर युग में लहराता है । जो समय पर जीवन में कुछ कर लेता है वही युग पुरुष की श्रेणी में आता है ।
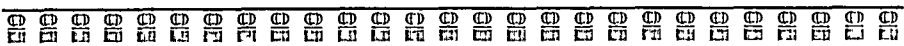
समय रहते हुए हमें जाग्रत होना होगा । हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे भीतर दिव्य शक्तियाँ समाहित है । हम जब तक उनसे परिचित नहीं होते तब तक स्वयं को नही जान पाते है । साधना के माध्यम से अन्तर्मुखी होने वाला ही अन्तर्ज्योति को प्रज्वलित कर सकता है । अज्ञान का आवरण हटाये बिना आत्मा को परमात्मा के दर्शन की अनुभूति नहीं हो सकती है । परमात्मा के समीप पहुँचने के लिए धन का मोह त्यागना पड़ेगा, भोगवृत्ति को योग की ओर मोड़ना होगा । योग के संयोग से ही जीवन परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर सकता है ।

अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है । वर्तमान को जिसने सुधार लिया उसका भविष्य निश्चित रूप से उत्तम होगा । वर्तमान को उत्तम बनाने वाला अपने अतीत को भी सुधारने में सक्षम होता है । आज हमारे पास साधन तो है मगर हम साधना से दूर हैं । हमको अपनी क्षमता का ज्ञान नहीं है । जिसमें अपनी क्षमता को जाग्रत करने की भावना नहीं होती वह आत्म-विकास कभी नहीं कर पाता है । जो मानव अपनी क्षमता को पहचान जाता है वह समभाव से विभूषित हो जाता है, समता उसके अन्तःकरण मे सागर की उर्मियों के सदृश उछलने लगती है । आत्मोपासना करने वाला अन्तर्मुखी होने लगता है । वह दूसरों के दुःखों को अपना समझकर अपना तन, मन एवं धन समर्पित करने को तत्पर हो उठता है।

महानुभावों ! समय तो मुट्ठी की रेत के समान निकलता जा रहा है । आत्म-साधना की ओर हमारा कदम नहीं बढ़ा तो फिर इस जीवन को प्राप्त करने का उद्देश्य अधूरा ही रह जायेगा । यह मानव-भव तो असीम पुण्यों का प्रसाद है क्या हम इसे कीड़े-मकोड़ों की भाँति ही व्यतीत कर देगे ? क्या फिर अन्य योनियों में जन्म लेकर कष्ट भोगने का इरादा है ? समय रहते निर्णय नहीं किया तो अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ भी हाथ नही लगेगा । किसी ने कहा भी है -

दर्शन को आप यहाँ आते तो रोज हैं,
जब भी मैंने पूछा कहते हो, मौज है ।
कर्त्तव्य का निर्वाह ही धर्म है जग में -
निज को ना जाना तो जीवन यह बोझ है ॥
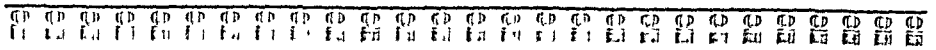
अपने आप को जान जाओगे तो कर्त्तव्यो की ओर आपके कदम स्वत: उठ जायेंगे ! अवसर का जिसने लाभ नहीं उठाया वह तो अन्त में अपनी मूढ़ता पर आँसू ही बहायेगा । अभी भी समय है । अशुभ कर्मों की निर्जरा कर लोगे तो आत्म स्वभाव में आ जाओगे । धन के मद में प्रमाद करना ठीक नहीं है । थोडा इस शरीर को कष्ट दोगे तो सत्य उजागर होने लगेगा । अन्नानास का फल ऊपर से कंटीला होता है मगर जो उन काँटों को हटा देता है; उसे ही उसका मधुर स्वाद मिलता है । किसी दूसरे के भरोसे आत्मा रूपी अन्नानास को मत फेंक देना, वरना आनन्द वही ले जायेगा जो रस प्राप्त करेगा ।

एक सज्जन मिले और उन्होंने वन्दन करने के पश्चात् कहा - महाराजश्री ! आज हमारे घर पर अखण्ड शान्ति जाप का आयोजन है आप भी पधारकर आशीर्वाद प्रदान करे ! मैंने कहा - भाई ! अखण्ड शान्ति पाठ चल रहा है तो आप कहाँ जा रहे हैं ? उसने कहा - मेरे आज कुछ आवश्यक काम आ गया बाहर जाना पड़ रहा है, दोपहर तक लौट आऊँगा । आपके घर मे तो कुल तीन ही प्राणी हैं, बच्चा तो अभी छोटा है फिर अखण्ड जाप मे कौन बैठे है ? वे सज्जन बोले - महाराजश्री ! पैसे से क्या नहीं होता, मैंने पाँच आदमी पैसे देकर बुलवा लिए हैं, वे ही जाप कर रहे हैं ।

उस सज्जन का उत्तर सुनकर मैं चुप हो गई तो वे बोले - क्या बात हुई महाराजश्री ! आप चुप क्यों है ? मैंने कहा - भाई ! भूख तुम्हे लग रही है और भोजन कोई दूसरा कर ले तो क्या तुम्हारी भूख शान्त हो जायेगी ? वे बोले - नही, यह तो नहीं होगा ! तब इस शान्ति जाप का तुम्हें क्या लाभ ? यह लाभ तो जो करेगा उसी को मिलेगा । आपके मन में तो शान्ति है ही नहीं । फिर इस शान्ति-जाप का क्या औचित्य है ? बाहर का काम किसी योग्य व्यक्ति को भेजकर करवा सकते थे । आप स्थिर होकर शान्ति जाप करते तो उसका फल आपको प्राप्त होता ।

वे कुछ क्षण विचारों मे खो गये और बोले आप ठीक कहते हैं । यह काम कल भी हो सकता है । आज मै नही जाऊँगा । मै पुनः घर जा रहा हूँ ।
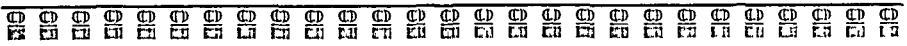
वे सज्जन घर लौट गये मगर एक प्रश्न चिन्ह लगा गये । आज धर्म की स्थिति क्या है ? क्या धन से धर्म को खरीदा जा सकता है- नही बिल्कुल नही ! धन से कर्मो की निर्जरा की जा सकती है धार्मिक कार्यो में अभिवृद्धि की जा सकती है मगर धर्म को खरीदा नही जा सकता। कुछ लोग धन के द्वारा धर्म-परिवर्तन में लगे हैं । विदेशों से धन लाकर लोगों में लोभ जाग्रत कर रहे हैं कि तुम हमारा धर्म स्वीकार कर लो, अपना धर्म छोड़ दो हम तुम्हें मालामाल कर देंगे । क्या यह संभव है ? धर्म तो निज आत्मा में उतरना है । किसी जयकिशन को धर्म-परिवर्तन कराकर उसे जैक्सन बनाने में नहीं है । यह तो धर्म का दुष्प्रचार है । इससे किसी का भला नही होगा । यदि आपके पास धन है तो उसे मानवता के कल्याण मे अर्पित कीजिए । भूखे-गरीब, बेरोजगार, अपंग, असहाय की सेवा मे लगाईये । अज्ञानियों के लिए ज्ञान के द्वार खोलिए । उन्हें सत्य का बोध कराने में खर्च कीजिए ! शुभ कार्यो में खर्च किया जाये तो उस धन का लाभ है । जो प्रतिकूल परिस्थितियो मे जी रहे है उन्हें अनुकूल स्थिति में जीने हेतु सहायता कीजिए, प्रेम-भाईचारे की भावना जाग्रत कीजिए । करुणा और मैत्री का सन्देश प्रत्येक जन में भरने का प्रयास करेंगे तो शान्ति का साम्राज्य फैलता जायेगा । याद रखिये -

धन दौलत पाकर भी सेवा यदि किसी की कर न सका।
दयाभाव से दुखित दिलों के जख्मों को यदि भर न सका॥

वह नर अपने जीवन में सुख-शान्ति कहाँ से पायेगा।
ठुकराता है जो ओरों को स्वयं ठोकरें खायेगा ॥

हमे युग की ठोकरों से बचना है तो पुण्य कर्म से मिले धन वैभव को अहर्निश पुण्य कार्यो मे खर्च करना है । यदि हम ऐसा करेगे तो यह भव तो सुधरेगा ही परभव भी सुधर जायेगा ।

18. गरिमा मय जीवन : करें आत्म-मंथन

आत्मीय धर्मप्रेमियो !

उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा गया है -

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्व पाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए॥

अर्थात् हे गौतम ! सव प्राणियों को मनुष्य-भव मिलना चिरकाल तक भी दुर्लभ है । दीर्घकाल व्यतीत होने पर भी इसकी प्राप्ति होना कठिन है, क्योंकि कर्मो के फल प्रगाढ़ है । इसलिए तू एक क्षण का भी प्रमाद मत कर ।

पुण्योदय के कारण ही मनुष्य भव की प्राप्ति होती है । कोई यह मान ले कि यह जन्म तो अब चला गया । अब क्या हो सकता है अगले जन्म में ही धर्म-साधना करेंगे । थोडा समय जीवन का और है, इसको तो आनन्द में गुजारना ठीक रहेगा । अब क्यों इस शरीर को कष्ट दिया जाये । पर इस बात को आप अपने मन से निकाल दें कि अगला जन्म भी हमारा मनुष्य योनि में ही होगा । चौरासी लाख योनियाँ पार करने के पश्चात् यह मानव जन्म हमने पाया है । सारी उम्र विषय-वासना के जाल में फँसे रहे, राग-द्वेष, ईर्ष्या मोह के ताने बाने बुनते रहे । पुण्य के भाव को भूलकर पाप की गठरी को बाँधते रहे । आत्मदेव की आराधना को त्यागकर अर्थ के पीछे अनर्थ करते रहे । अहिंसा का मार्ग छोड़कर

हिसा के पापमय पंथ पर बढ़ने वालो को चिरकाल तक भी पुन: मनुष्य जीवन नहीं मिल सकता ।

हम बहुत सौभाग्यशाली है कि हमने अपने पूर्वकृत शुभ कर्मो से यह मनुष्य जीवन प्राप्त किया है । इस शरीर का उतना महत्त्व नही है जितना इसमें बैठी आत्मा का है । जो आत्मा के महत्त्व को नहीं समझ पाता वह शरीर तक ही सीमित रह जाता है । इसी के शृंगार में अपना अमूल्य समय खोता रहता है । हमारा यह शरीर तो हाड़ मॉस का पिंजरा है । इस पिंजरे के भीतर जीवात्मा का निवास है । यह जीवात्मा न जाने किस किस योनि में भटकती हुई यहाँ तक पहुँची है । उसे विश्वास होता है कि इस बार मुझे मुक्ति अवश्य मिलेगी । मगर मन भटक कर विषयों की ओर उन्मुख हो जाता है, वह भूल जाता है कि मुझे बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन मिला है । भूलना मानव की कमजोरी है ।

कुछ बहिनें अपने पतियो के भुलक्कड़ स्वभाव की चर्चा कर रही थी । एक ने कहा - मेरे पति बहुत भुलक्कड़ है । एक दिन सब्जी मण्डी में मुझे मिल गये । बहुत देर तक मेरी ओर देखते रहे तो मैंने कहा - आप मुझे ऐसे क्या देख रहे है ? तो बोले - बहिनजी ! मैंने आपको पहले भी कहीं देखा है । दूसरी बोली - पूछो मत, हमारे भी कम भुलक्कड़ नहीं है । कल मैंने कहा - बाजार जा रहे हो तो रतालू लेकर आना मगर वे आलू लेकर आ गये ! तीसरी बोली - यह तो कुछ भी नहीं है, मैंने अपने पति को तीन महिने पहले सब्जी लेने भेजा था आज तक वापस नहीं आये है । यह सुनकर पहली ने कहा - अरे ! यह तो गजब हो गया, फिर तुमने क्या किया ? वह बोली - मैं क्या करती, दाल बनाकर के खाई ! आजकल रोज ही दाल बनाती हूँ ।

यह तो बाह्य जीवन की भूलें है । हमको अपने आप को नहीं भूलना हैं । इस शरीर का हमें जितना खयाल है उससे अधिक हमको आत्मा का खयाल करना जरूरी हैं । यह शरीर तो कच्चे घड़े की तरह हैं । कच्चे घडे में पानी अधिक समय तक नहीं ठहर सकता । तनिक सा दवाव पड़ने पर घड़ा फूट जाता हैं । इस शरीर की भी आगे-पीछे वही स्थिति होती है । हमारे चाहने या न चाहने पर भी इस शरीर को तो नप्ट होना ही है । फिर क्यो हम इसके लिए अपना समय नप्ट करें।
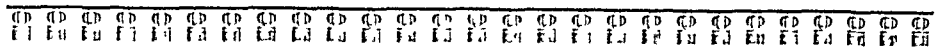
यह शरीर ऊपर से भले ही सुन्दर दिखाई दे रहा है पर यह अशुचि का भण्डार है । इसके भीतर जो आत्म तत्त्व हे उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है । यह शरीर तो धर्म-साधना का सहायक है । यदि शरीर का उपयोग धर्म-साधना हेतु नहीं करते ह तो इसका क्या महत्त्व है ?

आपका यह जीवन कल्पवृक्ष है, चिन्तामणि रत्न है - कामधेनु है - अलादीन का चिराग है । इससे जो चाहो वह प्राप्त कर सकते हो इसके द्वारा आत्मसिद्धि के सोपान पर चढ़ सकते हो । एक बार शुद्ध भाव से अपने आप से मांगो । हमारा चेतन जाग्रत हो गया तो सब कुछ हमको मिल जायेगा । इसके लिए हमको संयम का पथ अपनाना होगा । संयम के मार्ग पर चलने वाला ही आत्मानुभृति प्राप्त करके जीवन का कल्याण कर सकता है । मनुष्य का सौन्दर्य शोभा पाता है शील से और शील शोभा पाता है सयम से । अतः संयमी व्यक्ति जीवन में सब कुछ स्वायत्त कर लेता है ।

एक चोर रात्रि में चोरी करने हेतु राजमहल में गया । वहाँ राजा अपनी रानी से कह रहा था कि कल सवेरे गंगा तट पर जाकर किसी भी साधु से मैं राजकुमारी का विवाह रचा दूँगा ! चोर ने सोचा यह तो अच्छी बात है । मैं भी क्यों न गंगा तट पर जाकर साधु का रूप बनाकर बैठ जाऊँ । यदि भाग्य ने साथ दिया तो मेरा विवाह राजकुमारी के साथ हो जायेगा । सबेरा होते ही वह साधु का रूप बनाकर गंगा-तट पर बैठकर भगवान का नाम जपने लगा । कुछ समय पश्चात् राज कर्मचारी वहाँ आकर साधुओं से राजकन्या से विवाह करने हेतु प्रार्थना करने लगे । कोई भी साधु इसके लिए तैयार नहीं हुआ । अन्त में राज कर्मचारी ने साधुवेश धारी चोर के पास पहुँचकर उसे आमंत्रण दिया । वह ऑख बन्द किये चुपचाप मौन धारण किये बैठा रहा । राज कर्मचारियों ने राजा को सारी बात बताई कि अन्य साधुओं ने तो मना कर दिया मगर यह युवा साधु कुछ बोला नहीं । राजा ने यह सुनकर तुरन्त उस साधुवेशधारी चोर के पास आकर उसे प्रणाम किया और फिर अपना मन्तव्य प्रकट किया । राजा को देखकर चोर ने विचार किया कि मैने साधु का वेश धारण किया है इस पर राजा भी मुझे प्रणाम कर रहा है । मेरी खुशामद भी कर रहा है । वेश बदलने पर ही मुझे इतना मिल गया है यदि मैं सच्चा साधु बन जाऊँ तो मुझे और क्या-क्या नहीं मिलेगा ।

जिसने संयम को सच्चे हृदय से स्वीकार कर लिया उसके लिए सर्वसिद्धियॉ संभव है । संयम से ही कर्मबन्धन काटे जा सकते है । सांसारिक भोग तो आत्म-गुणो को नष्ट करके पतन की ओर ले जाते है । इस शरीर का महत्त्व तभी तक है जब तक कि इसमे आत्मा है । मृत्यु के पश्चात् आत्मतत्त्व इससे निकल करके अन्य योनि ग्रहण कर लेता है । जब तक वह मुक्त नहीं हो जाता यूँ ही भटकता रहता है । मृत्यु के पश्चात् इस निर्जीव शरीर का कोई महत्त्व नहीं है । कोयले से अग्नि तत्व निकलने के पश्चात् राख मे तेज नहीं रह पाता है । आत्मा है तभी तक देह में तेज है । वह चली गई उसके बाद कोई भी इस शरीर को महत्त्व देने वाला नहीं है इसको छूने वाला भी स्वयं को अपवित्र मानकर स्नान करने की सोचता है । अज्ञानी मानव शरीर की तो इतनी चिन्ता करता है पर आत्मा का भला कभी नहीं सोचता । वह इस शरीर से पाप कर्म करता है जिसे इस आत्मा को ही भुगतना पड़ता है । यदि जीव धर्म क्रियाएँ करे आत्मा की आराधना करे, तो वह शुद्ध-बुद्ध बनकर परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । पवित्र आत्मा ही परमात्मा का रूप है।

मनुष्य यदि साधक बनकर साधना के मार्ग पर चल पड़े तो समस्त सिद्धियॉ उसके चरणों को चूमने लगती है । इसके लिए यह आवश्यक है कि इस शरीर का उपयोग धर्म क्रियाओ में करे । सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, परोपकार के पथ पर कदम धरे । पुण्य के पथ पर अग्रसर होने वाला यह नही सोचता है कि उसके कार्यो की लोग सराहना करेगे, उसे समाज सम्मान प्रदान करेगा । वह तो बस आत्मोन्नति में लगा रहता है। बुरा करने वाले के लिए भी वह सदैव भला ही सोचता है । सन्त कवि ने ऐसे लोगों के लिए कहा भी है -

जो तोकूं कांटा बोवे, ताहि बोव तू फूल ।
ताहि फूल को फूल है, वाको है त्रिशूल ॥

मगर जो नादान है, अज्ञानी है वे कुछ अलग ही विचारते हैं । वे जेसे के साथ तैसा ही करने की सोचते है । एंसे लोग कहते हुए मिल जायेगे -

जो तोकू कांटा वोवे, ताहि वोव तृ भाला ।
याद करेगा वह तुझे, पड़ा किसी मे पाला ॥

क्या यह किसी नेक व्यक्ति के लिए उचित रहेगा ? कोई श्वान यदि पिंडली पकड ले तो क्या समझदार भी उसकी पिंडली पकड़ेगा ? मूर्ख के साथ मूर्खता का व्यवहार कत्तई उचित नहीं हैं । बुराई करने वाले को तो उसके कर्म ही सजा देगे । शुभ कर्म तो अपने आप में ही पुरस्कार होते हैं । जो इस शिक्षा को जीवन मे अपना लेते हैं, वे मनुष्य कभी भी पतन का मार्ग नहीं चुनते है । भला करने वाले के साथ यदि आपने भला किया हैं तो इसमें कौनसी बडी बात है । यह तो लेने का देना हो गया । यह तो एक व्यापार हो गया। साधना के पथ पर बढ़ने वाला कभी व्यापार नहीं करता हैं । ऐसे लोग दूसरो की खुशी मे अपनी खुशी तो मिलाते ही है, मगर दूसरो के दु:खों में भी अपनी खुशी न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं । इस जीवन में सभी का हित साधने से ही दु:ख का विनाश होता है । सेवा का सच्चा भाव होने पर ही शुभ कर्म फलित होते है ।

किसी दीन-दु:खी की मदद करना मात्र ही सेवा नहीं है । विवेक और सामर्थ्य के अनुसार समय, शक्ति एवं धन को दूसरों को अर्पित कर प्रसन्न होना ही साधना की पहचान है । उपकार करने वालों का उपकार करना तो मानव का साधारण धर्म है, किन्तु अपकार करने वालों का उपकार करना दैविक गुण होता है यही साधु पुरुषों का लक्षण है । कहा भी गया है -

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुणः ?
अपकारिषु यः साधु सः साधुः सद्भिरुच्यते ॥

अर्थात् उपकार के बदले जो साधु या सज्जन पुरुष उपकार करे उसका क्या साधुत्व ? साधु वही कहलाता है जो अपकार का बदला उपकार के रूप में दे । यही बात सन्त तुलसी ने भी कही है -

करी बुराई और ने, आप कियो उपकार ।
'तुलसी' इन दो बात को, चित्त ते देहु उतार ॥

यह भावना हृदय में तभी आ सकती है जब वह अपने अहंकार का परित्याग कर दे - परोपकार को जीवन का मंत्र बना ले। क्रोध, मान, माया व लोभ से स्वयं को दूर रखे । दशवैकालिक में कहा भी गया है-

कोहं माणं च मायं च लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥

अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ - ये पाप को बढ़ाने वाले हैं । अतः आत्मा का हित चाहने वाले साधक को इन चारों 'कषायो को छोड़ देना चाहिए । साधना का पथ तो सुमेरू तक पहुँचाता है । जो एक बार उस ओर बढ़ गया वह फिर पीछे मुड़कर नही देखता है । इस संसार में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसमें विकास और विस्तार की अनन्त सभावनाएँ विद्यमान है । उसमें जहाँ शारीरिक क्षमता होती है वहीं वह अपने में बौद्धिक ऊर्जा को भी संजोये रहता है । यदि मनुष्य अपनी ऊर्जा का उपयोग विश्व की भलाई के लिए करता है, सत्य, अहिंसा और प्रेम की भावना को जगाता है तो वह ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होकर उसकी आत्मा का कल्याण करती है । यदि ऊर्जा का वह दुरुपयोग करने लगे तो जीवन अधोगामी होकर नष्ट हो जाता है । बारूद शक्ति का भण्डार माना गया है । उसके माध्यम से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को तोड़कर मार्ग बना लिए जाते हैं, वही बारूद यदि किसी दुर्जन के हाथ में हो तो वह बस्तियों को वीरान बना देता है । आपके पास ऊर्जा है उसे जीवन की उन्नति में लगाने का प्रयत्न करोगे तो आपका तो भला है ही दूसरों का भी भला होगा ।

साधक अपने साथ दिव्य ऊर्जा का स्रोत लेकर आगे बढ़ता है । अपने अन्तर मे वह ज्ञान की मशाल को जलाये रखता है । जिसके पास प्रकाश है वह न तो स्वयं अन्धकार में भटकता है न किसी अन्य को भटकने देता है । स्वयं की हानि होने पर उसे अपनी नहीं बल्कि दूसरे की चिन्ता रहती है । बचपन में एक छोटी सी एकांकी पढ़ी थी । वह आज भी मेरे मस्तिष्क में छाई हुई है ।

एक चोर रात्रि में चोरी करने के इरादे से पादरी के घर में प्रविष्ट हुआ । पादरी अभी तक जगा हुआ था । उसने चोर को देख लिया तो बोला - भाई ! अंधेरे में क्यो खड़े हो, उजाले में आओ ! मेरी इस कुटिया मे तुम्हारा स्वागत हैं । तुम मेरे अतिथि हो - कहो इस समय कैसे कष्ट उठाया ? चोर सकपका गया । उसने वहीं मेज पर रखा चॉदी का मोमबत्ती स्टेण्ड उठाया और भाग खड़ा हुआ ! पादरी मुस्कराता हुआ उसे बाहर की ओर जाता हुआ देखता रहा । चौराहे पर पुलिस वाले ने उसे पकड़ लिया । वह घबराया हुआ था । पुलिस अधिकारी ने उसके

हाथ में मोमबत्ती स्टेण्ड देखकर पूछा - यह कहाँ से लाये हो ? चोर ने पादरी की कुटिया की ओर संकेत किया । पुलिस वाला चोर को पकडकर पादरी के पास लाया और पूछा - क्या यह स्टेण्ड आपका है । पादरी ने कहा - हॉ यह पहले मेरे पास ही था । यह आया तो उपहारस्वरूप मेरे घर से ले गया । आप इसे छोड़ दीजिए । पुलिस वाले ने चोर को छोड़ दिया । चोर पादरी की दयालुता देखकर पश्चाताप करते हुए पॉवों में गिर पडा और बोला - आप महान् है । मैं भटक गया था । आपकी उदारता ने मेरा मन बदल दिया है अब मैं भविष्य मे कभी भी गलत कार्य नही करूँगा ।

पादरी ने कहा - भाई । तुम्हें सद्‌बुद्धि आ गई यह क्या कम बात है ! श्रम करके जीवन-यापन करो और कभी किसी को धोखा देने की कोशिश मत करो । जो अपकार करे उसके साथ भी उपकार करने की भावना रखो । यही धर्म का मार्ग है । हजरत मूसा के पास कारु का बादशाह पहुँचा और बोला - मुझे भी कुछ ज्ञान दीजिए ताकि मै उसी अनुरूप अपने जीवन को ढालने का प्रयास कर सकूँ मैं आपकी भांति सच्चा साधक तो नही बन सकता मगर आपके बताये उपदेशो का पालन तो कर ही सकता हूँ । मूसा ने कहा - भाई । तू भलाई वैसी ही गुप्त रीति से कर और भूल जा जैसी मालिक ने तेरे साथ की है और भूल गया है । उदारता वही है जिसमें अहसान का बोझ न हो । सच्चे उपकार के पेड़ की डालियॉ आकाश के पार पहुँच जाती है । महान् पुरुष कभी भी उपकार का बदला नही चाहते हैं । जल बरसाने वाले बादलों का क्या हम प्रत्युपकार कर सकते हैं । जल बरसाने वाले बादल यदि ओले भी बरसादे तो हम उन बादलो को बुरा-भला नहीं कहते हैं । प्रकृति को यही स्वीकार था, कहकर सन्तोष कर लेते हैं । सज्जन पुरुष जो साधना में लगे हुए होते हैं वे सदैव अपनी सहनशक्ति को बढ़ाते हुए भले बुरे व्यवहार को सहज में ही स्वीकार करते हुए शान्ति से आत्म-विकास करते रहते है ।

एक महात्मा थे उग्रानन्द जी ! नाम से विपरीत ही उनका स्वभाव था । उन्हे सहजानन्द कहे तो ज्यादा उपयुक्त है । उनको कोई गालियॉ

देता तो भी वे यही कहते भाई ! ये लोग मुझे सहन करने की आदत में सहयोग प्रदान कर रहे हैं । यही मेरी परीक्षा है । उन्हें कोई कुछ भी कह देता मगर वे सदैव सहज भाव में बने रहते । साधना मे लगा साधक विपरीत परिस्थितियों में भी कभी विचलित नहीं होता है । ग्रीष्मकाल की एक रात्रि में वे अपनी कुटिया के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। एक चोर बैल चुराने की नियत से एक किसान के घर में घुसा । बैल खोलकर वह बाहर निकला ही था कि किसान की नीद खुल गई । उसने देखा कोई उसके बैलों को बाहर ले जा रहा है । वह चिल्लाया चोर, चोर, यह सुनकर अन्य पड़ोसी भी जाग ,गये । चोर बैलों को छोडकर भाग खड़ा हुआ । लोग उसकी और दौड़ पड़े । वृक्ष के नीचे स्वामी उग्रानन्द जी बैठे थे । सघन अन्धकार छाया हुआ था । लोगों ने सोचा- यही चोर है, चुपचाप आकर बैठ गया है । वे ध्यानस्थ स्वामीजी को मारने लगे। स्वामीजी मार खाते रहे मगर कुछ नही बोले । मारने वाले लोग जब थक गये तो उन्होने स्वामीजी को एक घर मे कैद कर दिया। अगले दिन पुलिस को सूचित किया कि हमने एक चोर को पकड़ लिया है । पुलिस वालो ने आकर घर का द्वार खोला तो देखा - अरे ! ये तो स्वामीजी है। सिर से खून बह रहा है । जगह-जगह चोटे लगी हुई है । पुलिस अधिकारी ने कहा भाई । ये चोर नही बहुत पहुँचे हुए साधक हैं । आपने बहुत गलत कार्य किया है । तुम सबको इसकी सजा मिलेगी। किसान घबराकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे । एक ने कहा - वे कुछ बोले ही नही इसलिए यह भूल हो गई है । हमने साधु का अपमान किया है अब आप जो भी सजा देंगे हम भुगतने को तैयार हैं । तभी उग्रानन्द जी कक्ष से बाहर निकल आये और बोले - भाई इनकी कोई गलती नहीं है, मैं अपनी सहनशक्ति की परीक्षा कर रहा था । मुझे प्रसन्नता है कि मैं उसमें सफल हुआ । इन लोगों ने रात भर मुझे अपने घर मे अतिथि बनाकर रखा है अतः तुम इन्हें मेरी सेवा के वदले मिठाई खिलाओ ।

पुलिस अधिकारी ने कहा - स्वामीजी ! आप यह क्या कह रहे है इनके दुर्व्यवहार की तो इनको सजा मिलनी ही चाहिए । स्वामीजी ने कहा- फिर इनमें और मुझमें क्या फर्क रह जायेगा । ये जो जानते थे वही काम इन्होंने किया है । मैं जो जानता हूँ वह काम मैं कर रहा हूँ । कुल्हाडी चन्दन के वृक्ष को काटती है मगर चन्दन का वृक्ष उसे

अपनी सौरभ प्रदान करता है । जो हाथ मेंहदी को पीसते है, मेंहदी उन हाथो को अपनी लालिमा प्रदान करती है ।

सचमुच जो लोग अपकार को भी अपना उपकार समझते हैं, वे ही आत्म-कल्याण कर सकते हैं । हम तो वीतराग प्रभु के उपासक हैं। यदि उनके द्वारा बताये गये पथ का अनुसरण करें तो सभी प्रकार के दु:खों से रहित होकर अनन्त सुख रूप मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं ।

वर्तमान युग में अध्यात्म से भटका मानव भौतिक सुखों को प्राप्त करने हेतु पाप कर्म की ओर प्रवृत्त हो रहा है । अर्थ का उपार्जन ही उसके जीवन का उद्देश्य रह गया है । जो मनुष्य होकर भी अर्थ-पिशाच बन जाता है वह न तो स्वय कभी सुखी रह पाता है और न दूसरों को ही सुखी रख सकता है । मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह श्रेष्ठ कर्म करे। श्रेष्ठ कर्म ही युगों-युगों तक मनुष्य के नाम को अमर रखते हैं । मनुष्य मृत्यु की गोद में जाता है पर श्रेष्ठ कर्म सदा सदा के लिए जीवित रहते हैं । श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्य की मृत्यु भी उसको गरिमा प्रदान कर देती है । लाला लाजपत राय के शब्दों में यदि व्यक्त करें तो मैं कहूँगी कि -

To die nobly one must first learn to Live nobly. Nobly is the death which towers the edijice of a well lived Life aliye. Lived for Principle for the motherland and for humanity.

अर्थात् गरिमापूर्ण मृत्यु के लिए मनुष्य को पहले गरिमापूर्ण ढंग से जीना सीखना चाहिए । वही मृत्यु भव्य है जो भली प्रकार जिए गये जीवन अर्थात् सिद्धान्तों के लिए मातृभूमि के लिए और मानवता के लिए जिए गये जीवन के प्रासाद का शिखर बनती है ।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने दुर्लभ एवं क्षण भंगुर जीवन को समझकर उसके हर पल का सदुपयोग करने का ध्यान रखे । उसके मन मे प्रतिक्षण यह विचार विद्यमान रहना चाहिए कि कोटि पुण्यों के फलस्वरूप जो पर्याय मिली है उसे सार्थक बनाया जाये !

जीवन की सफलता के परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक मनुष्य के अपने-अपने दृष्टिकोण हो सकते हैं । कुछ अटूट धन की प्राप्ति कर लेने को ही जीवन की सफलता समझते है, कुछ उच्च पद और प्रतिष्ठा को अपनी कामयाबी मान लेते है । कुछ संसार में यश अर्जित कर सोचते हैं कि मैंने तो अपना लक्ष्य

प्राप्त कर लिया । जो व्यक्ति मानव जीवन के मर्म को नही जानते वे अपनी वाह्य उपलब्धियों तक ही सीमित हो जाते है । घर, परिवार, धन-वैभव को ही अपना लक्ष्य समझकर स्थिर हो जाते हैं । उन्हें ज्ञान के अभाव मे यह पता ही नहीं चल पाता कि ये सब तो सामान्य उपलब्धियाँ है । वास्तविक उपलब्धि तो मुक्ति के सोपानों की सहायता से शिखर पर पहुँचना है । यह सोपान भोग से नही बल्कि, प्रेम, सेवा, सहयोग, शुभ भावना, कषायों को मिटाने, वासना को हटाने, सद्वृत्तियों को बढ़ाने से ही सुलभ है । इसके लिए आवश्यक है आत्मज्ञान की उपलब्धि । जिसने आत्मज्ञान को प्राप्त कर लिया वह आत्म-विजय मे सक्षम एवं सफल हो जायेगा । जो मनुष्य आत्मज्ञान द्वारा निर्द्वन्द्व एवं निरासक्त होकर आगे बढ़ेगा वह स्वयं का कल्याण तो करेगा ही अपना परलोक भी सुधार लेगा । हम अपने अंतःकरण की वृत्तियों पर ध्यान रखें एवं कषायो को त्यागने की चेष्टा करें । संसार के सुखों के, माया-जाल मे जो उलझ जाता है वह सिद्धि के, साधना के सोपानों पर पांव रखने की क्षमता खो देता है। जो जीवात्मा संचित कर्मो को काटते हुए उदित कर्मो को सावधानी पूर्वक सहजता से स्वीकार कर लेती है वही परमात्म-स्वरूप का दर्शन कर सकती है ।

यदि आपने आत्मकल्याण का मार्ग चुना हैं तो साधना के सोपान पर पॉव रखकर अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ो । अन्त में मै तो आपसे सिर्फ यही कहूंगी कि -

तुम अहर्निश बढ़ते रहो, चरण मंजिल चूम लेगी,
दृढ़ प्रतिज्ञ चढ़ते रहो चोटी समतल-सी लगेगी ।

प्रचण्ड गर्मी को यहाँ तुमने यदि मधुमास माना -
फिर कौनसी शक्ति भला जो तुम्हें जग में रोक लेगी॥

बन्धुओं । नेपोलियन की उस उक्ति पर ध्यान दो जिसने एक सिपाही के रूप में अपना जीवन शुरु किया और फ्रान्स का राष्ट्राध्यक्ष वन गया। वह कहता था असंभव शब्द मेरे शब्दकोश में नहीं है । मनुष्य यदि निश्चय कर ले तो वह सब कुछ पा सकता है । बस उसका उद्देश्य पवित्र होना चाहिए । आप अपने पवित्र उद्देश्य को निर्धारित कर आगे वढ़ेंगे तो आपका तो कल्याण होगा ही, संसार का भी भला होगा ।

19. बीते उमरिया : मत मैली कर अपनी चदरिया

आत्मीय धर्मप्रेमी बन्धुओं ।

महात्मा कबीर ने अपने एक पद में सत्सगति के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है -

कबिरा संगत साध की, ज्यों गन्धी का वास ।
जो कछु गन्धी दे नहीं, तो भी वास-सुवास ।

अर्थात् सज्जन पुरुषों की संगति इत्र बेचने वालो के निवास के समान है । यदि इत्र बेचने वाला इत्र न भी दे तो भी उसके पास से जो गुजरेगा वह भी सुगन्ध प्रदान करने लगेगा । साधु-सज्जन चाहे उपदेश दें या न दें जो भी मनुष्य उनके सम्पर्क में होकर निकलता है, उनका मन भी शुद्ध हो जाता है । महापुरुषों की सत्संगति कभी भी निरर्थक नही जाती ! तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में सत्संगति पर कहा है-

शठ सुधरहि सत् संगतिपावा ।
पारस परस कुधातु सुहावा ॥

यह संगति का ही असर है कि दुष्ट भी सज्जनों की संगति प्राप्त कर सुधर जाता है । पारस पत्थर को छूकर कुधातु अर्थात् लोहा भी सोना बन जाता है । सगति का मनुष्य जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक अपने शिष्यो सहित एक ग्राम में पहुँचे । गुरु को आया जानकर लोगों में बड़ा उत्साह जागा, सभी ने

गुरु-वाणी का लाभ प्राप्त कर जीवन को धन्य माना । अगले दिन नानक ने वहाँ से प्रस्थान करते समय, आशीर्वाद प्राप्त करने आये लोगों से कहा- 'उजड़ जाओ ।' ग्रामवासी आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह देखने लगे । गुरु के प्रति श्रद्धा थी, इसलिए इस विपरीत आशीर्वाद को भी चुपचाप सुन लिया । मन ही मन उन्हें पीड़ा भी हो रही थी, शायद हमारी सेवा मे कमी रहने के कारण हमको उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया है । नानक आगे बढ़े और दूसरे ग्राम में पहुँचे । ग्रामवासियों को नानक के शिष्यों सहित आने का समाचार मिला तो ग्राम के बाहर आकर उन पर पत्थर फेंके, गालियां दी, बुरा-भला कहा । नानक ने उनका विरोध सहन करते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि आप यहीं आबाद रहें । नानक शिष्यों सहित आगे बढ़ गये । पहले वाले ग्राम के कुछ लोग भी साथ थे । उनमे से एक ने कहा - गुरुदेव ! हमने आपका एवं आपके शिष्यों का इतना सम्मान किया, वाणी सुनी । इसके बावजूद भी आपने हमको उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया जबकि इन दुष्ट ग्राम वालों को आबाद होने का आशीर्वाद दिया । यह तो अन्याय है ! नानक ने कहा - भाई ! मैंने ठीक ही कहा है- आपके ग्राम वाले भले मानुष है, वे जहाँ भी जायेगे भलाई का ही काम करेंगे । उनसे सब का हित होगा । ऐसे लोगों की ही समाज एवं राष्ट्र को आवश्यकता है, अतः उनका सर्वत्र बिखर जाना उचित है । इस ग्राम के लोग दुष्ट स्वभाव के हैं ऐसे लोग अन्यत्र जाकर लोगों को दुःखी ही करेगे अतः इनका इसी ग्राम में ही आबाद रहना सबके लिए हितकर है।

गुरु की वाणी का मर्म समझकर सभी शिष्य नतमस्तक हो गये। सज्जन लोगों की त्संगति से मन पर उत्तम प्रभाव पड़ता है । कहा भी गया है -

नारिकेल समाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।

नारियल का फल बाहर से अरमणीय प्रतीत होता है कठोर भी दिखाई देता है परन्तु अपने उदर में स्वादिष्ट एवं गुणकारक पदार्थ रखता है । सज्जन पुरुप ऊपर से सामान्य दिखाई देते है मगर उनके मन मे प्रेम, दया व सहानुभूति समाहित रहती है । उनकी वाणी में मधुरता का सागर हिलोरे लेता प्रकट होता है ।
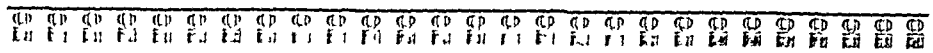
दुर्जनो का स्वभाव सज्जनो से विपरीत होता है । वे ऊपर से कोमल दिखाई देते हैं मगर मन मे पत्थर से भी कठोर होते है । बन्धुओं ! याद रखो । मधुमक्खी के कॉटो में, सर्प के दॉतों मे और बिच्छु के तो डंक मे ही विप रहता है मगर दुर्जन के तो रोम-रोम में विप भरा रहता है। धर्म की ओर अग्रसर व्यक्ति को जिसे आत्म-कल्याण की चाह है दुष्टों से दूर रहकर सज्जनों के प्रति श्रद्धा रखैनी चाहिए । अच्छी संगति का प्रभाव भी अच्छा ही पड़ता है । काई पर पॉव रखोगे तो फिसलने का भय बना रहेगा । सज्जन और सन्त तो संसार मे सदैव सुसंगति करने की ही प्रेरणा देते हैं - कवि ने कहा भी है -

सुसंगत की महिमा तो सदैव ही रही है,
महान् पुरुषों ने सदैव बात यही कही है ।
कुसंगत से गंगा-जल भी खारा बन जाता-
बचो, सदा सन्तों की सीख तो यही है ॥

कुसंगति विष के समान हैं उससे बचने में ही सबका भला है। जिसे आत्मज्ञान है वह हर स्थिति में अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ता है । फूल का स्वभाव खिलकर सुगन्ध फैलार्ना होता है । गुलाब शूलों के मध्य खिलकर भी सौरभ ही देता है । काले रंग का भ्रमर उस पर बैठ जाये तो भी वह अपना स्वभाव नहीं त्यागता । वसूले से काटे जाने पर भी चन्दन, सुगन्ध ही देता है, वैसे ही सज्जन अपने अहित को भी पचा जाते है और बदले में सभी के कल्याण की कामना करते हैं ।

एक सज्जन तालाब में स्नान कर रहे थे । तभी उन्होंने देखा कि एक बिच्छु पानी में डुबकियॉ खा रहा है । सज्जन को दया आ गई उसने बिच्छु को हाथ में उठाकर पानी से बाहर निकालने का प्रयास किया । हाथ में लेते ही बिच्छु ने डंक मार दिया । सज्जन का हाथ विष के प्रभाव से झनझना उठा और बिच्छु पानी में गिर गया । उन्होंने पुनः प्रयास किया और उसे बाहर निकाला तो बिच्छु ने पुनः वही प्रतिक्रिया की । एक व्यक्ति यह दृश्य देख रहा था । वह बोला - भाई, आप रहने दीजिए- यह दुष्ट है, भला करने वाले के साथ भी बुरा ही करता है । सज्जन ने कहा - स्वभाव का अन्तर है जब यह अपने बुरे स्वभाव को त्यागना

नहीं चाहता है तो फिर मैं अपने अच्छे स्वभाव का परित्याग कैसे कर सकता हूँ ।

सज्जन मुसीबत में भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते । अगरु का धूप अग्नि में डाले जाने पर भी सुगन्ध ही देता है । सज्जन व्यक्तियों को हर समय अपने कर्त्तव्यों का बोध रहता है । मनुष्य-जीवन अनेक भवों के उपार्जित पुण्यों का सुफल है । जो विपरीत परिस्थितियो में भी अपने मानवीय गुणों का त्याग न करे, कर्त्तव्यों से विमुख न बने वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है । तभी तो कहा गया है -

अशुभ कर्म से बचो बन्धुओं !
धर्म मार्ग पर कदम धरो ।

पुण्य जगे, मानव तन पाया,
कुछ तो तुम कर्त्तव्य करो ॥

जीवन में स्थान-स्थान पर विपरीत स्थितियाँ पैदा हो सकती है जो हमें कर्त्तव्य-मार्ग से हटाने की चेष्टा कर सकती है । पैर में लगा शूल, पीड़ा से हमारे पाँवों को डगमग कर सकता है, मन में चुभी कोई छोटी-सी बात हमें उद्विग्न कर सकती है । अग्नि की छोटी-सी चिनगारी ज्वाला बनकर पूरी बस्ती को खाक कर सकती है, नौका मे हुआ एक छोटा-सा छिद्र प्रलय का दृश्य उपस्थित कर सकता है, विष की एक बूंद प्राणों के लिए घातक हो सकती है । जो सजग हैं, सावधान हैं, प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहते हैं, वे जानते है कि जीवन की तनिक सी भूल सम्पूर्ण साधना को विनष्ट कर सकती है । अत: ऐसी विपम परिस्थितियो मे भी वे रंचमात्र भी अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होते ।

पापो एवं बुराइयों का ससार बड़ा लुभावना होता है । अस्थिर मन वाले व्यक्ति उस ओर जल्दी ही आकर्पित हो जाते हैं । साधारण मनुष्य अज्ञानता के वशीभूत उनकी ओर आकर्षित होकर के बुराइयों के दास बन जाते है । वे आत्म-स्वरूप का विस्मरण कर आत्मोन्नति मे स्वयं ही स्वय के वाधक होकर पतन की ओर लुढ़कते जाते हैं । प्रसिद्ध अग्रेज कवि कालरिज ने अपनी कविता किस्तावेल में पाप को एक सुन्दर स्त्री के रूप मे चित्रित किया है । वह सुन्दर स्त्री किस्तावेल नामक लड़की

को अपने वाक्‌जाल मे उलझा लेती है । परन्तु बाद में उसकी योजना असफल हो जाती है । कवि उसके कोढी वक्षस्थल का चित्रण करते हुए यह कहता है कि पाप सुन्दर रूप धारण करके आता है लेकिन उसका वास्तविक रूप घिनौना होता है । पाप छिपाने से नहीं छिपता, एक न एक दिन वह प्रकट हो ही जाता है । अतः पाप कर्म से बचने के लिए मनुष्यों को सज्जनों की संगति में रहना चाहिए । सज्जनों की सीख एवं उनसे प्राप्त गुणो के द्वारा मानव महानता को प्राप्त करता है । आज ससार मे पंथों, ग्रन्थों एवं सन्तों की कमी नहीं है इसके बावजूद भी मानव अपने कर्त्तव्यों से दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा है, इसका प्रमुख कारण है सत् संगति का अभाव ! सत्संगति के अभाव मे कपाय आकर्षक रूप में जीवन-महल मे प्रवेश कर हमारी साधना का नाश कर देते हैं । आत्मा को मानवीय गुणो से रहित कर उसको कंगाल बना देते हैं । यदि सज्जनों का सान्निध्य प्राप्त होता रहेगा तो कपाय भावना जवासे की भाँति अमृतवाणी की वर्षा से दिनों दिन कुम्हलाकर नष्ट हो जायेगी ।

हमारे जीवन में अपना शरीर एक घर की भाँति है, जिसका मालिक मन है । हम यदि सावधान हैं हमारा मन पर नियन्त्रण है, तो कषाय रूपी चोर हमारे शरीर रूपी घर में प्रवेश नहीं कर सकते । जिन घरों में लोग जागते रहते है उन घरों में चोरों का प्रवेश नहीं हो पाता । मन का आध्यात्मिक जागरण ही जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करता है । वह बन्धनों से मुक्त करता है । मन पर जिसका अधिकार हो जाता है वही आत्मा का कल्याण कर पाने में सक्षम होता है ।

सुकरात से किसी ने पूछा - संसार में आपका सच्चा साथी कौन है ? उन्होंने कहा - मेरा मन ही मेरा साथी है । और आपका शत्रु कौन है ? वे बोले - मेरा मन ही मेरा शत्रु भी है । यह सुनकर सभी दंग रह गये कि ऐसा कैसे ? मन शत्रु एवं मित्र दोनों कैसे हो सकता है, एक शिष्य ने पूछा !

सुकरात ने कहा - अरे ! इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है? मन बड़ा चंचल है यदि यह सत्पथ पर ले जाता है तो यह मित्र है और सत्पथ से भटका दे तो वह मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है । इस कारण मन से मुझे सदैव सावधान रहना पड़ता है ।
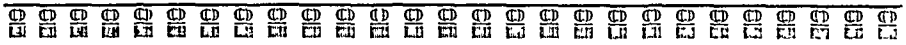
जो आत्मकल्याण की ओर अग्रसर है उन्हें अपने मन पर नियन्त्रण रखना चाहिए । उन्हें सदैव जाग्रत रहना चाहिए क्योंकि कहा भी गया है-

कमल पत्थर पर नहीं पानी में खिलेंगे ।
परमार्थी के पाँव सुपथ पर ही चलेंगे ।

भगवान नहीं है भव्य पाषाण गृहों में -
वे तो सज्जनों के मन में ही मिलेंगे ॥

हमारा मन अनन्त शक्ति का स्रोत है । उस मन की मालिक हमारी आत्मा है । शक्तिशाली शुद्ध-बुद्ध आत्मा को कभी भय नहीं होता । मनुष्य को अपनी प्रवृत्तियों के साथ शक्तियो पर विश्वास होना चाहिए । मन मे दृढ शक्ति एवं धर्म के प्रति आस्था है तो हमारा जीवन कमल की भाँति कीचड़ मे पैदा होकर भी उससे ऊपर उठा रह सकता है । मानव मन मे सदैव यह भावना रहनी चाहिए कि मै स्वयं देव हूँ, शुद्ध-बुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ । उसे अपने पापों का स्मरण करके उन्हे धिक्कारने एवं सचित कर्म-मल को नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए । उसे ऐसा कोई भी आचरण नहीं करना चाहिए जिससे कर्म-बन्धन हो ! सज्जनों की सुवासित ज्ञान-समीर से ऊर्जा ग्रहण कर जीवन को सफल बनाना ही प्रत्येक मानव का ध्येय होना चाहिए ।

जो दुष्कर्म हो गये हैं उन दुष्कर्मो का फल तो भोगना ही पड़ेगा। 'कर्म-गति टारे नहीं टरै ।' कर्म गति तो भोगनी ही होगी । कर्म की गति के कारण ही तो चन्दना को बिकना पड़ा, मूला सेठानी के अत्याचार सहने पड़े । इन्हीं कर्मो के कारण ही राजा हरिश्चन्द्र को हरिजन के घर दास बनकर रहना पड़ा ! कोई पाप-मुक्ति के लिए रोने लगें और सोचें कि रोने से पाप कर्म घटकर पुण्य की वृद्धि हो जायेगी । नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता है । यह जीवात्मा नरक-तिर्यच आदि योनियों में घोर पीड़ा को सहती हुई कितनी रोई होगी । उसका कोई पार नहीं है । हमारा रोना ही हमारी अज्ञानता का द्योतक है । न तो हमे रोना हैं और न हमें प्रमाद में सोना हैं अपितु जीवन को उन्नत भूमिका पर लाने के लिए प्रयत्न करना है ।

वन्धुओ ! हमारी आत्मा मूल रूप से परम उज्ज्वल हैं । पाप कर्म का यदि इस पर मैल चढ़ा है तो वह संगति का परिणाम हे । दुर्जनों
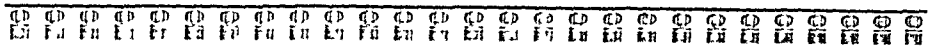
की संगति के कारण आत्मा के मूल भावो को भूलकर कषायो के कुचक्र में पड़ना मूर्खता के सिवाय कुछ नही है । कषायों के कारण ही साधना का उद्यान जलता हुआ प्रतीत होता है । यदि आत्मा को गुरु का अनुग्रह एव सज्जनो की संगति प्राप्त होती रहे तो मन निर्मल हो जाता है । इस आत्मा मे ही परमात्मा का स्वरूप है जो कषायों से निवृत्त होने पर प्रकट होने लगता है । महात्मा कबीर ने तो कहा है –

मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जाण ।
दशवां द्वारा देहुरा, तामें ज्योति पिछाण ॥

उस परम दिव्य ज्योति का निवास हमारी देह में ही है उसके दर्शन हेतु कही बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है । उस दिव्य ज्योति के दर्शन ही मुक्ति का द्वार खोलने मे सक्षम हैं । जीवन पल पल घट रहा है । हमे प्रत्येक पल का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिए । समय का सदुपयोग ही ध्येय-प्राप्ति में सहायक हो सकता है । जो दुराचरण हमसे हो गया उसे पश्चाताप के जल से धोकर दृढ़ संकल्प सहित साधना मे लग गये तो सफलता निश्चित है । मानव जीवन तो कर्म मैल धोने का, पापो से मुक्त होने का सुअवसर लाता है । इस अवसर का लाभ उठाने में प्रमाद नहीं करना चाहिए । धर्म के मार्ग में चलने वालों को चाहिए कि वह पाप कर्म से डरे एवं पुण्य कर्म करे । पापाचरण से आत्मा अशान्त होकर स्वभाव से विभाव में चली जाती है । यही कर्मबन्धन का कारण बनती है । जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाना है, असीम शान्ति की गोद में जाना है तो वही कार्य करो जो पुण्य में अभिवृद्धि करे ! सज्जनों की संगति जिसने कर ली वह अपनी जीवन-नौका को अवश्य पार लगा लेता है । सज्जन के लिए कवि ने कहा है –

सज्जन कभी दुर्जन से नाता जोड़ते नहीं है,
स्वार्थवश जीवन को कभी मोड़ते नहीं है,
सज्जन तो चन्दन की भांति सदा होते –
जो, सुरभि और शीतलता छोड़ते नहीं है ॥

सचमुच सज्जन का स्वभाव चन्दन की भाति होता है । वे घिसने पर भी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते । विशुद्ध जीवन-यापन करते हुए स्वयं भी मुक्ति की ओर बढ़ते है एवं दूसरों को भी आगे बढ़ाते

है । मनुष्य को चाहिए कि वह अपने अमूल्य जीवन की सार्थकता भली भाँति समझते हुए मुक्ति के राजपथ पर अग्रसर होने का प्रयास करें ।

साधक को चाहिए कि वह अपना मन शिशुवत् बना लें । बच्चों का हृदय भगवान का मन्दिर होता है । शिशु जिस प्रकार अपनी माता के लिए तड़फता है उसी प्रकार साधक को मोक्ष के लिए तड़फ जगानी चाहिए । कुसंगति के ज्वर से जो स्वयं को बचा लेता है वही अपने इस लक्ष्य को पा लेता है ।

एक हंस की जंगल में रहने वाले कौए से घनिष्ठ मित्रता हो गई। दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे रहते । आकाश में एक साथ लम्बी-लम्बी उड़ान भरकर लौट आते । कौआ हंस के धवल शरीर से मन ही मन ईर्ष्या करता था । एक दिन दोपहर का समय था । भीषण गर्मी से परेशान व थका हुआ मुसाफिर उस वृक्ष के नीचे आकर विश्राम हेतु लेट गया। कौआ और हंस दोनों ही पास-पास बैठे ग्रीष्म की दोपहर व्यतीत कर रहे थे । कौआ अपनी कुटिलता पर उतर गया । उसने सोते हुए मुसाफिर के ऊपर बीट की एवं उड़ गया । बीट के कारण मुसाफिर का चेहरा गंदा हो गया । उसने ऊपर दृष्टि डाली तो हंस को देखा । उसे लगा यह हंस का ही काम है । मुसाफिर ने पास ही पड़े पत्थर को उठाकर निशाना साधकर के हंस पर चला दिया । हंस लड़खड़ाता हुआ मुसाफिर के समक्ष गिर पड़ा । वह गिरकर तड़फड़ाने लगा । उसकी आँखें मुसाफिर से दया की भीख माँग रही थी । मुसाफिर ने कहा - तुम तो हंस हो, ऐसी नीच हरकत तो कौआ करता है । हंस ने कहा - आप सच कहते हैं । यह हरकत कौवे ने ही की है । वह तो बीट करके उड़ गया मगर उसकी कुसंगति का दण्ड मुझे भोगना पड़ा है ।

सज्जन जीवन के अन्तिम क्षणों तक सद्गुणों की प्राप्ति में लगा रहता है । सज्जन यदि दुर्जन के प्रभाव में आ जाये तो वह अपने असली जीवन को भूलने लगता है । अर्हत्प्रवचन में इस बात को बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखा है -

दुज्जण संसग्गीए पजहदि णियंग गुणं खु सुजणो वि।
सीयल भावं उदयं जह पजहदि अग्गि जोएण ॥
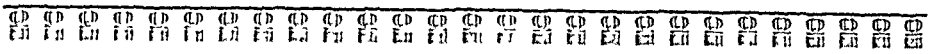
अर्थात् दुर्जन की संगत से सज्जन भी निश्चय ही अपने गुण को छोड़ देता है । जैसे जल अग्नि के संयोग से अपने शीतल स्वभाव को छोड देता है ।

आत्म-कल्याण जिसका लक्ष्य है उसे अपने आस-पास के वातावरण पर दृष्टि रखना चाहिए । मन की चादर को मैली होने से बचाना चाहिए । कर्मो का मैल एक बार चिपक गया तो उसे हटाना बड़ा मुश्किल हो जाता है । कबीर ने इस जीवन रूपी चादर के लिए कहा है -

दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ।
जग में मैली की ना चदरिया ।

जीवन की चादर को पापों की कालिमा से मैली मत करो । जो जीवन तुम्हें मिला - जो जीवन रूपी चादर तुम्हें मिली है उस पर लगी पापों की कालिमा धो सकोगे तो अपने आप पर उपकार होगा । आपका उत्थान होगा आत्मा का कल्याण होगा । अगर ऐसा नहीं कर सकते, जीवन चादर को पुण्य के जल से धोने की शक्ति नहीं है तो कोई बात नहीं इस मानव-भव में आकर कषायों का मैल मत चढ़ाओ । यदि इसे गन्दी कर दिया तो आपकी आत्मा परमात्म-स्वरूप को कैसे प्राप्त करेगी । इस पर आपको विचार करना है ।

मानव-भव पाया और आत्म-कल्याण का भाव नहीं जगाया तो जीवन रूपी अमूल्य रत्न पाकर खो दिया । यह बुद्धिमानी का काम नहीं होगा। एक बोध कथा सुनाकर मैं अपनी बात को विराम दूँगी ।

बगीचे में तितली और मधुमक्खी इधर-उधर उड़ रही थी । वे कभी फूलों पर बैठती कभी पत्तों पर बैठ जाती । एक दिन तितली ने कहा - बहन ! तुम्हारा जीवन भी व्यर्थ है । दिन भर काम में लगी रहती हो, थोड़ा जीवन का आनन्द भी लिया करो । मुझे देखो बस उड़ती रहती हूँ । मस्ती करती रहती हूँ । मधुमक्खी कुछ नहीं बोली । जब शाम हुई और दोनों एक ही पौधे पर आकर बैठी तो देखा मधुमक्खी के पास ढेर सारा शहद है और तितली के पास कुछ भी नहीं है ।
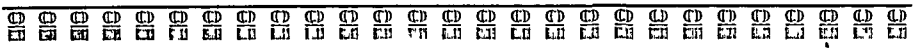
हम अपने जीवन को तितली की भांति मस्ती में मौज-शौक में ही न गॅवादे । साधना व आराधना का शहद इकट्ठा करके आत्मकल्याण में लग जाना है । जीवन रूपी सागर से मोती चुनने का यही समय है। वृद्धावस्था में तो रोगों के तूफान आयेंगे । शरीर-बल क्षीण हो जायेगा तब उन तूफानों में आत्मकल्याण का मोती हाथ नहीं आयेगा । अन्त में यही कहूँगी कि -

औरों पर नहीं स्वयं पर अधिकार करो,
सदा शुद्ध भावों का मन में विस्तार करो ।
कल की चिन्ता में आज को खोने वालों -
समय रहते निज आत्म का उद्धार करो ॥

सुपथ चुनो : गुणानुरागी बनो

धर्मप्रेमी महानुभावों ।

बचपन में एक दोहा पढा था, वह मुझे याद आ रहा है - आपने भी उसको पढ़ा होगा -

उत्तम विद्या लीजिए जदपि नीच पै होय ।
पर्‌यो अपावन ठौर पै, कंचन तजे न कोय ॥

उत्तम विद्या हो, ज्ञान हो या फिर गुण हो, चाहे एक रंक के पास हो या राजा के पास हो - हमें अवश्य ग्रहण करना चाहिए । सोने जैसी धातु यदि अपवित्र स्थान पर भी दिखाई दे जाती है तो मनुष्य उसे तत्काल उठा लेता है । गुणों की स्थिति तो स्वर्ण से भी महत्त्वपूर्ण है । बुद्धिमान् मनुष्य की यही पहचान है कि वह गुणों का परित्याग नहीं करता है । इसीलिए तो कहा है -

गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे ।

श्री कृष्ण के जीवन का एक प्रसङ्ग है, एक दिन युधिष्ठिर एवं दुर्योधन श्रीकृष्ण के पास मिलने गये । बात ही बात मे श्री कृष्ण ने कहा **'भिन्नमतिर्हिलोकः'** संसार के लोगों की प्रकृति बड़ी विचित्र है । सभी भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले होते हैं । महाराज युधिष्ठिर ने कहा - यह अपनी-अपनी सोच है । जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि । श्रीकृष्ण ने कहा - आप एक काम करें । नगर में जितने भी अवगुणी मिले उनके नाम आप लिखकर लाओ । भाई दुर्योधन । तुम उन लोगों के नाम लिखकर लाओ जो गुणी है ।

श्री कृष्ण का आदेश स्वीकार कर दोनों ही अलग-अलग दिशाओं में चल पड़े। युधिष्ठिर ने अनेक लोगों से पूछताछ की तो पाया कि प्रत्येक व्यक्ति मे कोई न कोई गुण अवश्य है । उधर दुर्योधन ने भी पता लगाया तो उसने पाया कि कोई न कोई अवगुण सबमे है । संध्या को दोनों ही खाली कागज लेकर श्रीकृष्ण के पास पहुँच गये । दुर्योधन ने कहा - मुझे तो पूरी नगरी में एक भी ऐसा व्यक्ति नही मिला जो गुणी हो । सबमे अवगुण ही अवगुण भरे थे । युधिष्ठिर ने कहा - महाराज ! मुझे तो कोई भी अवगुणी मिला ही नहीं ।

यहाँ एक को अवगुण देखने थे, मगर उसको गुण दिखाई दिये और जिसे गुण देखने भेजा उसे अवगुण दिखाई दिये । इस लोक को देखने की दो दृष्टियाँ है । एक गुणानुरागी दृष्टि होती है और दूसरी गुण-द्वेषी दृष्टि । दृश्य एक होता है पर देखने वाले की दृष्टि भिन्न होती है । अध्यापक ने मध्य तक पानी डाल कर एक गिलास टेबिल पर रख दिया और बच्चो को बुलाकर उस पर अपने विचार लिखने को कहा । कुछ बच्चों ने लिखा - गिलास पानी से आधी भरी हुई थी, कुछ ने लिखा- गिलास आधी खाली थी । स्थिति एक जैसी ही है, मगर देखने की दृष्टि का प्रभाव होता है । दृश्य एक होते हुए भी देखने वाले की दृष्टि भिन्न होती है । पीलिया के रोगी को श्वेत कागज भी पीला दिखाई देता है। कहा भी जाता है कि-

'ज़ाकी रहीं भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'

हमारी भावना अच्छी है तो हमें गुण ही गुण दृष्टिगोचर होंगे । मन में दुर्भावनाएँ भरी हैं तो अच्छाई भी हमको बुराई के रूप मे दिखाई देगी।

श्री कृष्ण पाण्डवो के साथ वन में घूम रहे थे । वहाँ उन्हें एक मरी हुई कुतिया दिखाई दी । उसके मृत शरीर की गन्ध वातावरण को दूपित बना रही थी । सभी पाण्डव नाक बन्द कर आगे बढ गये । कुछ दूर जाकर बोले - कितनी दुर्गन्ध आ रही थी । मैंने तो नाक और ऑख दोनों ही बन्द कर लिये - अर्जुन बोला। श्रीकृष्ण ने कहा - अरे ! उसके दांत नही देखे - कैसे धवल थे, मोती के समान चमक रहे थे । पाण्डवों

ने जहाँ घृणावश कुतिया को देखना भी उचित नहीं समझा वहीं श्रीकृष्ण ने मृत कुतिया के दाँतो की परख कर ली। ऐसी थी श्रीकृष्ण की गुण ग्राहक दृष्टि ।

इस विश्व में गुण एवं अवगुण, दोनों ही है । बाग मे फूलों की सौरभ है तो सड़ी खाद का ढेर भी मिल जायेगा । गुलाब की डाली पर फूल है तो काँटे भी हैं । यह तो हमारी जीवन-दृष्टि पर निर्भर हैं कि हम क्या चाहते हैं । सज्जन पुरुष की दृष्टि सदैव अच्छाई पर ही टिकती है । वे दूसरों के गुणों को देखकर प्रसन्न हो उठते हैं । शास्त्रों मे लिखा भी है -

जइवि चरसि तवं विउलं, पढसि सुयं करिसि विविहकट्ठाइं।
न धरसि गुणाणुरायं, परेसु ता निष्फलं सयलं ॥

अर्थात् यद्यपि तुम भारी तप करते हो, शास्त्रों का अध्ययन करते हो और अनेक कष्टों को सहन भी करते हो किन्तु दूसरों के गुणों के प्रति अनुराग नहीं है तो ये सब निष्फल हैं । सज्जन की यही पहचान होती है कि वे सदैव दूसरों के गुणों की ओर ध्यान देते हैं । मनुष्य यदि अपने जीवन का विकास करना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह सर्वप्रथम गुणग्राही बनें । स्वयं में क्या कमी है - एक दृष्टि उस पर भी डालकर देखे । गुणी व्यक्ति दूसरे के दोष या अवगुण नहीं देखता बल्कि स्वयं में क्या कमी है - किस गुण का उसमें अभाव है, यही देखता है और उसे दूर करने की चेष्टा करता रहता है । कहा भी गया है -

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय ॥

जिसकी दृष्टि अपने पर टिक जाती है वही मनुष्य अपने जीवन का कल्याण कर सकता है । जिसमें गुण है वे कभी छिपे नहीं रह सकते। शास्त्रों में लिखा भी गया है -

गुणाः स्वयं प्रकाशन्ते कथनं नह्यपेक्ष्यते ।
यथा कस्तूरिकामोदः वाति गुणस्तुतिं विना ॥

अर्थात् गुण स्वयं ही फैलते हैं, वे कथन की अपेक्षा नहीं रखते है, जैसे कस्तूरी की सुगन्ध अपने यशोगान की अपेक्षा के बिना ही फैल जाती है । यही स्थिति गुणवानों की होती है । उनके गुणों की शोभा हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करती है । हम किसी सुन्दर उद्यान में जाते हैं तो वहाँ देखते हैं कि बागवान अपने उद्यान के पेड-पौधों की सुरक्षा एवं सजावट पर कितना ध्यान देते हैं । वह अपने बच्चों की भाँति उनका पालन-पोषण करता है, निराई-गुड़ाई करता हैं । उद्यान की झाड़ियों की काट छॉट करके उन्हें विभिन्न जानवरों की, मनुष्यों की आकृति प्रदान करके आकर्षक बना देता है । उनका वह आकर्षण ही लोगों को अपनी ओर खींचता है । विभिन्न रंग बिरंगे फूलों की सौरभ एवं उनकी सुन्दरता देखकर मानव-मन बाग-बाग हो उठता है । फूलों को मुस्कराते हुए देखकर वह भी मुस्कराने लगता है । जिसके मन में प्रकृति के प्रति प्रेम होता है वह प्रकृति से भी वैसा ही प्रेम प्राप्त करता है । आंग्ल भाषा मे कहा भी गया है कि **Nature never did betray the heart, that Loved her.** विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का यह कथन प्रकृति के गुणों की ओर हमारा ध्यान खींचता है । वे लिखते हैं - जिस विराट् प्रकृति से मनुष्य परिवेष्टित हैं, जिसके आलोक से चक्षु सार्थक हुए है और जिसके उत्ताप से उसका सर्वाग-प्राण स्पंदित है, जिसके जल से उसका अभिषेक और जिसके अन्न से उसका जीवन संभव है, जिस प्रक़ति के गगन भेदी रहस्य प्रासाद के दरवाजों से बाहर निकलकर शब्द, गन्ध, वण-भाव के दूत मानव चेतना को सर्वथा जाग्रत करते हैं, उसी प्रकृति के बीच भारतवर्ष ने अपनी ओत-प्रोत भक्ति-वृत्ति को प्रसारित कर रखा है ।

प्रकृति का कण-कण गुणों का भण्डार है । यदि हममें गुण ग्राह्यता है तो हम सहज में ही उसे प्राप्त कर सकते हैं ! एक कवि की कविता जो वर्षो पूर्व पढ़ी थी आज भी याद आ रही हैं । वह कहता है -

फूलों से नित हँसना सीखो, भँवरों से नित गाना ।
फल की लदी डालियों से सीखो नित शीश झुकाना।

सीख हवा के झोंको से लो कोमल भाव बहाना ।
लता और पेड़ों से सीखो मिलना और मिलाना ॥
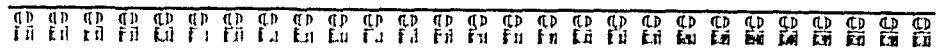
इस प्रकार प्रकृति भी हमें गण-ग्राहक बनने की ओर इंगित कर रही है ।

हममे यदि गुणों को ग्रहण करने की क्षमता है तो हमें गुण ही गुण मिलते जायेंगे, गुणों को ग्रहण करने की क्षमता है तो हम स्वयं गुणों के धनी बन जायेंगे । इस संसार में प्रत्येक मानव को सभी गुण निष्पन्न सुविधाएँ प्राप्त है, उन सुविधाओं का सदुपयोग करना स्वयं पर निर्भर है । प्रत्येक मनुष्य गुणो का भण्डार होता है लेकिन कर्मो का आवरण पड़ा होने से वह उनको व्यक्त नहीं कर पाता । मूर्खता के वशीभूत होकर मूर्ख कण और क्षण का मूल्य नहीं जान पाते । वे समय, और श्रम का सदुपयोग न करके उसका दुरुपयोग करते हैं । ऐसे लोगो के लिए ही कहा गया है कि -

काव्य शास्त्र विनोदेन, कालोगच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

अर्थात् बुद्धिमान्-गुणी लोग अपना समय काव्य शास्त्रों के अध्ययन मे व्यतीत करते है मगर मूढमति व्यसन, निद्रा एवं लड़ाई झगड़े में व्यतीत करते है । मानव के समान बुद्धिमान कोई भी प्राणी नहीं होता । इसलिए यह आवश्यक है कि वह गुणानुरागी बने । दुर्गुणों के त्याग से ही जीवन में निखार आता है । जो आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर है उसे तो गुणानुरागी होना ही चाहिए । गुणहीन व्यक्तियों का सम्पर्क उसके अपने गुणों को भी नष्ट कर देता है । नींबू के रस की एक बूंद दूध के मूल स्वरूप को ही नष्ट कर देती है । जो गुणानुरागी है उसे सदैव अवगुणी लोगों से दूर ही रहना चाहिए । लोहा जिस प्रकार चुम्बक की ओर आकर्षित होता है उसी प्रकार गुण भी गुणानुरागी की ओर खिंचे चले जाते हैं ।

गुणहीन का कही भी सम्मान नहीं होता । पलाश के वृक्ष पर खिला फूल देखने में भले ही सुन्दर हो मगर वह सौरभ से हीन होता है । फूलों का प्रथम गुण ही सौरभ है, यदि वही उसमें नहीं है तो कौन उसकी ओर आकर्षित होता है । कहने का अभिप्राय यह है कि सुज्ञ जन उस ओर आकर्षित नहीं होते हैं । रत्न भले कितना ही सुन्दर हो मगर उसको भी सोने-चॉदी का सहारा आवश्यक है । गुणों को भी गुणानुरागी का सहारा जरूरी है । संस्कृत मे एक श्लोक आता है -
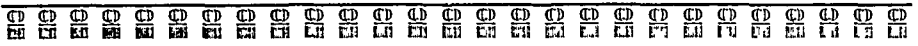
विवेकिनमनुप्राप्ता गुणाः यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण जडित रत्न अत्यन्त सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार विवेकी मानव को पाकर गुण सुन्दरता को प्राप्त होते है । समाज और राष्ट्र में ऐसे ही गुणी मानवों का सम्मान होता है । उनके गुणों से राष्ट्र का मस्तक गर्व से ऊँचा हो जाता है । गुणानुरागी को चाहिए कि वह गुणों को ग्रहण करने में तत्पर रहे । कबीर ने कहा है -

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ॥

साधु, सज्जन, गुणी व्यक्ति किस जाति का है हमें उससे क्या लेना-देना है । हमें तो उसके ज्ञान को - उसके गुणों को ग्रहण करना चाहिए ! मूल्य तलवार का होता है म्यान से क्या लेना-देना ? तलवार की बनावट और धार पर ही ध्यान देना चाहिए ! दशवैकालिक सूत्र मे भी लिखा है -

जहा दुमस्स पुफ्फेसु भमरो आवियइ रसं ।

अर्थात् भ्रमर फूलों पर लगे कॉटों से स्वयं को बचाते हुए उनसे रस ग्रहण कर लेता है । बस इसी भॉति गुणानुरागी को किसी की बुराइयों की ओर ध्यान न देकर उसके गुणों को ग्रहण करने की वृत्ति अपनानी चाहिए । इस संसार में अच्छे एवं बुरे दोनों ही प्रकार के व्यक्ति हैं । एक का स्वभाव हंस की भांति होता है और दूसरे का बगुले की भांति होता है । उन्हें प्रतीक बनाकर कवि ने कहा है -

हंसा बगुला एक से मान सरोवर मांहि ।
बगा ढिंढोरे माछली हंसा मोती खाहि ॥

हंस और बगुले एक ही सरोवर-मानसरोवर में रहते हैं फिर भी बगुला मछली खाता है जबकि हंस मोती चुगता है । इसी प्रकार गाय के स्तनो के पास चीचड़े चिपके रहते है । वे स्तन के पास रहते हुए भी दूध का आनंद न लेकर खून ही चूसते रहते हैं । गुणीजन का स्वभाव हंस की भॉति होता है न कि बगुले एवं चींचडे की भांति । श्वेत रंग का होने मात्र से बगुला हंस नही बन जाता । गुण ही हस को महत्ता
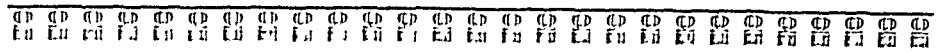
प्रदान करते है । कौवे की चोच को सोने से मंढ दे, उसके पैरों को मोती-माणिक्य से सजा दें तो भी वह कौआ ही रहेगा । किससे क्या ग्रहण करना है यह मनुष्य की वृत्ति पर निर्भर होता है । गुणी पुरुषों के साथ रहने पर साधारण मानव को भी सम्मान मिलने लगता है । धागे को कोई अपने गले मे नहीं लटकाता मगर वह भी फूलों का, मोतियों का साथ पाकर हार के रूप मे गले की शोभा बन जाता है । वह भी उच्च स्थान का अधिकारी बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है ।

वृद्धावस्था में एक व्यक्ति ने संयम ग्रहण किया । एक दिन वे श्रमण सवेरे सवेरे गाथाओ का स्वाध्याय करते हुए उनको रट रहे थे । पास में ही एक माली का घर था । उसने साधु को श्लोक रटते हुए देखा तो उन्हें सीख देने के लिए अपने आंगन में सूखी लकड़ी को रोप कर उसे पानी देने लगा । साधु प्रतिदिन उसे देखता था । एक दिन साधु ने कहा - भाई ! क्यों अपना समय और श्रम बर्बाद करते हो । पानी देने से क्या कभी सूखी लकड़ी हरी हुई है ? माली ने कहा - महाराज ! मै यह जानता हूॅ कि यह लकड़ी अब कभी अंकुरित नहीं होगी मगर आप इस उम्र में श्लोको को रट रहे हैं क्या ये आपको याद हो जायेंगे ? साधु ने कहा - भाई ! तुम किसकी तुलना किससे कर रहे हो ? अरे ! यह जड़ है और मैं चेतन हूँ, मुझमें आत्मा है, आत्मा का निज गुण ज्ञान ग्रहण करना है । अतः यह तेरा भ्रम है कि मुझे ज्ञान नही आयेगा । इस अवस्था में मैंने संयम का मार्ग चुना है यह मेरे मन में जाग्रत ज्ञान का ही तो प्रभाव है । कहा भी है -

नागुणी गुणिनं वेत्ति, गुणी गुणी तु मत्सरी ।
गुणी च गुण रागी च दुर्लभा सरलो जनाः ॥

अर्थात् अवगुणी व्यक्ति गुणवानों को नहीं जान सकता है, जिसमें स्वयं में ही गुण नहीं है, वह गुणियों की परख कैसे कर सकता है । गुणवानो को तो गुणवान ही पहचान सकते हैं । सच्चे गुणी और गुणानुरागी मनुष्य का मिलना बड़ा दुर्लभ है । हमने मनुष्य जीवन पाया है तो इसका लाभ उठायें गुणानुरागी बनें । हम महापुरुषों के गुणों को आत्मसात् करके अपने जीवन को भी उन्नत बना सकते हैं । आत्मविकास के लिए गुणो

के प्रति अनुराग अति आवश्यक है । पारस पत्थर लोहे को भी सोना बना देता है । मुझे मेरे जीवन पथ पर गुणी जन - गुरुजन मिले उनके सान्निध्य को पाकर मेरी आत्मा का सुमन खिल उठा । मेरा अंतर्मन ज्ञान-सूर्य के आलोक को देखकर गा उठा -

जिस दिन से मैं जग में जागी,
भोर देख निद्रा को त्यागी ।
दुर्भावों से दूर रही नित,
बनी सदा गुण की अनुरागी ॥
मैं गुण को लेना जान गई हूँ ।
पथ जीवन का पहचान गई हूँ ॥

ये मेरे ही भाव नहीं, बल्कि प्रत्येक गुणानुरागी के भाव हैं । जो निष्काम भाव से सत्कर्म में लगा है उसी का जीवन सार्थक बनता है । जीवन मे यदि कुछ कर गुजरने की भावना जाग्रत हो जाती है तो मनुष्य पीछे मुड़कर नही देखता - उसके सद्‌गुणो का कोष बढ़ता जाता है । उसकी वाणी में मधुरता की वीणा झंकृत होती है, हृदय में करुणा का निर्झर बहने लगता है । संसार मे ऐसे ही गुणियों की पूजा होती है ।

जैन धर्म में गुणस्थान की अद्‌भुत महिमा है । चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के जीव साधक की श्रेणी में आते हैं . ये साधक अपने उत्तम अर्हत्, सिद्ध एवं केवली को साध्य मानकर आत्म साधना में लगे रहते हैं । उन महान् गुणधारियों के गुण उन्हे सदैव आकर्षित करते हैं । यही कारण है कि आत्म-विकास में गुणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसीलिए कहा है -

उत्तम गुणाणुरागो निवसइ, हिययम्मि जस्स पुरिसस्स ।
तित्थयर पयाओ, न दुल्लहा तस्स रिद्धीओ ॥

अर्थात् जिस पुरुष के हृदय में उत्तम गुणों के प्रति अनुराग रहता है, उसे तीर्थङ्कर पद की भी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती है । जिसके मन मे प्रेम है, उपकार है वही मानवीय गुणों से ओतप्रोत है । जो गुण दूसरो के दुःखो का कारण बन जायें वे तो अवगुण ही होते हैं । किसी शायर का यह कथन अन्तर्मन को झकझोरने वाला है । वे कहते हैं -

हजार कुंजे इवादत, हजार गंजे करम,
हजार ताइव शवह हजार वेदारी ।

हजार सिजदा वहर सिजदा हजार नमाज,
कवूल नेस्तगर ताइद व्याजारी ॥

अर्थात् मानव भले ही तू हजारो मे वैठकर प्रार्थना करता है, हजारो रुपये दान में देता है, भक्ति तथा साधना करने में हजारो रातें पूरी कर देता है और खुदा का गुण गाते गाते भी हजारो राते व्यतीत करता है, हजारों सिजदे करता है और हर सिजदे (नमन) के साथ भक्ति सहित नमाज भी पढता है किन्तु इन सवके वाद भी अगर तू किसी प्राणी का घात करता है तो खुदा के दरवार मे तेरी इवादत (प्रार्थना) स्वीकार नही होगी ।

यह जीवन अमूल्य है । इस जीवन का लक्ष्य भौतिक समृद्धि अथवा शारीरिक शक्ति प्राप्त करना ही नही है अपितु ज्ञान, दया, स्नेह के सूत्र को आगे बढ़ाना है । यह जीवन गुणो को प्रगति की ओर ले जाने का माध्यम है । मनुष्य का जीवन यदि प्रेम व करुणा की भावना से शून्य है तो वह सृष्टि के विनाश का कारण वन जाता है । बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने मस्तिष्क मे ज्ञान, हृदय में प्रेम, व्यवहार मे मधुरता को स्थान देकर जीवन को सतुलित बनाने का कार्य करे । जो समस्त आत्माओ मे स्वयं को और समस्त आत्माओ को स्वयं में देखता है वही ससार में अपने इन गुणों के कारण कीर्ति को प्राप्त करता है ।

भारतीय संस्कृति सदैव से ही ज्ञान एवं गुण प्रधान रही ह । सस्कृति क पुष्प सदैव निर्दोष और पवित्र हृदय की शाखाओ पर खिलते हैं । हमे हर पल इन पुष्पों से सृष्टि का शृंगार करने की चेष्टा करना चाहिए । महापुरुषों में सबसे बडी बात यही होती है कि वे हर क्षण सजग होकर उत्तम पुष्पो को ही चुनते हैं ।

मदन मोहन मालवीय जी के जीवन का प्रसग है । उनके पास एक युवक पहुँचा और बोला - महाशय । मैंने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली है । कैसी भी परिस्थिति हो मुझे कभी गुस्सा नहीं आता है । चाहे कोई मुझे सौ क्या हजार गालियाँ भी दे मै कुछ नही कहूँगा । यदि
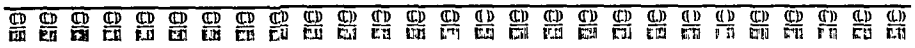
आपको विश्वास नही हो तो आप गालियाँ देकर मेरी परीक्षा कर सकते है । मालवीय जी ने कहा – भाई ! इतनी नासमझी मै नही कर सकता हूँ । युवक बोला – इसमें क्या नासमझी है आप ज्ञानी है, विद्वान् है, आपको मेरी परीक्षा लेनी चाहिए । मालवीय जी ने कहा – भाई ! तुम्हें क्रोध आये या नहीं आये यह तो बाद की बात होगी । मैं गालियाँ निकालकर अपनी जुबान को गन्दी नहीं करना चाहता । दूसरे का अपशकुन करने के लिए अपनी नाक कटवाना कहाँ की बुद्धिमानी है ।

जो गुणानुरागी होते है वे हँसी मजाक में भी अवगुणों की बात नही करते । अन्त में मै तो यही कहूँगी कि –

गुणाः हि सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः ।
वसुदेवं परित्यज्य, वासुदेवं नमेज्जनः ॥

अर्थात् सर्वत्र गुणों की पूजा होती है, पिता के वश की नही । लोग वसुदेव को छोड़कर वासुदेव को नमन करते हैं । आप भी गुणग्राही बनकर, गुणानुरागी बनकर अपने जीवन मे महक उत्पन्न करे । इससे आपका यह भव भी सुधरेगा और अगला भव भी पुण्य प्रभाव से मगलकारी बनेगा ।

21. जीवन की भोर : सिद्धि की ओर

आत्मीय बन्धुओ ।

कल बैठे-बैठे ही चार पंक्तियॉ मन के आंगन में अंकुरित हो गई थी । मैं आज अपनी बात उन्हीं पंक्तियों से प्रारंभ कर रही हूॅ -

घन का गर्जन नहीं, धरा को वर्षण की जरूरत है,
धन का वर्धन नहीं, उसके विसर्जन की जरूरत है ।
ज्ञान-प्राप्ति के लिए आप गुरु के पास जाते हैं तो -
मन के अहम् की नहीं, उसके समर्पण की जरूरत है ॥

बादल यदि जल का, धनिक अपने धन का और ज्ञान-प्राप्ति हेतु शिष्य अपने मन के अहंकार का समर्पण कर दे तो हर ओर आनन्द ही आनन्द हो सकता है । मनुष्य को अपनी जीवन-यात्रा को सफल बनाना है तो उसके मन में समर्पण का भाव सदैव जाग्रत रहना चाहिए ।

एक युवक किसी महात्मा के पास पहुॅचा । रात ढल चुकी थी । महात्मा अपनी शैय्या पर बैठे हुए विचारों में मग्न थे । उस युवक ने आकर महात्मा के चरण छुए और पग-चम्पी करने लगा । महात्मा ने कहा - भाई । तुम कौन हो और कहॉ से आये हो ? वह बोला - स्वामी जी । मैं भटका हुआ पथिक हूॅ, ज्ञान की खोज मे निकला हूँ । मैंने आपके बारे में बहुत कुछ सुना है । मैं कुछ दिन आपकी सेवा करना चाहता हूँ । महात्मा ने कहा - ठीक है, आश्रम मे रहो अपनी

जिज्ञासाएँ व्यक्त करते रहो समाधान भी हो जायेगा । प्रातःकाल होते ही उस युवक ने आश्रम की सफाई की, गुरु के लिए आसन बिछाया, दैनिक कार्यो से निवृत्त हो गुरु के चरणों में आकर बैठ गया । महात्मा युवक की सेवा-भावना, कार्य-चातुरी देखकर विचार करने लगे - यदि यह युवक मेरा शिष्य बन जाये तो बुढ़ापा अच्छा बीत सकेगा । महात्मा ने कहा - मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ क्या तुम मेरे शिष्य वनना चाहोगे ? युवक बोला - स्वामीजी! यह शिष्य क्या होता है ? महात्मा बोले - शिष्य वह होता है जो गुरु की आज्ञा का पालन करे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करे । यह सुनकर युवक ने कहा - स्वामीजी ! एक दो दिन की बात हो तो ठीक है मगर हमेशा गुरु की आज्ञा पालना, सेवा-शुश्रूषा करना तो बड़ा कठिन है । शिष्य बनना तो बड़ा मुश्किल है । हाँ, यदि आप गुरु बनायें तो मैं तैयार हूँ । यह सुनकर महात्मा जी उस युवक का मुँह देखने लगे ।

वर्तमान युग में स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है । समर्पण का भाव तिरोहित होता जा रहा है । आज हर व्यक्ति गुरु बनना चाहता है । गुरु का अभिप्राय होता है बड़ा । बड़ा बनना हो या बनाना हो, यह हँसी खेल नही है । खाने का बड़ा बनाने के लिए भी पूर्व में तैयारियाँ की जाती है । घोल तैयार किया जाता है, उसमें मिर्च-मसाले डाले जाते हैं । उबलते तेल में डाल करके निकाला जाता है तव वह बड़ा खाने लायक बन पाता है । जीवन में बड़ा बनने के लिए भी कितने ही सघर्षो से होकर गुजरना पड़ता है । संघर्ष साधना का ही रूप है । ज्ञानी गुरु जो बड़प्पन की भावना से युक्त होते हैं वे साधना की प्रत्येक कसौटी पर स्वयं को तपाते हैं । बिना तपे ही जो गुरु वनने की भावना है वह सिर्फ सत्ता के सुख को पाने की कामना करना है । जो आज गुरु वने हैं पहले उनको भी शिष्य बनना पड़ा था - तपना पड़ा था । उन्होंने अपने से वडो की सेवा-शुश्रूषा की, समर्पण का भाव पैदा किया । जव अपनी सेवा-भावना पर वे स्थिर हो गये, स्वयं को मिटाकर बड़ों की पीड़ा को अपनी मान ली, दूसरों के दर्द को अपना दर्द मान लिया तो वे उच्च पद के अधिकारी वन सके है ।

नदी के तट पर रखे घड़े को देखकर नदी की बहती हुई मिट्टी ने कहा - भाई घट ! तुम और मे तो एक ही जाति के हैं । एक ही स्थान पर हमारा जन्म हुआ हैं फिर क्या कारण हे कि मैं तो धारा के साथ बही चली जा रही हूँ और तुम धारा के जल को अपने मे समेट कर तट पर बैठे इठला रहे हो । यह सुनकर घट ने कहा - बहिन ! मैंने एक दिन स्वयं को कुम्हार के हाथो मे समर्पित कर दिया । उसने मुझे तोड़ा-फोड़ा, रौंदा, जल के साथ मिलाकर मुझे पीटा और चाक पर चढाकर खूब घुमाया । इसके बाद उसने मुझे आग के हवाले कर दिया। मगर मै भारी पीड़ा सहता रहा । आग मे मैं जला नहीं बल्कि तप कर ठोस हो गया उसी का परिणाम है कि मुझमें पानी को कैद करने की क्षमता पेदा हो गई है । नदी की बहती मिट्टी ने कहा - अरे ! यह तो बड़ा कठिन रास्ता हैं । इसमें तो कष्ट ही कष्ट है । घट ने कहा बहिन! सरल मार्ग तो यही है कि धारा के साथ बहते हुए नष्ट हो जाओ । तुम्हारा मार्ग धीरे-धीरे तुम्हे नष्ट कर देगा । तुम भटकती हुई, अन्त में खारे समुद्र में गिर पड़ोगी जहॉ कोइं तुम्हारी सुध लेने वाला नही होगा ।

जीवन में समर्पण का भाव कुछ करने के लिए, कुछ बनने के लिए आवश्यक है । समर्पण के बिना सिद्धि सभव नहीं है । समर्पण का अभिप्राय है अपने आपको अपने अहम् को गुरु के चरणों में जाने से पूर्व ही त्याग दो । मै को शून्य कर लो । बड़ो के समक्ष जाने से पूर्व अहम् को त्याग दिया तो एक दिन गुरु का स्वरूप ही आप अपने में देख पायेगे । जिसके मन में त्याग, सेवा एवं कर्त्तव्य परायणता की भावना होती है वही अपने जीवन को समर्पित कर सकता है । घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के साथ-साथ धर्म के प्रति भी समर्पण का भाव व्यक्ति को उच्च से उच्चतम बनाता है । जो अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होता है वह समर्पण में ही प्रसन्नता का अनुभव करता है । सुशिष्य अपने गुरु के प्रति सदैव समर्पित रहता है । कबीर जी ने कहा भी है -

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय ॥

गुरु के प्रति समर्पण के भाव से ही भगवान की प्राप्ति संभव है। गुरु का स्थान भगवान से भी ऊँचा माना गया है । जो मनुष्य समर्पित होकर गुरु के चरणों में पहुँचा उसे गुरु अपनी सर्वसिद्धियाँ तक दे देते है । विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस के प्रति अपने को समर्पित कर दिया। उनकी सेवा और शुश्रूषा के कारण ही अन्तिम समय में अपना हाथ युवक नरेन्द्र के सिर पर रखा । उस समय नरेन्द्र को विशेष अनुभूति हुई जिसके लिए विवेकानन्द ने कहा है कि उस समय जो तरंगें मुझ में प्रवाहित हुई उसका वर्णन शब्दातीत है । स्वयं परमहंस ने कहा था कि आज मैने अपनी सारी सिद्धियाँ तुम्हें दे दी हैं । मैं अब खाली हो गया हूँ । गुरु में ऐसी शक्ति होती है कि वे अपने ज्ञान-नेत्रो से अन्तर्मन में बैठे चिदानन्द स्वरूप का दर्शन कर सकते है । जिसे धर्म का ज्ञान होता है वह गुरु के प्रति पूर्णत समर्पित हो जाता है । वह देवों से पहले गुरु को नमस्कार करता है । गुरु कौन है ? कहा है -

अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अर्थात् अज्ञान रूपी तिमिर से जो अन्धे हो गये हैं ऐसे चक्षुओं को ज्ञानांजन की शलाका से उन्मीलित कर देने वाले - ज्ञान-चक्षुओ को खोल देने वाले गुरु नमस्कार के योग्य हैं । वर्तमान समय में गुरु के प्रति समर्पण के भाव में गिरावट आ गई है । विद्यार्थी गुरु के द्वारा ज्ञान तो प्राप्त करना चाहते हैं मगर उनमें विनय, शिष्टता एवं कर्त्तव्य परायणता का अभाव है । कर्त्तव्य से जी चुराने वाला व्यक्ति श्रद्धा एवं भक्ति में भी पिछड़ जाता है । मानव-मूल्यों का ह्रास मात्र शिष्यों या विद्यार्थियों में ही हुआ हो ऐसी बात नहीं है । गुरु बनने का दंभ रखने वालों की स्थिति भी कुछ ठीक नहीं है । आज यह बात सुनने को मिलती है कि गुरु कहे वह करो न कि जो गुरु करे वह करो । क्या यह बात उचित है । गुरु को वही कहना चाहिए जो वह करता है । कथनी और करनी का भेद गुरु-शिष्य के बीच मतभेद की दीवार खडी कर देता है ।

महानुभावो । आज इस देश में ही नहीं बल्कि पूरे संसार में सभी को अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता है । दूसरों के आदेश मानकर उनका पालन

करने को लोग अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझने लगे हैं । उन्हें चिन्ता है कि इससे हम छोटे हो जायेंगे । आज बच्चे अपने बुजुर्गो के आदेशो की अवहेलना करते हैं । नौकर अपने मालिक की आज्ञा को मानने से मना कर देते हैं । छोटे से छोटा व्यक्ति भी अपने आपको दूसरों से बड़ा दिखाने की चेष्टा करता है । बडा बनने के लिए उसमें गुण भी होने जरूरी है । मात्र पुस्तकें पढ़ लेने से या डिग्रियॉ हासिल कर लेने से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता, उसके लिए गुणी होना भी जरूरी है । जो अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हैं वही गुण ग्रहण करने के योग्य होता है। गुरु मे गुण होते हैं तभी उसके प्रति सबका समर्पण होता है ।

बीज मिट्टी में स्वयं को समर्पित कर देता है तो वृक्ष का रूप पाता है । विहग और पथिक छाया और फल पाकर उसकी महिमा प्रकट करते हैं । महल का निर्माण करने के लिए मजबूत व पक्के पत्थर या ईटों को समर्पित होकर स्वय को नींव में जाना पड़ता है । राष्ट्र की रक्षा के लिए नौजवानों को सरहद पर अपना खून बहाना पड़ता है तब जाकर राष्ट्र का अभिमान बचता है - देश की रक्षा होती है । समाज की उन्नति के लिए अग्रगण्य लोगों को अपना धन एवं समय को समर्पित करना होता है । भारत की आजादी के लिए हजारो लोगों ने अनेक अत्याचार सहे । जेलों मे रहकर भूखे सोये । अंग्रेजों की गोलियों के समक्ष सीना तान कर राष्ट्र हित में स्वयं का बलिदान कर दिया । उनका समर्पण ही था जिसके कारण ही आज हमारा देश आजादी की खुली हवा में सांस ले रहा है । राष्ट्र का विकास करनां है तो लोगों को अपना स्वार्थ त्यागकर कर्त्तव्य समझ कर आगे आना होगा । हमें धर्म की रक्षा करनी है । उसका प्रचार-प्रसार करना है तो त्यागी युवको को आगे आकर धर्म के मार्ग पर बढना होगा । योग्य गुरु की सेवा में पहुँचकर जीवन को समर्पित करना होगा । ऐसा होने पर देश में विवेकानन्द, दयानन्द एवं सन्त-साधकों के सुमन खिल पायेंगे ।

गुरु के प्रति समर्पण का भाव रखने वालों की इस देश में कभी-कमी नही रही है । गुरुभक्त एकलव्य का उदाहरण हमारे सामने है जिसने गुरु के कहने पर स्वयं अपना अंगूठा काटकर गुरु को अर्पित कर दिया था । गौतम का उदाहरण है । एक दिन गौतम ने भगवान महावीर से

पूछा - भगवन ! क्या कारण है कि मेरे बाद संयम स्वीकारने वाले साधक केवली हो गये और मुझे अब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ । महावीर प्रभु ने कहा - तुम्हारा मेरे प्रति जो मोह है वही तुम्हारे कैवल्य प्राप्ति में बाधक है । तुम इस मोह का त्याग कर दो । यह सुन गौतम ने कहा- प्रभु ! मुझे केवली नहीं बनना है । आपके स्नेह को त्याग कर प्राप्त होने वाले केवलज्ञान की मुझे जरूरत नहीं है । यह है गुरु के प्रति समर्पण की भावना ।

मानव का जीवन तो क्षणिक है, लम्बी चौड़ी योजना बनाने और उस पर विचार करते रहने से कुछ नहीं होगा, गुरुत्व पाना है तो गुणों को आत्मसात् करना होगा । गुरुदेवश्री की भावना को यदि चार पंक्तियों मे कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । यहाॅ पर सिर्फ शब्द मेरे हैं पर भाव उनके है -

पथ में पग पग पर खड़े आज रोड़े हैं ।
ऊँचे हैं पर्वत, कहीं गर्त चौड़े हैं ।
प्राज्ञ गुरु पन्ना ने कहा था यही बस -
जागो, जिन्दगी के क्षण बहुत थोड़े है ॥

जो जाग जाता है उसे लक्ष्य की ओर बढने मे कोई मुश्किल नही होती । यहाॅ प्रकृति पर हम दृष्टि डालें तो देखते हैं कि चार प्रकार के पुष्प इस प्रकृति में खिलते हैं - एक तो वे पुष्प जिनका रूप भी होता है और वे सुगन्ध से भी युक्त होते हैं, दूसरे वे जिनमें सुगन्ध तो होती है पर उनका रूप नहीं होता है, तीसरे वे जिनमें रूप है पर सुगन्ध नहीं और चौथे वे जिनका न रूप होता है और न उनमें सुगन्ध होती है । इन चारों प्रकार के पुष्पों में प्रथम श्रेणी के पुष्पों का ही सम्मान होता है। मनुष्यों की भी इसी प्रकार चार श्रेणियाॅ होती है । धर्मशास्त्रों के अध्ययन मे ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने आये है । हम देखते है कि भरत चक्रवर्ती के पास रूप भी था और गुण भी थे । हरिकेश मुनि के पास रूप नहीं था पर गुण थे । ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पास रूप था मगर गुणो का अभाव था और कालू कसाई के पास न रूप था और न गुण था । संसार में सम्मान का अधिकारी वही मनुष्य बन सकता है जो रूप और गुण से युक्त हो । रूप नहीं है मगर गुण है तो भी वह पूजनीय है ।
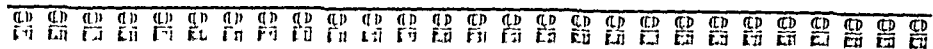
अष्टावक्र का नाम आपने सुना होगा । राजा जनक ने विद्वानो की सभा बुलवाई । बड़े-बडे विद्वान् वहाँ पर उपस्थित हुए । सबसे अन्त में अष्टावक्र का उस धर्म-सभा मे प्रवेश हुआ । अष्टावक्र ऋषि का शरीर आठ जगह से टेढ़ा था । उन्हे देख करके विद्वान् अपनी हँसी को न रोक पाये और वहीं हँसने लगे । अष्टावक्र को यह वात चुभ गई । उन्होंने कहा- राजा जनक ! मैंने तो सुना था कि तुम विद्वानों को आमंत्रित कर रहे हो मगर यहाँ तो मुझे सारे ही चमार दिखाई दे रहे हैं । ये गुणों के पारखी नही केवल चमडे को देखकर ही अपने विचार प्रकट कर रहे हैं । उनकी बात सुन करके सभा मे सन्नाटा छा गया और सभी ने अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी ।

केवल रूप से कुछ नही होता है । कहा भी गया है कि - **"नरस्य भूषणं रूपम्, रूपस्य भूषणं गुणाः ।"** रूपवान का महत्त्व भी तब होता है जब वह गुण से युक्त होता है । इस संसार में चौरासी लाख योनियाँ मानी गई है उनमें मनुष्य-योनि भी एक है । मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी है । उपनिषदों में भी स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि **"न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्"** अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ प्राणी और कोई नहीं है । इसमें असाधारण मस्तिष्क, विशिष्ट विवेक, चमत्कारिक बुद्धि, विशाल अन्तःकरण एवं भला-बुरा सोचने की शक्ति है । इसके अलावा मनुष्य में एक विशेष बात यह है कि उसे वाणी की शक्ति प्राप्त है । यह वाणी एक वरदान है । वाणी से सुरों का संगम होता है तो वह संगीत बन जाती है । माधुर्य का समावेश होने पर पराये भी उसके अपने बन जाते हैं । यह वाणी जब कटुता धारण कर लेती है तो कलह को जन्म दे देती है। वाणी पर विवेक का नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक होता है ।

इस मानव-भव को पाने के लिए देव भी लालायित रहते है । देवताओं के पास असीम ऋद्धि है । वे मानव की अपेक्षा कई गुना सुख भी भोगते है किन्तु उनके पास आध्यात्मिक विकास करने की क्षमता का अभाव होता है । यही कारण है कि वे देव योनि से मनुष्य योनि मे आने की इच्छा रखते हैं । हमारे पूर्व जन्मों के सुकर्मो का प्रतिफल ही है कि हमे यह मानव योनि मिली है । क्या हम इसे पतन के गर्त में
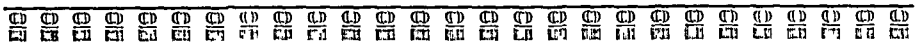
गिरा दे ? पतन से प्रतिष्ठा कभी नहीं बढ़ती है । प्रतिष्ठा बढ़ाना है तो हमे उन्नति का मार्ग चुनना होगा - आत्मोन्नति के लिए धर्म का पथ चुनना होगा । मनुष्य जीवन की सफलता आत्मा के विकास से ही संभव है । केवल बैठे रहने से, इधर उधर प्रपच भरी बाते करने से, भौतिक सम्पदा के संग्रह से आत्मा का विकास नही होता । धर्म के प्रति समर्पण का भाव जाग्रत होने पर ही आत्मा का विकास हो सकता है । जो मनुष्य मानव-भव पाकर भी आत्म-विकास नहीं कर पाया तो फिर यही कहा जायगा कि '**हीरे जैसा जीवन तूने व्यर्थ गंवाया रे ।**' हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि -

सूर्य की शोभा आकाश से नहीं उसके प्रकाश से है,
पुष्प की प्रतिष्ठा उपवन से नहीं उसकी सुवास से है।
अहंकार का भार ढोने वालों, जरा मेरी भी सुनो -
मानव की महिमा जन्म से नहीं उसके आत्म-विकास से है॥

यह आत्म-विकास गुरु के चरणों में पहुॅचकर धर्म के पथ पर अग्रसर होने पर ही सम्भव है । मनुष्य तो अनन्त शक्ति का खजाना है। आज कमी इस बात की है कि वह न तो स्वयं खजाने के बारे मे जानता है और न वो किसी को गुरु बनाने का प्रयत्न करता है । सद्‌गुरु तो अपने शिष्यो के हित में अपने सम्पूर्ण जीवन का होम कर देते हैं । अंग्रेजी भाषा के एक लेखक रस्किन ने लिखा है -

The Teacher is like the Candle which lights others in consuming itself.

अर्थात् शिक्षक या गुरु मोमबत्ती के सदृश हैं जो स्वय जलकर दूसरे को प्रकाश देता है । जाग्रत गुरु ही अपने शिष्यों को जाग्रत कर सकते है । एक महात्मा को रात्रि में स्वप्न आया कि नदी के दूसरे किनारे पर विशाल वृक्ष के नीचे खजाना दबा है । महात्मा सवेरे उठकर नदी पार करके उस वृक्ष के पास पहुॅचे । उन्होंने देखा एक व्यक्ति उनसे पहले ही वहॉ आकर बैठ गया है । महात्मा जी ने सोचा - चलो कल आकर ले लूॅगा । अगले दिन भी वही स्थिति थी । महात्मा अगले दिन का विचार करके लौट गये । तीसरे दिन भी वही स्थिति थी - वह व्यक्ति वहॉ पर बैठा हुआ था । महात्मा जी से आखिर रहा नहीं गया । उन्होने उस

व्यक्ति से पूछा - भाई ! तुम यहाँ क्यों बेठे हो ? वह बोला - महाराजश्री! मुझे तीन दिन पहले एक सपना आया था जिसमे नदी के पार एक महात्मा की कुटिया के नीचे अद्‌भुत खजाना दिखाई दिया । मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ ? कैसे उन महात्मा को अपनी बात बताऊँ । इसी चिन्ता में तीन दिन से यहाँ बैठा हूँ ! महात्माजी उल्टे पाँव लौटकर अपनी कुटिया में आकर बैठ गये और चिन्तन करने लगे कि इस कुटिया में कैसा खजाना है ? मन ही मन अपने गुरु का स्मरण किया तो एक आवाज अन्तर्मन से निकलती सुनाई दी - शिष्य ! तुम्हारा आत्मधन ही सबसे बड़ा खजाना है ।

धर्मप्रेमियो ! मनुष्य का मन जब तक अस्थिर है वह कुछ नही कर पाता सिर्फ भटकता रहता है । भटकाव से बचना है तो भीतर उतरना होगा । भीतर उतरने के लिए आत्म-संयम की जरूरत होती है । बुद्धिमान् वही है जो अपनी संयम-साधना के द्वारा जीवन का लाभ उठाता है । उत्तम गुरु का आशीर्वाद ही हमें सफलता की ओर बढ़ा सकता है । उनके प्रति समर्पित होकर ज्ञान की प्राप्ति करेगे तो ही इस जीवन की सफलता है । यदि हमने आत्मकल्याण नहीं किया तो मनुष्य और पशु में क्या भेद रहा । एक यही बात तो है जो हमे पशु से भिन्न करती है । कहा भी गया है -

आहार, निद्रा, भय, मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समाना॥

अर्थात् खाना-पीना, नींद निकालना, डरना, सन्तान पैदा करना यह कार्य तो मनुष्य क्या पशु भी करते है । धर्म-हित का कार्य ही मनुष्य की एक विशेषता है । जो धर्म का पालन नहीं करता वह पशु के समान ही है । मनुष्य भव में भी यदि वह आत्म कल्याण नहीं कर पाया तो फिर इस जीवन का लाभ ही क्या ? जो हमें इस पशुवत् जीवन से निकाल सके उसके प्रति हमारे मन मे अत्यधिक श्रद्धा एवं समर्पण का भाव होना जरूरी है । भगवती सूत्र मे कहा गया है -

स वीरिए परायिणति अवीरिए परयिज्जति ।

अर्थात् शक्तिशाली जीतता है और शक्तिहीन पराजित होता है । मानव को चाहिए कि वह अपनी दुर्बलताओं को त्यागकर मन को सशक्त

बनाने का प्रयत्न करे । समर्पण का भाव जिसमें जाग गया है वह अपने कर्त्तव्य के प्रति चाहे वह राष्ट्र के लिए हो या अपने स्वयं के आत्मकल्याण के लिए हो - कभी पीछे नही हटता है । अन्त में मैं तो एक शिष्य के समर्पण भाव को इन शब्दों मे ही व्यक्त कर सकती हूँ ।

तन समर्पित मन समर्पित,
जो कमाया धन समर्पित ।

आत्म के कल्याण हेतु -
हैं मेरा जीवन समर्पित ।

बन्धुओ ! इस जीवन की सौरभ फैलानी है तो इसे त्याग, सेवा एवं धर्म के हित समर्पित कर दो । समर्पण के बाद आपका अन्तर्मन कैसा प्रफुल्लित होता है, यह आप स्वयं समझ जायेंगे ! सोने का टुकड़ा सुनार के हाथों में समर्पित हो करके पिटता है, आग में तपता है तो अलंकार बनकर लोगों के गले का हार बन जाता हैं । आप भी समर्पित हो जाइये आत्म-कल्याण कीजिए इसी में जीवन की सफलता है ।

मानव तन : सुकर्म उपवन

आत्मीय महानुभावों ।

संत कवि तुलसीदास जी ने मनुष्य जीवन की महिमा बताते हुए रामचरित मानस मे कहा है -

बड़े भाग मानुप तन पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा, पाइ न जेहि परलोक संवारा॥

सचमुच मानव-भव बडा दुर्लभ है । देवता भी इसे पाने के लिए लालायित रहते है । जब पुण्यो का उदय होता है तब इस जीवन की प्राप्ति होती है । वर्तमान युग में इस धरती पर वन्य पशु-पक्षियों के समक्ष जीवन के अस्तित्व का सकट पैदा हो गया है मगर मनुष्यों की संख्या गुणात्मक रूप से बढ रही है । जनसख्या का यह विस्फोट इतना भयकर हो गया है कि जीवन-यापन के साधनो के अभाव की स्थिति बनने लगी है । आज भी इस विश्व मे ऐसे करोडो लोग है जिनका जीवन पशुओं से भी बदतर हो गया है । हमारे भारत की जनसख्या भी एक अरब के आकडे को पार कर गई है । एक ओर तो हमारे शास्त्र यह बात कहते है कि मानव-भव दुर्लभ है और दूसरी तरफ जनसंख्या बढ़ रही है ।

यहाँ हमे विचार करना पडेगा कि क्या मात्र मनुष्य जीवन प्राप्त कर लेने से ही कोई मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो गया है । नही, ऐसा नही है । जब तक मनुष्य मे मनुष्यता के गुण नही है वह दो हाथ

दो पॉव वाला पशु ही है । जीवन जीने की कला जिसमें नही आई उसे कैसे मनुष्य कहा जा सकता है । मनुष्य वही है जिसका व्यवहार मनुष्यता के अनुरूप है । किसी ने कहा भी है -

साहित्य, संगीत, कला विहीनः ।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः ।

यदि मनुष्य महापुरुषों द्वारा प्रणीत साहित्य का स्वाध्याय नही करता है, प्रभु के संगीत मे अपना स्वर नही मिलाता है, जिसे जीवन व्यतीत करने की कला नहीं आई वह मनुष्य सींग, पूँछ-हीन पशु के सदृश ही है । इस जीवन की श्रेष्ठता तो तब जाकर के है जब हम सेवा, सहयोग, श्रद्धा, प्रेम, विनम्रता, विवेक के गुणों से युक्त हो । मनुष्य को निस्सन्देह सभी प्राणियो मे उत्तम एवं श्वान को सबसे अधम माना गया है, मगर मनुष्य मे यदि मनुष्यता का अभाव हो जाता है तो वह श्वान से भी गया बीता हो जाता है । आजकल लोग मनुष्य को पालने की अपेक्षा कुत्ते को पालना अधिक पसन्द करते है । कुत्ता एक स्वामिभक्त पशु है । वह जिस घर का नमक खाता है, उसकी सुरक्षा बड़ी सजगता से करता है।

मनुष्य पशु नहीं है । वह अनेक जीवायोनियो से निकलकर इस योनि को प्राप्त करता है । यदि इस भव मे आकर भी वह पशुवत् व्यवहार करे तो यह उसकी मूर्खता है । मनुष्य जीवन तो हमारे श्रेष्ठ कर्मो की दिव्य उपलब्धि है । आपका यह सौभाग्य है कि आपने यह श्रेष्ठ भव पाया है । इस श्रेष्ठ भव को प्राप्त करके आत्म-कल्याण करना आपके हाथ मे है । अपनी आत्मा का विकास आपको स्वय ही करना होगा । यह आप पर निर्भर है कि जीवन को संवारें या इसे बिगाड़े । इस जीवन मे आपको अपना लक्ष्य निर्धारित करना होगा । भगवान महावीर ने अपनी अन्तिम देशना मे फरमाया है -

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं, सुई, सद्दा संजमम्मि य वीरियं ॥

अर्थात् इस संसार में मनुष्य के लिए चार प्रधान अंगो की प्राप्ति अति दुर्लभ है - मनुष्य जन्म की प्राप्ति, धर्म का श्रवण, धर्म मे श्रद्धा और चोथी बात है संयम मे पराक्रम दिखाना । यदि हम धर्म श्रवण कर
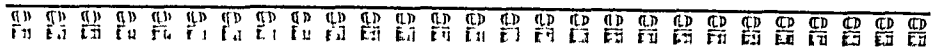
उसमें श्रद्धा रख सकते हैं एवं तदनुसार पुरुपार्थ कर सकते हैं तो हमारा यह भव सार्थक है । हम मानव है तो मानव बनकर मानवीय कर्त्तव्यों को पूरा करें यही हमारी विजय है । अगर हमने मानव होकर मानवीय गुण त्याग कर दानवीय दुर्गुणो को धारण कर लिया तो यह इस जीवन की हार है । मानवता के समक्ष रूप, बुद्धि, बल, वैभव का कोई महत्त्व नही है । यदि मैं यह कह दूँ कि मानवता धर्मरुपी महल का मुख्य द्वार है तो कोई अतिशयोक्ति की बात नही होगी ।

मानवता तब ही जाग सकती है जब हम उत्तम धर्म का श्रवण करे । धर्म पर श्रद्धा रखकर उसको आचरण मे उतारें । हम अपने आप को जाने, अपनी शक्ति की परख करें । जौहरी रत्नों की परख करके उसका मूल्य आँकता है । हीरे की परख तो जौहरी ही कर सकता है। यदि किसी सब्जी बेचने वाले से हीरे का मूल्य कराया जायेगा तो वह कह देगा- यह तो पत्थर है, इसका क्या मूल्य है ! सब्जी बेचने वाला रत्नों के गुणो से अनभिज्ञ होता है । मोती की चमक ही उसका मूल्य बढ़ाती है उसी भांति मनुष्य का मनुष्यत्व ही उसकी महिमा को बढ़ाता है। मोती का पानी उतर गया तो वह बेकार हो जाता है । रहीम कवि ने कहा भी है -

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुष चून ॥

सारी महिमा पानी की है । मनुष्य का पानी अर्थात् उसकी इज्जत, मोती की चमक और आटे का जल यदि चुक गया तो फिर वह कोड़ी का भी नही रहता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

मानव तन पाकर इसे बदनाम न करो,
सुकर्म करो जीवन को निष्काम न करो ।
कुछ करो ऐसा कि तवारीख भी बोले -
लोग भूल जाये इसे गुमनाम न करो ॥

मानवता के भाव यदि मन मे जाग्रत है तो इस जीवन का लक्ष्य अपने आप हमारे समीप आता जायेगा । यदि हम मानवीयता से परे हट
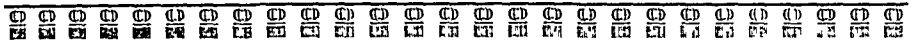
गये तो सब गुड-गोबर हो जायेगा । हम अपने में गुणों को धारण करें, उन गुणों का उपयोग जन-कल्याण मे करें अन्यथा यह समय फिर आने वाला नही है ! जीवन मे हमारे पास जो अच्छाई है वह अच्छाई दूसरो मे भी फैलायें । अपनी महत्ता का आधार हम गुणों को बनाएँ ।

एक सेठ ने दो पण्डितो को अपने घर भोजन हेतु आमंत्रित किया। एक पंडित कुछ कार्यवश कक्ष से बाहर निकला तो सेठ ने दूसरे पंडित से पहले पण्डित का परिचय पूछा । वह पहला पंडित बोला - मै इसके बारे में क्या बताऊँ ? अभी कुछ दिनों से ही मेरे साथ रह रहा है । लगता है अभी तक यह बना बनाया बैल ही है । पहला पण्डित तभी वहाँ आ गया तो दूसरा बाहर चला गया । सेठ ने पूछा - यह पण्डित कैसा है ? पहले ने कहा - सेठ साहब इसे आप पण्डित कहते है ? यह तो गधा है गधा ! अब मेरे साथ रह रहा है तो थोडा बहुत सीख जायेगा । वह पण्डित हॅसते मुस्कराते पुनः लौट आया । सेठ उठ करके बाहर गया और एक के समक्ष घास व दूसरे के समक्ष भूसा रख दिया । पण्डित एक दूसरे का मुँह देखकर बोले - यह क्या है ?

सेठ ने कहा - मैंने आपका परिचय एक दूसरे से जाना तो पता लगा कि एक बैल है और एक गधा है । उसी के अनुरूप खाद्य सामग्री रखी है । यह सुनकर पण्डितों के सिर शर्म से झुक गये ।

अब आप ही विचार कीजिए - क्या यह अच्छी बात थी । इस दुर्लभ मानव-जीवन में न तो हमें अपनी पहचान है और न दूसरो की पहचान ही कर पा रहे हैं, तो इस जीवन का क्या औचित्य है ? हम यह क्यो भूल जाते है कि शुभ कर्मो से यह जीवन प्राप्त हुआ है । इस भव में उन पुण्यों में वृद्धि करनी है । कर्म उत्तम है तो देवगति मिलेगी। हम अपने शुभ कर्मो से तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन भी कर सकते है । जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करने में ही इस जीवन की सार्थकता है । ज्ञानियो ने कहा भी है -

जं जं समयं जीवो, अविसइ जेण जेण भावेण ।
सो तंमि-तंमि समए, सुहासुहं बंधए कम्मं ॥

अर्थात् जिस जिस समय जीव जैसे जैसे भाव करता है, वह उस समय वैसे वैसे ही कर्मो का बंध करता है । हम अच्छे कर्म की ओर

गतिमान होंगे तो मानव-भव की सार्थकता होगी । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पाप चाहे प्रात:काल के समान चमकदार ही क्यों न हों किन्तु उसका अन्त रात्रि के अंधकार की तरह होता है । अपने पुरुपार्थ का प्रयोग पुण्य के उपार्जन में करने मे ही जीवन का उत्थान है । निराश होकर बैठने से कुछ नहीं मिलता, पुरुपार्थ ही हमे लक्ष्य तक पहुँचाता है ।

रामकथा का एक प्रसग अत्यन्त मार्मिक एवं पुरुपार्थ भाव को जगाने वाला है । आज वह प्रसंग मुझे याद आ रहा है । सीता की खोज मे गया वानर-दल सागर के समीप निराश-भाव से बैठा था कि सागर के मध्य होकर लकापुरी तक कैसे पहुँचा जाये । हो सकता है सीता माता लंका में ही हो । विशाल सागर को लॉघना बहुत ही विकट कार्य था। जामवन्त को हनुमान के पुरुपार्थ पर विश्वास था, उन्होने हनुमान को ललकारते हुए कहा - हनुमान ! तुम भक्त हो, तुम मे असीम शक्ति है, तुम अपनी क्षमता को भुला बैठे हो । यह सागर तुमसे परास्त होने को तैयार बैठा है । उठो, गर्जना करो और लम्बी छलांग भरो । हनुमान यह सुनकर उठ खड़े हुए और छलांग लगाकर लंका की धरती पर उतर गये । उनका पुरुषार्थ ही था कि वे उस असुर नगरी को ध्वस्त करके, सीता का सन्देश लेकर पुन: राम के चरणों में उपस्थित हो गये ।

हम सब उसी वीर हनुमान की धरती के निवासी है । वे तो वानर कुल में पैदा हुए थे मगर हम तो मानव-कुल में पैदा हुए हैं ! क्या हम अपने द्वारा बनाए बन्धनों से भी मुक्त नही हो सकते ! हमने इस भव में कितने बन्धन पैदा कर लिए हैं । राग-द्वेष का बन्धन, मोह-ममता का बन्धन, ऊँच-नीच आदि के बन्धन, क्या यह उचित है ? इस आत्मा में तो अनन्त शक्ति है । आज आवश्यकता है सिर्फ स्वयं को मुक्त बनाने की । ये बन्धन किसी दूसरे ने नहीं बल्कि हमने स्वयं ने ही निर्मित किए हैं । मुक्ति का प्रयास भी हमें ही करना होगा । हम अपने पुरुषार्थ को जगायें । यदि हमारा पुरपार्थ सोया हुआ है तो हमारा भाग्य भी सोया रहेगा और पुरुषार्थ जागृत है तो भाग्य भी जागृत होगा । उसके बल पर अपने बन्धन काट सकेगे । आत्मशक्ति जाग्रत हो गई तो यह मानव-भव सफल हो जायेगा ।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा-गुरुदेव ! आप लम्बे समय से साधना मे लगे हुए है । आपने अपने जीवन में अब तक क्या पाया है?
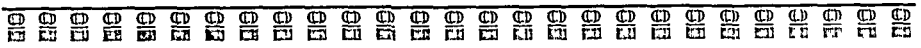
गुरु ने कहा - मैंने पाया कुछ नहीं इस साधना से खोया ही खोया है । शिष्य को आश्चर्य हुआ । उसने पूछा - यह क्या कह रहे है आप। साधना तो प्राप्ति के लिए ही की जाती है ।

गुरु बोले - वत्स । यह अपनी अपनी दृष्टि है । मैं अपनी साधना को खोने में ही लगा रहा हूँ । हमारे भीतर तो आत्म-गुणों का अमूल्य खजाना है उस पर कषायों की - कर्मो की परतें जमी हैं उन परतों को- दुर्गुणों को खोना ही मेरे जीवन की साधना का उद्देश्य है । हम जो पाना चाहते है वह हमारे भीतर पहले से ही मौजूद है । जो बाहर से लेता हैं वह खाली हो जाता है । जो भीतर से स्वयं को खाली करता जाता है वह पा लेता है । खोने का अर्थ है निर्जरा करना ।

इस जीवन में यदि कुछ प्राप्त करने की भावना है तो कुछ को खोना ही पड़ेगा - आसक्ति से अलग होना होगा । आत्मा की शक्ति को पहचान कर इसे संवर-निर्जरा रूप धर्म के कार्य मे सलग्न करने की जरूरत है । प्रमाद और निष्क्रियता का सहारा लेना आत्मघाती कदम उठाना है । जो मनुष्य अकर्मण्य बनकर प्रमाद का सेवन करता है वह नरक का पथिक बनता है । अग्नि पुराण में लिखा है -

कृषे वृष्टि समायोगात् काले स्युः फलसिद्धयः ।
सधर्म पौरुषं कुर्यात् नालसो न च दैववान् ॥

अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा की हुई कृषि से वर्षा का योग प्राप्त होने पर समयानुसार फल की प्राप्ति होती है अतः धर्मानुष्ठान पूर्वक पुरुषार्थ करे, आलसी न बने और दैव का भरोसा करके न बैठे ।

मनुष्य भव का लाभ उठाना है तो सत्पुरुषार्थ एवं शुभ कर्त्तव्य करते हुए आगे बढें । जो चलते रहते हैं वे एक दिन अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँच जाते है । उपनिषदो ने **चरैवेतिचरैवेति** कहकर निरन्तर क्रियाशील रहने का सन्देश दिया है । एक मुक्तक में कहा भी गया है-

दुश्मनों को जीतना है तो बाजुओं में शक्ति चाहिए,
मंजिल को पाना है तो पैरों में गति चाहिए ।
दुनियाँ में कोई काम मुश्किल नहीं है साधक -
भगवान को पाना है तो दिलों में भक्ति चाहिए ॥
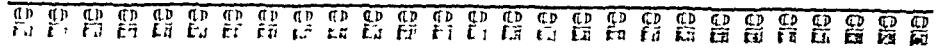
चाह तो आपको पैदा करनी होगी, निरन्तर साधना की ओर अग्रसर होना पडेगा । इस देह में ही उलझ कर रह गये तो आत्म-सत्ता को जगाना मुश्किल हैं । आत्मा का कल्याण नही कर पाये तो जन्म और मृत्यु का सिलसिला कभी नही टूट पायेगा । आत्म-विज्ञान तो यही बताता है कि देह-भाव से मुक्त होने वाला मानव ही आत्म-भाव में स्थित हो सकता है । मृत्यु से आपकी दूरी तो दिनो दिन घटती जा रही हैं । आप कितना भी भाग ले वह तो आपके पास खिसकती आ रही हैं । आप चाहे कितने ही बड़े आदमी हो, उच्च पद पर बैठे हो, संसार की सबसे ऊँची बिल्डिग में आपका निवास हो तो भी आप उसके पंजों से बच नही सकते । ऐतरेय ब्राह्मण का महर्षि कहता है - जो मनुष्य अपने घर में बैठा रहता है तो उसका भाग्य भी बैठ जाता हैं, जो खड़ा रहता है उसका भाग्य भी खडा हो जाता है, जो सोया रहता है, उसका भाग्य भी सोया रहता है लेकिन जो चल पडता है, उसका भाग्य भी उसके साथ चल पड़ता है, क्योकि ऐसा मनुष्य पुरुपार्थी होता है ।

आप किसकी प्रतीक्षा मे बैठे है ! दुनियॉ की ओर देखोगे तो यहॉ सिर्फ एक दूसरे की निंदा-स्तुति ही है । यह दुनिया तो केवल उस बंदरिया के समान है जो अपने बच्चे को कंधे पर चढ़ाये नदी की धार को पार करने की कोशिश करती है । नदी का जल जब उसकी नाक तक पहुॅच जाता है तो वह उस बच्चे को पानी में फेककर अपने को उससे अलग कर लेती है । हमारे पुण्यों की सौगात के रूप में ही हमको यह जीवन प्राप्त हुआ है । इसका अधिक से अधिक लाभ उठाने हेतु तत्पर रहने की आवश्यकता है । इस दुर्लभ जीवन को क्या हम ऐसे ही खो देगे । कहा भी गया है -

दुर्लभं मानुषं जन्म अमूल्यंमेकोऽपि तत्क्षणः ।
तथापि काकणी तुल्यं तद्व्ययं कुर्वते जनाः ॥

अर्थात् मनुष्य का जन्म बड़ा दुर्लभ है, उसका एक-एक क्षण भी अमूल्य है तो भी बड़ा दुःख है कि मनुष्य कोड़ियो के समान उसका व्यय करता है । सन्त-महापुरुष इसीलिए बार-बार यही बात कहते हैं कि इस मनुष्य-जीवन का लाभ उठाओ, यह मानव देह - यह जीवन हर बार नही
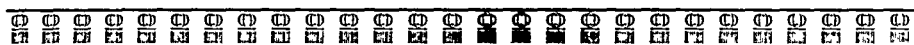
मिलता । श्रेष्ठ भव पाकर भी धर्म का मर्म नहीं समझा, जिनवाणी को हृदयगम नहीं किया, पुण्यों का उपार्जन नहीं किया तो यह भव निरर्थक चला जायेगा ।

हमारा अतीत किस प्रकार व्यतीत हुआ है इसे हम अच्छी प्रकार से जानते है । हमने भूत काल में पुण्य किया या पाप – यह अपने आप से छुपा हुआ नहीं है । अब हमको अपना भविष्य बनाना है तो वर्तमान को थामना होगा । बीता हुआ समय तो अब लौटकर नहीं आ सकता। जीवन को बनाना है तो समय के मूल्य को पहचानना होगा । जो समय को पहचान लेता है वही सत्य के समीप पहुँच पाता है ।

मानव-जीवन में उमंग एव उत्साह है तो सफलता आपके कदमों को चूमती हुई चलेगी । धर्मक्रिया में अपनी लगन होनी चाहिए । सत्य को प्राप्त करने की हमारे मन में क्षुधा बनी रहनी चाहिए । भोजन भी भूख में ही अच्छा लगता है । बिना भूख में यदि आपके समक्ष स्वादिष्ट व्यजन भी लाकर रख दिये जायें तो आप उन्हें पसन्द नही करेंगे । आप अपने आप में ज्ञान की भूख पैदा करें । मनुष्य जीवन में ज्ञानोपार्जन की अच्छी सभावनाएँ हैं । इस भव में ही कर्मो की निर्जरा संभव है । मन मे उत्तम संकल्पों को जन्म देने से जीवन का विकास संभव है । अच्छे संकल्प का पैदा होना ही पुण्य की प्राप्ति का सोपान है । बुरे संकल्प पैदा हुए तो वे पाप को जन्म देंगे । जो व्यक्ति ज्ञान की ओर अग्रसर है वह पाप का त्याग करने में ही अपनी भलाई समझता है ।

इस श्रेष्ठ मानव भव में आकर जो सत्कर्म की ओर उन्मुख नही होता, जिनवाणी के मर्म को जानने का प्रयास नहीं करता, तत्त्वज्ञान को आत्मसात् करने की जिसकी भावना नहीं है । वह मनुष्य धरती पर बोझ ही है ।

बन्धुओं । आपने धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय किया है, अनेक सन्त-सतियो के प्रवचन-पीयूष का पान किया है । इतना सब कुछ जानने समझने के पश्चात् भी यदि आत्मशक्ति को जगा नही पाये तो सारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा । हमारा इस जीवन को प्राप्त करना ही बेकार चला जायेगा । एक प्रतीकात्मक कथा याद आ रही है –
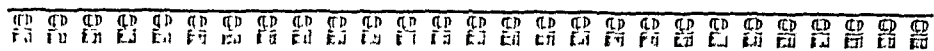
एक बार सभी पशु पक्षियों ने अपने पर होते हुए अत्याचारो को रोकने हेतु लन्दन में विश्व स्तरीय बैठक का आयोजन किया ! भारत से भी अपना प्रतिनिधि भेजने को कहा तो सभी ने सर्वसम्मत निर्णय लेकर एक बिल्ली को लन्दन भेजा । ब्रिटेन की महारानी ने सम्मेलन का उद्‌घाटन किया । जिस सिंहासन पर महारानी बैठी हुई थी उसके नीचे एक चूहा छुपा हुआ था जो बार-बार मुँह निकालकर सबको देख रहा था । बिल्ली सबसे आगे बैठी हुई थी । उसका ध्यान चूहे पर चला गया । एक दिन का सम्मेलन था । कई प्रस्ताव लिए गये । शाम को सभा समाप्त हो गई । सभी जानवर अपने-अपने देश के लिए रवाना हो गये । बिल्ली भी भारत लौट आई । सभी ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया । पत्रकारो ने पूछा कि सम्मेलन मे क्या प्रस्ताव लिए गये ? बिल्ली ने कहा - मेरी तबियत कुछ खराब हो गई । बैठते ही महारानी के सिंहासन के नीचे मुझे चूहा दिखाई दे गया, मैं तो बस उसी पर अपनी दृष्टि टिकाये रही। वहाँ कब क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं है । वह चूहा भी बाद में न जाने कहाँ गायब हो गया । मेरा तो जाना ही निरर्थक हो गया ।

आप एक बड़े उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इस भव मे आये है । कही ऐसा न हो कि जैसे आये हो वैसे ही लौट जाओ । मन में यदि भ्रान्ति है तो उसे मिटाकर आत्म-बोध हेतु क्रान्ति करो । यह क्रान्ति ही शाश्वत सत्य और शान्ति का मार्ग प्रशस्त कर पायेगी । अन्त में एक दोहे के माध्यम से मैं अपने शब्दो को विराम दूँगी ।

मानव भव मिलना कठिन, करें आत्म का ज्ञान ।
'रत्नत्रयी' सु-कर्म से, मनुज बने भगवान ॥

आप अपनी शक्ति को पहचाने, भावना को जगायें । पुण्य कर्मो के प्रति उत्साह बढायेगे तो सफलता के शिखर को छूने से आपको कोई नहीं रोक पायेगा । इन्हीं शब्दों के साथ - जय महावीर !

* * *

23. शुभ विचार : मिटे विकार

आत्मीय धर्मप्रेमी महानुभावों ।

तत्व-सार मे एक सूत्र आया है -

मन सलिले थिर भूए, दीसइ अप्पा तहा विमले ।

अर्थात् मन रूपी जल जब स्थिर एवं विमल हो जाता है तब उसमें आत्मा का दिव्य रूप झलकने लगता है । मानव-मन बडा चचल एवं गतिमान है । इसके समान तीव्र गति किसी की भी नही है । मन के समान गति न हवाई जहाज कर सकता है न ही कोई रॉकेट कर सकता है । यह एक पल मे अपने आस-पास का विचार करते हुए अगले ही पल रूस, अमेरिका तो क्या चन्द्र, मंगल और गुरु ग्रहो की स्थिति का अवलोकन करने लग जाता है । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पुरी की रथयात्रा को देखा । उस रथयात्रा मे लाखों लोग-नर और नारी, भिखारी और पुजारी जय-जयकार करते हुए चले जा रहे थे । भक्तिवश उनके शीश झुके हुए थे । कवि विचार करने लगा, कवि की विचार शक्ति कल्पना शक्ति, अद्‌भुत होती है इसीलिए तो कहा गया है कि **'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'** । वे विचार कर रहे थे - यह रथ भी इस भीड़ को देखकर सोच रहा होगा कि भक्तजनों की भीड मुझे सिर झुका रही है । रथ का पथ सोच रहा होगा कि श्रद्धा का पात्र तो मैं हूँ जिस पर रथ एव भक्त चल रहे हैं । रथ में रखी मूर्ति इसका श्रेय स्वयं को दे रही होगी जवकि वास्तविकता यह थी कि सभी के शीश भगवान के चरणारविन्द में झुके थे । उन्होंने वांग्ला भापा मे लिखा -

रथो भावे आमी देव, पथो भावे आमी देव ।
मूर्ति भावे आमी देव, हाँसे अन्तर्यामी ॥
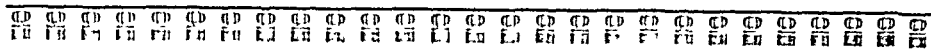
यहाँ तीनों ही - रथ, पथ व मूर्ति सोच रही थी कि मैं ही परमात्मा हूँ । जनता मेरा ही सम्मान कर रही है । इस स्थिति पर अन्तर्यामी देव मुस्करा रहे थे । कोई किसी को सिर झुकाता है तो वह उसके देवत्व को सिर झुकाता है । उसकी महानता को उसके गुणों को, उसके उत्कृष्ट कार्यो को नमन करता है । मूर्ति तो मात्र प्रतीक हैं । परमात्मा कहीं बाहर नहीं है वह तो प्रत्येक आत्मा मे विराजमान है । बाहर ढूँढने का प्रयास करोगे तो वह प्रयास निरर्थक जायेगा । परमात्मा को ढूँढना है तो अन्तरात्मा मे ढूँढो, वह वहीं पर मिलेगा।

यह शरीर तो परमात्मा का मन्दिर है । मन्दिर पर ही मोहित हो गये तो मूर्ति को कब देखोगे । आज व्यक्ति की दृष्टि उसके शरीर तक ही सीमित रह जाती है । वह शरीर को ही पवित्र बनाने का उपक्रम करता रहता है । सुगन्धित साबुन, पाउडर व इत्र का प्रयोग करते हुए इसको संवारने में लगा रहता है । आत्मा की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा पाता । वह शरीर का तो चिंतन एवं पोषण करता है मगर आत्मा का विचार नहीं कर पाता । मन में उठने वाले विचारों के अनुसार ही मानव का चरित्र बनता है । यह मन ही विचारों का आधार-स्थल है । इस आधार पर मनः शुद्धि प्रथम दृष्ट्या आवश्यक है । जो मन और वाणी से अपवित्र है ऐसे मनुष्यों की स्थिति पर सूत्र की यह गाथा सटीक बैठती है ।

जहा सुणी पूइकन्नी, निक्कसिज्जई सव्वसो ।
एवं दुस्सीले पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ॥

अर्थात् जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया जहाँ भी जाती है, दुत्कार कर निकाल दी जाती है, उसी प्रकार दुःशील, उद्दण्ड और मुखर-वाचाल मनुष्य भी सर्वत्र धक्के देकर निकाल दिये जाते हैं । मानव की आध्यात्मिक क्रियाएँ तभी तक सफल है जब तक उसका मन शुद्ध है । धार्मिक आराधना के द्वारा यदि मन शुद्ध, स्थिर एवं पवित्र बनता जा रहा है तो यह समझ लीजिए हमारी आध्यात्मिक क्रियाएँ समुचित चल रही हैं अन्यथा साधना हेतु किया गया हमारा श्रम निरर्थक है । मानव का कर्म ही उसकी वास्तविकता का परिचय कराते हैं। दुष्कर्म करके कोई कल्याण चाहे तो यह कैसे संभव है। कहा भी गयाहै-

कैसे हो कल्याण करणी काली है ।
नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है ॥

जाली हुण्डी से भुगतान प्राप्त नही किया जा सकता । मान लो किसी ने भुगतान धोखा देकर प्राप्त भी कर लिया तो वह एक दिन पकडा भी जायेगा।

उस समय अपराधी को अपराध का क्या दण्ड मिलेगा यह पहले सोच लेना चाहिए । धर्मपथ के पथिक को अपना हृदय सरल, पवित्र एवं पर-दुःख-कातरता से परिपूर्ण रखने की आवश्यकता है । जिसके हृदय मे ये भाव हैं, उसे किसी अन्य स्थान पर जाकर सिर झुकाने की जरूरत नही है । शुद्ध भावों को अपने आचरण मे लाने से ही जीवन महल जगमगा सकता है ।

एक बन्दर और सियार में बड़ी घनिष्ठता थी । दोनों जंगल में एक साथ ही रहते थे । एक दिन दोनों चले जा रहे थे । रास्ते में एक कब्रिस्तान दिखाई दिया । बन्दर उछलता हुआ एक कब्र के पास जाकर खडा हो गया और आँखें मूंदकर मन ही मन कुछ स्तुति करने लगा । उसका खयाल था कि मेरे इस कार्य से सियार प्रभावित होकर उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगेगा । पर हुआ अलग ही । सियार ने समझा - उसके मित्र को शायद कुछ बीमारी हो गई है । वह बन्दर का कंधा झकझोर कर बोला - अरे ! क्या हो गया है तुमको ? क्या तुम्हारे पेट में पीड़ा हो रही है ? मुँह से शब्द भी नहीं निकल रहा है । बन्दर बोला - भाई ! देख नही रहे हो, यह कब्र मेरे पुरखों की है । मै मेरे पूर्वजों के बल, पौरूष की महानता का मन ही मन गुणानुवाद कर रहा हूँ ताकि मैं भी उनके जैसा महान् बन सकूँ ।

सियार बोला - भाई ! मात्र गुणानुवाद करने से महान् नहीं बना जाता है । गुणों को अपने आचरण मे लाने से ही कोई महान् बन सकता है ।

हम मानव हैं तो मानवता के गुण हमारे आचरण में प्रकट होने चाहिए। सच्चे आराधक के लिए कहा भी गया है -

अविसंवायण संपन्नयाएणं जीवे,
धम्मस्स आराहए भवइ ।

अर्थात् दम्भ रहित अविसंवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक होता है । पापियों का तो जीना और मरना दोनों ही अहितकारी हैं । पापी जन जीवित रह करके प्राणियों के साथ बैर भाव बढ़ाते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं और मरने के पश्चात् स्वयं दुर्गति को प्राप्त करते हैं । अन्तःकरण शुद्ध नही है तो लाख-लाख धर्म क्रियाएँ करते रहो कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है । जो दुष्ट भावों वाले होते है उनके मन मे तो सोते जागते बुरे भाव ही उठते रहते है ।

यहाँ तीनों ही - रथ, पथ व मूर्ति सोच रही थी कि मैं ही परमात्मा हूँ । जनता मेरा ही सम्मान कर रही है । इस स्थिति पर अन्तर्यामी देव मुस्करा रहे थे । कोई किसी को सिर झुकाता है तो वह उसके देवत्त्व को सिर झुकाता है । उसकी महानता को उसके गुणों को, उसके उत्कृष्ट कार्यो को नमन करता है । मूर्ति तो मात्र प्रतीक है । परमात्मा कहीं बाहर नही है वह तो प्रत्येक आत्मा में विराजमान है । बाहर ढूॅंढने का प्रयास करोगे तो वह प्रयास निरर्थक जायेगा । परमात्मा को ढूॅढना है तो अन्तरात्मा में ढूँढो, वह वही पर मिलेगा।

यह शरीर तो परमात्मा का मन्दिर है । मन्दिर पर ही मोहित हो गये तो मूर्ति को कब देखोगे । आज व्यक्ति की दृष्टि उसके शरीर तक ही सीमित रह जाती है । वह शरीर को ही पवित्र बनाने का उपक्रम करता रहता है । सुगन्धित साबुन, पाउडर व इत्र का प्रयोग करते हुए इसको संवारने मे लगा रहता है । आत्मा की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा पाता । वह शरीर का तो चिंतन एवं पोषण करता है मगर आत्मा का विचार नही कर पाता । मन में उठने वाले विचारों के अनुसार ही मानव का चरित्र बनता है । यह मन ही विचारों का आधार-स्थल है । इस आधार पर मनः शुद्धि प्रथम दृष्ट्या आवश्यक है । जो मन और वाणी से अपवित्र है ऐसे मनुष्यों की स्थिति पर सूत्र की यह गाथा सटीक बैठती है ।

जहा सुणी पूइकन्नी, निक्कसिज्जई सव्वसो ।
एवं दुस्सीले पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ॥

अर्थात् जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया जहाँ भी जाती है, दुत्कार कर निकाल दी जाती है, उसी प्रकार दुःशील, उद्दण्ड और मुखर-वाचाल मनुष्य भी सर्वत्र धक्के देकर निकाल दिये जाते हैं । मानव की आध्यात्मिक क्रियाएँ तभी तक सफल है जब तक उसका मन शुद्ध है । धार्मिक आराधना के द्वारा यदि मन शुद्ध, स्थिर एवं पवित्र बनता जा रहा है तो यह समझ लीजिए हमारी आध्यात्मिक क्रियाएँ समुचित चल रही हैं अन्यथा साधना हेतु किया गया हमारा श्रम निरर्थक है । मानव का कर्म ही उसकी वास्तविकता का परिचय कराते हैं। दुष्कर्म करके कोई कल्याण चाहे तो यह कैसे संभव है। कहा भी गयाहै-

कैसे हो कल्याण करणी काली है ।
नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है ॥

जाली हुण्डी से भुगतान प्राप्त नहीं किया जा सकता । मान लो किसी ने भुगतान धोखा देकर प्राप्त भी कर लिया तो वह एक दिन पकड़ा भी जायेगा।

उस समय अपराधी को अपराध का क्या दण्ड मिलेगा यह पहले सोच लेना चाहिए । धर्मपथ के पथिक को अपना हृदय सरल, पवित्र एवं पर-दुःख-कातरता से परिपूर्ण रखने की आवश्यकता है । जिसके हृदय में ये भाव हैं, उसे किसी अन्य स्थान पर जाकर सिर झुकाने की जरूरत नहीं है । शुद्ध भावों को अपने आचरण में लाने से ही जीवन महल जगमगा सकता है ।

एक बन्दर और सियार में बड़ी घनिष्ठता थी । दोनों जंगल मे एक साथ ही रहते थे । एक दिन दोनों चले जा रहे थे । रास्ते में एक कब्रिस्तान दिखाई दिया । बन्दर उछलता हुआ एक कब्र के पास जाकर खड़ा हो गया और आँखें मूंदकर मन ही मन कुछ स्तुति करने लगा । उसका खयाल था कि मेरे इस कार्य से सियार प्रभावित होकर उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगेगा । पर हुआ अलग ही । सियार ने समझा - उसके मित्र को शायद कुछ बीमारी हो गई है । वह बन्दर का कंधा झकझोर कर बोला - अरे ! क्या हो गया है तुमको ? क्या तुम्हारे पेट में पीड़ा हो रही है ? मुँह से शब्द भी नहीं निकल रहा है । बन्दर बोला - भाई ! देख नहीं रहे हो, यह कब्र मेरे पुरखों की है । मैं मेरे पूर्वजों के बल, पौरूष की महानता का मन ही मन गुणानुवाद कर रहा हूँ ताकि मैं भी उनके जैसा महान् बन सकूँ ।

सियार बोला - भाई ! मात्र गुणानुवाद करने से महान् नहीं बना जाता है । गुणों को अपने आचरण में लाने से ही कोई महान् बन सकता है ।

हम मानव हैं तो मानवता के गुण हमारे आचरण में प्रकट होने चाहिए। सच्चे आराधक के लिए कहा भी गया है -

अविसंवायण संपन्नयाएणं जीवे,
धम्मस्स आराहए भवइ ।

अर्थात् दम्भ रहित अविसंवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक होता है । पापियो का तो जीना और मरना दोनों ही अहितकारी हैं । पापी जन जीवित रह करके प्राणियो के साथ बैर भाव बढ़ाते हैं, उन्हे कष्ट देते हैं और मरने के पश्चात् स्वयं दुर्गति को प्राप्त करते हैं । अन्तःकरण शुद्ध नहीं है तो लाख-लाख धर्म क्रियाएँ करते रहो कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है । जो दुष्ट भावों वाले होते हैं उनके मन में तो सोते जागते बुरे भाव ही उठते रहते हैं ।

सुबुद्धि और दुर्बुद्धि दो मित्र थे । गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर लौट रहे थे । प्राचीन समय में आज की भाँति आवागमन के साधन सुलभ नहीं थे । ज्ञान-प्राप्ति हेतु जिज्ञासु हजारो मील का रास्ता तय कर लेते थे। दोनों मित्र पैदल, ही ग्राम की ओर चल दिये । रास्ते में दुर्बुद्धि के पेट में भयानक दर्द उठने लगा । उसने सोचा कि अब मेरा बचना मुश्किल है । वह सुबुद्धि से बोला - मित्र ! मेरा अन्त समय समीप आ गया है । मेरे प्राण इसी जंगल में निकलने वाले है । यदि मै इस जंगल में मर गया तो मेरी आत्मा भटकती रहेगी । तू मेरा सबसे घनिष्ठ मित्र है । सुख-दुःख में मित्र ही मित्र के काम आते हैं । मेरे मरने के पश्चात् मेरे सिर में लकडी या लोहे का कीला ठोक देना ताकि मेरी आत्मा भटके नहीं । मेरे परिवार वालों को भी मेरी सूचना कर देना । यह कहते ही दुर्बुद्धि ने प्राण त्याग दिये! सुबुद्धि को अपने मित्र के असामयिक निधन पर बड़ा दुःख हुआ । मित्र की अन्तिम इच्छा पूरी करने के लिए उसने लोहे का कीला समीप के ग्राम से लाकर उसके सिर में ठोक दिया । लाश को जंगल में सुरक्षित स्थान पर रखकर अपने ग्राम पहुँचा और उसके परिवार वालों को दुर्बुद्धि की मृत्यु का सन्देश दिया । परिजन सन्देश सुनकर तत्काल सुबुद्धि को साथ लेकर जंगल में गये। दुर्बुद्धि की लाश को देखा, उसके सिर पर कीला गड़ा हुआ देखकर परिजनो ने कहा - अरे । गजब हो गया, दुर्बुद्धि को तो कीला ठोककर मारा गया है । सुबुद्धि ने लाख बार कहा कि यह कार्य तो मैंने दुर्बुद्धि के कहने पर उसकी अन्तिम इच्छा समझकर किया है ! पर कोई मानने को तैयार ही नही हुआ । सुबुद्धि को मित्र की कुटिलता का अब आभास हुआ कि उसका मित्र स्वयं तो मरा ही मगर मुझे भी मार गया है । पश्चाताप के ऑसू गिराता हुआ वह जंगल में ही भूखा प्यासा रह कर जीवन का शेष समय व्यतीत करता, अपने परिजनों से दूर चला गया ।

बन्धुओ । संसार में दुष्टो की कमी नहीं है । भगवान महावीर को गोशालक ने कितने कष्ट दिये मगर जो सरल-हृदय वाले होते हैं वे दुष्टों के दुष्कृत्य को भी बुरा नहीं मानते । इस विश्व में सभी अच्छे बनने का विचार करते हैं । जो बुरा है वह भी यही चाहता है कि मेरी बुराई को भी लोग अच्छाई समझे किन्तु अच्छा कहलाने के लिए आवश्यकता है कि कपायो से मुक्त होने का प्रयास करें । कषाय उन्माद को बढ़ाते हैं अतः कहा भी गया है -
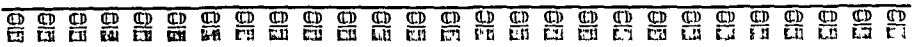
हो हि कसाय उम्मत्तो, तहा ण पित्त उम्मत्तो ।

अर्थात् वात-पित्त आदि विकारों से मनुष्य वैसा उन्मत्त नहीं होता जैसा कि कषायों से उन्मत्त होता है । कषायोन्मत्त ही वस्तुत: उन्मत्त है। मानव भव मिला है तो कषायों से दूर हटो, मात्र दिखावे के लिए जीवन में शान्त बने रहोगे और मन में ईर्ष्या-द्वेष का भाव जाग्रत रहेगा तो कुछ लाभ होने वाला नहीं है । तन को धोने से क्या है, अरे ! धोना ही है तो इस मन को धोने का प्रयास करो । सारे विकार तो मन में भरे है । आत्मा में परमात्म-स्वरूप को जगाना है तो मन को निर्मल बनाना होगा। कवि ने एक मुक्तक में बहुत ही सुन्दर बात कही है -

पहले मन का मैल हटा फिर तन का मैल उतारा कर,
हर दु:खिया के आँसू को तू देकर स्नेह संवारा कर।
बाहर जिसको देख रहा तू, वह तो सारा नश्वर है -
जो न दिखाई दे तुझको, तू केवल उसे पुकारा कर॥

आत्मा पर क्रोध, मोह, राग-द्वेष के धब्बे लगे है । उन्हें हटाये बिना कुछ लाभ नही होगा । शरीर पर तनिक-सी कालिख लगने पर तो हम बेचैन हो जाते हैं । उसे मिटाने के लिए तत्पर हो जाते है, फिर इस मन की ओर हमारा ध्यान क्यों नही जाता है । संगीतकार की ये पक्तियॉ बार-बार मेरे मन मे जल तरगों की भाँति उठती है । मानव को सम्बोधित करके कह रही हैं-

तू तन का काला धब्बा, धोता ले फौरन पानी ।
तेरे मन पर कितने काले धब्बों की पड़ी निशानी ?
क्यों न निहाली हैं,
नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है॥
तेरा बिगड़ा रहा है इंजिन, गाड़ी किस तरह चलेगी?
दीपक में तेल खतम है, बाती किस तरह जलेगी ?
यह बुझने वाली है,
नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है ॥

उम्र की गाड़ी चलते-चलते यहाँ तक आ गई है । तन रूपी इस गाड़ी के छूटने का समय हो गया है । स्मरण रखो कि तेल खत्म होने पर बाती को तो बुझना ही पड़ता है । अंधकार में प्रकाश तब तक ही मिलता

है जब तक दीपक में तेल भरा होता है । हृदय में शुद्धता का भाव है, पवित्रता है, अन्तर्मन कषायों से विकृत नहीं हैं तो मोक्ष के पथ पर आगे बढ़ने की संभावना रहती है । धर्म का निवास मानव के शुद्ध-निर्मल हृदय में होता है। भगवान महावीर का कथन है -

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो शुद्धस्स चिट्ठई ।

अर्थात् जहाँ सरलता है, वहाँ शुद्धता है और जहाँ शुद्धता है वही उसी हृदय में धर्म स्थिर रहता है । कषाय-कलुषित हृदय में धर्म का निवास हो ही नहीं सकता । भीतर जब तक चेतना नही जागती, शान्ति नहीं होती तब तक बाहर से शान्त बने दिखाई देना आडम्बर है, भ्रम है । सच्चा धार्मिक बनना है तो धर्माराधना के बाधक तत्वों को जिन्हें - आलस्य, मोह, अवज्ञा, मद, क्रोध, प्रमाद आदि कहा गया हैं - हटाना पड़ेगा । ये हमारी आत्मा के स्वभाव में नहीं है फिर भी हम इन्हें अपनाते है, आत्मा इनके बोझ से दब कर अवनति की ओर जाने लगती है । यदि इन्हें हटा दें तो आत्मा उन्नति की ओर अग्रसर हो जाये ।

जिस प्रकार कृषक अपने खेत के झाड़ झंखाड़ को साफ करके फिर बीज को बोते हैं, ऐसा करने पर ही बीज अंकुरित होकर फलित होते हैं । अन्यथा वे उगेंगे ही नहीं, अंकुरित ही नहीं होंगे और यदि किसी कारण हो भी गये तो उनका विकास नहीं हो पायेगा । इसी तरह हृदय रूपी खेत में कपट है, खोट है, आडम्बर है तो ऐसा व्यक्ति हेय, ज्ञेय, उपादेय का विवेक नहीं रख सकता । जिस नौका में छिद्र होता है वह जल में डूबती ही है। उस पर बैठने वाला भी डूब जाता है । अन्तर्मन के विकार धर्म रूपी नौका के छिद्र हैं उन्हें बन्द करने से ही जीवन का कल्याण संभव है ।

जीवन में शुभ विचार ही प्रगति की ओर अग्रसर करते हैं । यदि विचार ही अपवित्र हैं तो वे पतन के गर्त में गिराते हैं । जिसके जैसे विचार होते है, उसी प्रकार मन के परिणाम होते हैं । विचार वाणी को प्रभावित करते हैं । विचारों की शुद्धता से वाणी शुद्ध-पवित्र बनती है । वाणी की शुद्धता के अभाव में साधना निरर्थक है । शुद्ध व निर्मल वाणी से मन सकल्प-विकल्प की दुविधा से मुक्त बनकर जीवन में सत्य की ओर आगे बढ़ता है । मन की निर्मलता ही ज्ञान का मार्ग खोलती है । कहा भी गया है -
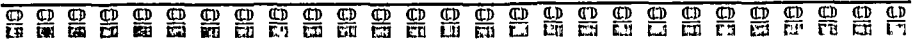
संकल्प मनोविद्धि संकल्पस्तन्न विद्यते ।
यत्र संकल्पनं तत्र मनोऽस्तीत्यवगम्यताम् ॥
संकल्प मनसी भिन्ने न कदाचन केनचित् ।
संकल्प जाते गलिते स्वरूपमऽवशिष्यते ॥

अर्थात् संकल्प करना ही मन का स्वरूप जानो, मन संकल्प रूप में ही रहता है । जहाँ संकल्प करना है वहाँ मन है ऐसा जान लेना चाहिए। किसी ने भी कभी संकल्प और मन को अलग-अलग नही किया । सारे संकल्पों के गल जाने पर केवल आत्म स्वरूप शेप रहता है ।

भक्त रविदास जिन्हें रैदास भी कहा जाता है, बडे सरल हृदयी थे । वे जाति से चमार थे । जूते बनाकर अपना जीवन-यापन करते थे । उनकी सरलता व भगवान के प्रति समर्पण भाव से प्रभावित होकर ही मीरां बाई ने उनको अपना गुरु बनाया था । वे कहते है - मै भगवान की भक्ति-पूजा अर्चना करना चाहता हूँ किन्तु मेरे सामने एक समस्या है कि यदि प्रभु की पूजा पुष्प और फल से करूँ तो ये तो सब भ्रमरों एव पक्षियो के द्वारा झूठे किये हुए है । जल या दूध आदि से पूजा करुँ तो ये भी मछली एवं बछडे के द्वारा झूठे कर दिये गये है । ढोल भी अपवित्र चर्म का बना हुआ है, उसको बजाकर भी भगवान की अर्चना कैसे करूँ ? इन अपवित्र वस्तुओ द्वारा उस परम पिता परमात्मा की जो कि पवित्र है, शुद्ध है, पूजा करना उचित नहीं है । यह मेरा मन ही मन्दिर है अत: मन से कपायो को निकालकर पवित्र हृदय से भक्ति करना ही भगवान की सच्ची पूजा है। हृदय की शुद्धता के अभाव मे सभी क्रियाएँ व्यर्थ है । इसीलिए तो कवि ने कहा है -

सत्य, शील, सन्तोप, सरलता सत्संगति के फूल से ।
प्रभु की पूजा कर ले भाई अपना आपा भूल के ॥

भगवान की सच्ची आराधना अहकार के विसर्जन से ही सभव है। अहंकार के जाते ही सारे पाप चले जायेंगे । पापो के जाते ही हृदय निर्मल एव शुद्ध हो जायेगा । पाप पर झूठ का पर्दा डालने मे पाप नहीं छिपते है। सूत्रकृतांग निर्युक्ति मे कहा गया है -
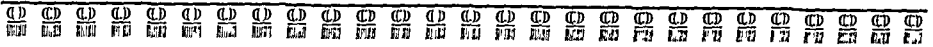
जह वा विसगंडूसं कोई घेत्तूण नाम तुण्हिक्को ।
अण्णेण अदीसंतो किं नाम ततो न वा मरेज्जा ॥

अर्थात् जिस प्रकार कोई चुपचाप लुक छिपकर विष पी लेता है तो क्या वह उस विष से नही मरेगा ? अवश्य मरेगा । उसी प्रकार जो छिपकर पाप करता है तो क्या वह उससे दूषित नहीं होगा ? अवश्य होगा। कार्य कोई भी हो जिसे करते समय आपके मन में भय है, डर है, समझो वह पाप है । कोई यह सोचे कि पूजा पाठ द्वारा, तिलक, छापा लगाकर, माला-मंत्र जपकर, गंगा में स्नान कर इस पाप से मुक्ति प्राप्त कर लूॅगा, मुखवस्त्रिका बॉधकर स्थानक में बैठकर, गिरजाघर में जाकर, मन्दिर में मूर्ति के दर्शन कर पाप से छुटकारा हो जायेगा तो ऐसा सोचकर वह भूल कर रहा है । कर्मो को तो भोगना ही होगा । इससे सहज में छुटकारा नहीं होता है । ऐसे दुष्कर्म हम करें ही क्यों जो पाप की वृद्धि करें । हमें जीवन के उज्ज्वल पक्ष की ओर देखना है । सद्वृत्तियों एवं सद्गुणों का विकास करना है ।

एक सम्पन्न व्यक्ति सदैव दु:खी रहता था लेकिन उसे अपने दु:ख का कोई कारण समझ में नहीं आ रहा था । उसका मन सदैव बेचैन बना रहता । एक दिन ग्राम में एक संन्यासी का आगमन हुआ । उस व्यक्ति ने संन्यासी के आश्रम में पहुॅचकर उन्हें अपनी पीड़ा बताई । संन्यासी ने शान्त भाव से उसे वहाँ बैठने को कहा । वह चुपचाप बैठ गया । धीरे-धीरे ग्राम के अनेक व्यक्ति संन्यासी के सत्संग का लाभ उठाने हेतु आ गये । चर्चा शुरु हो गई । एक व्यक्ति ने कहा - महाराज ! दीपक के नीचे अंधेरा और चन्द्रमा में कालिख क्यों है ? सन्त ने हँसकर कहा- भाई ! अंधेरा पक्ष तो दुनियॉ की हर वस्तु में है । क्या ही अच्छा होता यदि तुम दीपक और चन्द्रमा में अन्धकार व कालिमा न देखकर उसका प्रकाश देखते । मनुष्य के दु:खों का कारण ही यह है कि वह जीवन का उज्ज्वल पक्ष नही देखता । जो उज्ज्वल पक्ष देखता है वह कभी दु:खी नहीं बन सकता है । हमेशा ध्यान रखो, हमे यह मानव जीवन मिला है तो बुराई की ओर हम उन्मुख न होवें - बुरा न देखे, उज्ज्वल-पक्ष ही देखे ।

अब उस संन्यासी ने उस सम्पन्न व्यक्ति से पूछा - भाई ! तुम क्या कह रहे थे ? वह व्यक्ति बोला - स्वामी जी ! मुझे मेरी बेचैनी का कारण मिल गया है ।
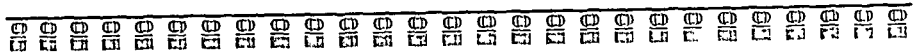
जीवन के उज्ज्वल पक्ष मे जाने की जरूरत है । पापों को बाहर निकालकर जीवन को सुसंस्कारित एवं मर्यादित बनाने की आवश्यकता है। एक श्लोक आया है -

न सव्वतो मनो निवारये,
न मनो संयततमागतं ।
यतो यतो च पापकं,
ततो ततो मनो निवारये ॥

अर्थात् यदि मन संयत हो गया है तो सभी स्थानो से मन को हटाना आवश्यक नही है । जहाँ-जहॉ भी पाप है, बस वहॉ-वहॉ से ही मन को हटाना है । मन यदि धर्म मे लीन है तो उसे फिर वहाँ से हटाना नही है। इस जगत में दु:खी वह है जो अपने स्वभाव को त्याग रहा है । प्रकृति की ओर हम देखें तो पायेंगे कि जल का स्वभाव शीतलता है, अग्नि का स्वभाव उष्णता है, आकाश का स्वभाव अवकाश देना व भूमि का स्वभाव भार वहन करना है । इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव सहज, शुद्ध निर्विकार होकर मुक्ति की ओर जाते हुए, ऊपर की ओर बढ़ते हुए अनन्त शक्ति को जाग्रत करना है । इस आत्मा को यदि विषय कषायो ने जकड़ लिया है या इन्द्रियों को विषय भोगों की ओर लगाकर मन को सन्तुष्ट करने की कोशिश की तो ये भोगोपभोग ही कर्मबन्ध के कारण बन जायेंगे । कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल जड़ है, उनमे शक्ति नही है किन्तु विकारी भावों के कारण वे अनन्त बलवीर्य सम्पन्न आत्मा को भी बॉध लेते हैं । मन के भावों से आत्मा बँधती भी है और मुक्त भी होती है। कहा भी गया है कि -

मन: एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो: ।

अर्थात् मन ही मनुष्य के संसार-बन्धन का कारण है एवं मन की शक्ति से मोक्ष की प्राप्ति भी की जा सकती है । अत: मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को इन्द्रियों एवं मन पर अकुश लगाना पड़ेगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह, आसक्ति पर विजय प्राप्त करने के लिए कषायो के तूफान को रोकना होगा । मानव तभी मोक्ष प्राप्त कर सकेगा जब आत्मा सांसारिक वासना के जाल मे मुक्त होगी । कहा भी गया है -
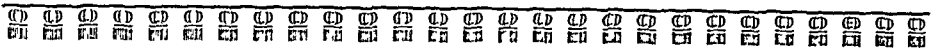
मोक्षस्य नहि वासो अस्ति न ग्रामान्तर मेव वा ।
अज्ञान हृदय ग्रन्थि-नाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥

अर्थात् मोक्ष का स्थान कही अन्यत्र नहीं है और न उसे ढूंढने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता है । वस्तुतः हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष है । इस अज्ञान-ग्रन्थि से छुटकारा न तो आपको अपनी अथाह धन-सम्पत्ति दिला सकती है, न आपके परिजन एवं मित्र सहयोग दे सकते हैं । न आपके पुत्र-पुत्री इस कार्य के सहयोगी हो सकते है । मन को विषय भोगों से हटाकर जीवन को संयमित रखने की भावना तो आपको स्वयं को ही जगानी होगी । संयम ही जीवन-कल्याण का मार्ग हैं । संयम ही जीवन को समुन्नत बना सकता है ।

नेपोलियन महान् बचपन मे सामान्य व्यक्ति था । फ्रान्स के एक नगर में विद्याध्ययन मे संलग्न था। अपना अध्ययन पूरा करके वह देश-सेवा हेतु सेना में भर्ती होकर धीरे-धीरे फ्रान्स का सेनापति बन गया । एक दिन वह अपने परिजनों से मिलने गया । अपने नगर में घूमते हुए उसे बचपन के उन दिनों का स्मरण आया जब वह अध्ययन करता था । उन दिनों उसके पडौस की एक युवती उससे छेड़खानी किया करती थी । उसका ध्यान पढ़ाई से हटाने का प्रयास करती थी । नेपोलियन ने अध्ययन के दिनों में उस युवती की ओर कभी ध्यान नहीं दिया । वही नेपोलियन उस स्त्री के पास पहुँचा और बोला - यहाँ कोई नेपोलियन नाम का छात्र पढ़ता था, आप उसे जानती हैं क्या ? इस पर वह स्त्री बोली - हाँ एक नीरस, किताबी कीड़ा यहाँ रहता था । कुछ वर्ष पहले ही इस स्थान को छोड़कर चला गया । नेपोलियन ने हँसकर कहा - महोदया । यदि वह उन दिनों नीरस न रहा होता - संयम से जीवन नही जीता तो अपने देश का प्रधान सेनापति बनकर आपके सामने खड़ा नहीं हो पाता ।

वह महिला नेपोलियन को देखकर अवाक् रह गई । जीवन में उन्नति करना है, आत्मा को मुक्त बनाना है तो हमें अपने मन को संयमित बनाना होगा । मनुष्य को सदैव याद रखना चाहिए कि अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है । पापानुष्ठान अंततः दुःख ही देते है । पापों से मुक्ति के लिए धर्माराधना की आवश्यकता है । धर्म की आराधना ही मानव को शाश्वत सुख प्रदान करने मे सक्षम है !

* * *